लाल सिंह कमला अकाली

सैलानी देश भक्त

भाषा विभाग पंजाब

सैलानी देश-भक्त

लाल सिंह कमला अकाली

भाषा विभाग, पंजाब

सैलानी देश-भक्त

[illegible]

सैलानी देश-भक्त

लाल सिंह कमला अकाली

भाषा विभाग, पंजाब

SAILANI DESH BHAGAT (In Hindi)

Lal Singh Kamla Akali

Translation : Prem Sagar Shastri

सैलानी देश-भक्त

लाल सिंह कमला अकाली

अनुवाद : डा. प्रेम सागर शास्त्री

प्रथम संस्करण : 1991

प्रतियाँ : 2000

मूल्य : 10-10

प्रकाशक : निदेशक, भाषा विभाग, पंजाब, पटियाला

मुद्रक : पैराडाईज प्रिंटर्ज, 240, इण्डिस्ट्रियल एरिया, चण्डीगढ़

द्वारा : नियन्त्रक, मुद्रण एवं लेखन सामग्री विभाग, पंजाब, चण्डीगढ़

भूमिका

भावनात्मक एकता को सुदृढ़ करने के लिए विभाग की ओर से हिन्दी की श्रेष्ठ पुस्तकों का पंजाबी में और पंजाबी की उत्कृष्ट कृतियों का हिन्दी में अनुवाद करके प्रकाशित करवाया जाता है। इसी योजना के अन्तर्गत इस पुस्तक का प्रकाशन किया जा रहा है।

यात्रा-संस्मरण न केवल ज्ञानवर्धक और रोचक होते हैं बल्कि साहित्य की इस विधा से यात्रा-स्थल का भौगोलिक परिचय मिलता है, वहां के रीति-रिवाज, रहन-सहन और संस्कृति का भी बोध होता है। प्रस्तुत पुस्तक "सैलानी देश-भक्त" में पंजाबी के सुप्रसिद्ध लेखक लाल सिंह कमला अकाली ने आज़ादी के परवाने हरनाम सिंह लंडे की कहानी को उन्हीं की ज़बानी कलात्मक शैली में लेखनीबद्ध किया है।

रोज़ी-रोटी के चक्कर में स. हरनाम सिंह पंजाब से अमेरिका पहुंच जाते हैं। वे वहां पर मज़दूरी करके धन एकत्रित करते हैं, फिर अपने देश आकर अंग्रेजों को देश से निर्वासित करने की इच्छा से देश-विदेश में भटकते, यातनाएं सहते हुए वे जवानी से बुढ़ापे तक की यात्रा पूरी कर लेते हैं किन्तु उनका अपना देश तब भी गुलामी की जंजीरों में जकड़ा होता है। निःसन्देह देश-भक्त हरनाम सिंह की जीवन-गाथा से सम्बन्धित प्रस्तुत यात्रा-संस्मरण प्रेरणा भरपूर है। जिसमें आरम्भ से लेकर अन्त तक कहानी जैसा प्रवाह है।

इस पुस्तक का हिन्दी अनुवाद डा. प्रेम सागर शास्त्री ने किया है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि पाठक इसका भरपूर स्वागत करेंगे।

राजेन्द्र सिंह

निदेशक

भाषा विभाग, पंजाब

अनुक्रम

प्राक्कथन

इन बातों को चालीस वर्ष बीत चुके हैं। दुनिया बदल गई है। काले बाल सफद हो गए हैं तथा जवानी में आप घटित आप बीती बातें, सपने मात्र स्मृतियां बनकर एक दूरस्थ, धुंधले से दृश्य की तरह, शून्य रूप सा धारण कर बैठे हैं पर कभी-कभी जब कौतूहल-प्रिय मन को भूत में से कलंदर की तरह नृत्य देखने की इच्छा उठती है, तब यह स्मृतियां तथा सपने मूर्त रूप धारण कर मेरी जबान से किस्सों के रूप में अभिव्यक्त होते हैं। सुनने वाले सुन-सुन कर मस्त होते हैं। किस प्रकार मेरे अन्न-जल ने प्रबल होकर, अमेरिका में बैठे, अठखेलियां करते, प्रसन्न-चित्त मुझ मजदूर को उठाकर राजनैतिक भंवरचक्र में फेंक दिया और किस प्रकार मैं समुद्रों को पार कर एशिया के घने जंगलों तथा अल्पज्ञात देशों में से गुजरा, किस प्रकार भारत को स्वतन्त्र करवाने के असफल प्रयत्नों में नाममात्र सा योगदान करता हुआ एक दर्शक (या तमाशबीन) की तरह समीप से सब कुछ देखता रहा तथा किस तरह मुझे पुनः बरतानवी साम्राज्य के केन्द्र में पहुंचने का अवसर मिला।

अब जब मैं इस मर्त्यलोक की यात्रा की समाप्ति के समीप पहुंच रहा हूं, मैं नहीं चाहता कि राजनैतिक दांव-पेंच तथा धोखाधड़ी से पाठकों के मन को कलुषित करूं। मैं अपनी आत्म-कथा को देखी, सुनी तथा स्वयं भोगी घटनाओं (स्थितियों) से भर देना चाहता हूं ताकि समय बीत जाने पर भी इन बातों की रोचकता बनी रहे तथा पाठकों के मन में इस बड़ी विस्तृत दुनिया को देखने की उमंगें उठें और मनचले पंजाबी युवकों के लिए विदेश-यात्रा एक कठिन तथा दूर की सी लालसा ही न रह जावे।

मैं ज़िला होशियारपुर के एक बड़े प्रसिद्ध गांव में पैदा हुआ था। उस गांव का नाम न बताना ही अच्छा है। दसवीं कक्षा तक मैं बड़ी मुश्किल से पहुंच सका था। दसवीं की परीक्षा भी घर वालों ने बड़े दबाव से ही दिलवाई थी। सिवाये खेलने-कूदने, नाचने के स्कूल के काम में मुझे कोई दिलचस्पी नहीं थी और न ही उत्तीर्ण होने की कोई आशा थी। मेरा घराना सम्पन्न था। नयी चढ़ती जवानी के नशे में सारी दुनिया अपनी सम्पत्ति प्रतीत होती थी तथा डर भय आदि से किसी भी प्रकार का परिचय नहीं था कि वह क्या होता है। घर वालों को मेरी पढ़ाई का इतना शौक या चिन्ता नहीं थी, जितनी मुझे गांव से तथा गांव में रहने से पैदा होने वालीबुराइयों से दूर

रखने की थी। परीक्षा से निवृत्त होने पर मेरा घर रहना घरवालों के लिए आफत सी बन गया था। नित्य जो दिन नयी लड़ाई तथा नये उलाहने, जुंडली बनाना तथा उसका नेता बनना मेरे लिए एक खेल था। गांव के लड़कों के दो सुदृढ़ लठैत धड़े बन गए। एक धड़े का मुखिया मैं था। एक दिन पशु चराते-चराते भिड़ पड़े, विरोधी धड़े का मुखिया बन्ता मुझसे बड़ा तथा अधिक ताकतवर, पहलवान लड़का था।

उसने मुझे गिराकर ऐसी पिटाई की कि मैं खेत में ही पड़ा रह गया। उन दिनों हम लड़के आजकल के दिखावटी युवकों की तरह न तो शौकीन थे, न ही धोखेबाज और न ही बातें बनाने में चतुर। घर वाले मुझे उठा लाए तथा मुझे खाट पर लिटा दिया। बन्ते के माता-पिता आए, हाल-चाल पूछ गए तथा साथ ही मेरे पिता जी को दो-चार सीधी भोली पर खरी-खरी बातें कहकर गुस्सा ठण्डा कर गए। बात (रफा-दफा) आई-गई हो गयी। दूसरे महीने मैं और वही लड़का एक मेले पर गए और फिर भिड़ गए। मैं तो टलना चाहता था पर मेरे शत्रु की विजय ने उसका सिर फिरा दिया था। उसने मुझ पर छींटाकशी की और मुझ से सहन न हुई। पहली भिड़न्त ने बड़ा पाठ पढ़ा दिया था। मैं जानता था कि शत्रु मुझसे बलवान है पर बोझिल भी है। इस प्रकार के शत्रु से भिड़ने में चटपट की चोट ही प्रभावशाली हो सकती है। मेले के लिए हमारी लड़ाई सुनियोजित कुश्ती की तरह खेल बन गई। मुझे पता था कि लम्बी लड़ाई में मैं खरा नहीं उतर सकूंगा। मैं उसकी पहली लाठियों से बचाव ही कर रहा था कि मेरा दांव लग गया तथा मैंने टिका कर एक ऐसी चोट उसके टखने पर मारी कि उसके लिए खड़े रहना कठिन हो गया। लोगों ने बीच-बचाव करा दिया तथा मैं 'बाकी गाँव चलकर सही' कह कर मेले से लौट आया। तीसरे चौथे दिन मेरे दसवीं परीक्षा में असफल होने की सूचना आ गई। मुझे अनुत्तीर्ण होने का इतना दुःख नहीं था जितना बन्ते को खाट पर लिटाने की प्रसन्नता थी तथा मेरे घर वालों को भी मेरे अनुत्तीर्ण होने का उतना दुःख नहीं था जितना मुझे घर पर रखने का था। यह सलाह-मशविरा होने लगा कि इसे किसी प्रकार गांव से निकाला जाये तथा किसी होस्टल में प्रवेश दिलवाया जाये।

उन्हीं दिनों अमृतसर में नया नया खालसा कालेज खुला था तथा सिखों में इस बात का बड़ा चाव था। मेरे पिता जी ने मन बना लिया तथा एक अन्य परिचित लड़के के साथ मुझे अमृतसर खालसा कालेज से सम्बद्ध स्कूल में प्रवेश लेने के लिये भेज दिया। यह मेरे लिये एक नयी दुनिया थी। हम दस बारह लड़के, दसवीं श्रेणी के, बड़े बड़े लड़के थे, सत्रह अठारह वर्ष की आयु के थे, खालसा कालेज उन दिनों

गांव के कैंप जैसा था। कालेज से शहर दो मील दूर था। चारों ओर खेत थे। लाहौर से अमृतसर आने वाली सड़क पर इतना कम यातायात था कि कई बार दिन में ही लोग लूट लिये जाते थे, फिर भला रातों का क्या कहना। स्टेशन से तांगे पर कालेज पहुंचने की दुवन्नी किराया लगा करती थीं तथा कालेज के लड़के कई बार शहर से तांगे पर आते और रास्ते में से ही तांगे वाले का मारपीट कर लौटा देते थे। अंग्रेजों की छावनी पास ही थी, जिस कारण उनके साथ हमारे फुटबाल के मैच बहुत हुआ करते थे। भोजनालय में भोजन का खर्च जिस महीने तीन रुपये के लगभग बनता था उस महीने हम समझते थे कि ज्यादा खर्च लिया जा रहा है। शुद्ध घी एक रुपये सेर था। कमीज़, कच्छा तथा सिर पर पगड़ी बांधकर हम स्कूल जा बैठते थे। फीस समेतः महीने का कुल खर्च छह सात रुपये पड़ता था तथा अमीर विद्यार्थियों का गुज़ारा दस रुपये में हो जाया करता था। स्कूल से पढ़कर आना, भरपेट खाना, खुले स्थानों में रहना, खेलना कूदना, चनों के मौसम में खेतों से चने के बूटे उखाड़ कर 'होले' (हरे चनों को भूनना) बनाना, खरबूजों के मौसम में रात को खरबूजों के लिये धावा बोलना आदि हमारा दैनिक कृत्य था। ताज़ा दूध, भैंस का दूध दो अढाई आने सेर था। खालसा कालेज के खुलें मैदानों में गर्मियों की रातों में हमारी खाटें, इस प्रकार बिछीं होती थीं जैसे कोई फौज डेरा डाले हो। चारों ओर के आसपास के गांवों के, जाटों के साथ हमारी भिड़न्तें होती रहती थी जिनमें हम बड़े बड़े लड़के बहुत बढ़चढ़ कर हिस्सा लिया करते थे।

लगभग छह महीने तक तो मैं ज़रा दबा सा रहा पर आखिर हृष्टपुष्ट शरीर तथा बेफिक्री के खुले जीवन की बेचैनी कब तक दबाई जा सकती थी। जब हमारे मैच शहर के अन्य स्कूलों के साथ होने लग पड़े तब हमारे लिये एक नया मैदान खुल गया। क्रिकेट के मैचों में दो दो तीन तीन दिन छुट्टी रहती। शहर जाते, सारा दिन शोरोगुल करते, मैच समाप्त होने पर यदि विजयी होते तो वैसे ही भंगड़ा नाच करते हुए कालेज पहुंचते और यदि पराजित होते दिखाई देते तो मैच समाप्त होने से पहले ही लड़ पड़ते। लड़ाई शुरु हुई नहीं कि शहर के 'पढ़ाकू' विद्यार्थी तुरन्त मैदान खाली कर देते। हमारी इस उद्दण्डता को देखकर शहर के स्कूल वालों ने इसका उपाय ढूंढ निकाला। उन्होने मैचों में शहर के गुण्डे तथा निठल्ले मुशण्डे लाने शुरु कर दिये। चौक फरीद के मुसलमान गुण्डे बड़े कड़ियल थे। वह हमारे लड़कों के साथ छेड़छाड़ भी करते और हमारा मुकाबला भी करते। हमें भी छूट मिल गई तथा हमने चौक फरीद के मशहूर गुण्डों की एक दो बार अच्छी पिटाई की। हमारी पढ़ाई की बात पीछे रह गई तथा कालिज और साथियों के स्वाभिमान का प्रश्न मुख्य हो गया।

इसमें मैंने अच्छे हाथ दिखाये। भाव यह कि हम पढ़ाकू तो जो थे, सो थे, साथ ही साथ बलवान लठैत भी हो गये। शहर के गुण्डों के साथ हम ब्यौंत बना (सोच-समझ) कर, चुनौती देकर भिड़ जाते थे और प्रत्येक बार उन्हें करारी हार देने लगे। मेरा नाम तभी से हरनाम सिंह 'लण्डा' पड़ गया था। हम तीन चार व्यक्ति ऐसे थे कि हमारे सामने यदि पचास गुण्डे आ जाते तो हम उन्हें धकेल कर शहर में भगा देते थे। 'लण्डे' की और 'लाट' की धाक जम गयी। हमारे हौंसले कितने बढ़ गये थे इसका अनुमान नीचे लिखे विवरण से लग सकता है।

एक बार मैं 'लाट' तथा वीर सिंह नामक फुटबाल का खिलाड़ी तांगे में कालेज आ रहे थे। सड़क पर तीन चार गोरे (अंग्रेज) सिपाही हाथों में मूठ वाली बैंते लिये सैर कर रहे थे। 'लाट' के दिल में कुविचार जागा और उसने तांगे को रोक लिया तथा वह दौड़ा-दौड़ा गोरों की ओर पहुंचा उसने जाते ही एक गोरे के मुख पर दो ऐसे करारे थप्पड़ जड़े कि वह चकरा गया तथा जो कुछ न सूझी। मेरे मुख से 'लाट' का नाम निकला और मैंने उसे आवाज़ लगाई कि वह आ जाये। गोरों ने तेजा सिंह नाम नोटकर लिया और यह भी नोट कर लिया कि वह फुटबाल खेलने की वर्दी में हैं। गोरे सीधे कालेज में पहुंच और और उन्होंने प्रिंसीपल से शिकायत की। दूसरे दिन 'लाट' को सार्वजनिक रूप से बैंत लगाये गये। इस प्रकार बिगड़ते-बिगड़ते हम पूरी तरह से बिगड़ गये स्कूल के होस्टल का सुपरिटैंडंट नौरंग सिंह बड़ा रौबीला तथा सख्त स्वभाव का व्यक्ति था। वह हमें खाने-पीने में तंग करने लगा। हमने उसे हाथों से ऐसा सीधा किया कि उस ने फिर कभी भी चूं तक नहीं की। यहां तक नौबत पहुंच गयी कि मुख्याध्यापक भी हमसे कन्नी कतराने लगा। हमारा स्कूल में रहना कठिन प्रतीत होने लगा। मैंने दसवीं पास करने का प्रयास ही नहीं किया। दो बार परीक्षा देने के बाद मैं तीसरी बार अभी तैयारी ही कर रहा था कि मेरे एक रिश्तेदार ने मेरा अमरीका जाने का संयोग बना दिया मैं अमरीका (यू. एस. ए.) के एक शहर पोर्टलैण्ड के सपीम एक कारखाने में नौकर हो गया।

पंजाब से अमरीका आ पहुंचना ऐसे ही था जैसे कोई कच्चे कोठे से निकल कर शीशमहल में पहूंच जाये। कुछ एक महीनों में ही मुझे अनपढ़, पराधीन तथा छोटे होने की झिझक सी लगने लगी। कामकाज में तथा दुनिया की नज़रों में मैं और मेरे साथ का गोरा दोनों समान थे, दोनों एक ही काम करते थे, लगभग एक समान वेतन पाते थे पर दोनों के रहन-सहन में बड़ा अन्तर था। मैं अपने प्रति सप्ताह

तीस बतीस डालरों में से बीस बाईस बचा लेता था पर मेरा गोरा साथी सारे डालर खर्च कर देता था मैं सामान्य भोजन करता था पर यह शराब भी पीता था। मैं रविवार के दिन अपने निवास पर जाकर सो जाता था पर वह नयी पोशाक पहन कर लड़कियों की बांह में बांह डालकर गिरजाघर जाता था। मैं कारखाने के मालिकों को 'ईश्वर' समझता था और वह तनिक सा सिर हिलाने से अधिक कुछ नहीं करता था। भाव यह कि आजाद सभ्यता वाली दुनिया भिन्न ही प्रकार की होती है। इस नयी दुनिया में रहते दो अढाई वर्ष बीतने पर ही मुझे अपनी छोटी संकीर्ण दिल-दिमाग वाली दुनिया से थोड़ा बहुत छुटकारा मिला और मैं अपने गोरे साथी की तरह दुवन्नी का अंग्रेजी अखबार लेकर पढ़ने लगा तथा कभी-कभी मदिरालय में जाकर झागवाला ग्लास थामें उसकी तरह अंग्रेजी में 'गिटमिट' करने।

लोग आज मुझे बाबा कहकर पुकारते हैं। पर जब मैं अपनी लम्बी सी करतूतों और घटनाओं भारी ज़िंदगी पर दृक्पात करता हूं तो समझता हूं कि मुझे 'बाबा' कहलाने का कोई अधिकार नहीं है और न ही मुझे यह संबोधन अच्छा लगता है। मैं अपना वही प्रारम्भ के दिनों का नाम रखना चाहता हूं जो मेरे मित्रों ने मुझे दिया था, जिनके साथ मिलकर मैंने इस जीवन की कम से कम एक शिक्षा ग्रहण की थी कि 'डंडा पीर है विगड़ियां तिगाड़ियां दा' (अर्थात् बिगड़े लोगों को डंडा ही ठीक मार्ग पर ला सकता है।)।

हरनाम सिंह 'लण्डा'

अध्याय 1

नई दुनिया

पांच सौ वर्ष पूर्व कोलम्बस ने अमरीका की खोज की तथा उस धरती पर पैर रखा। अमरीका को लोग 'नई दुनिया' कहने लगे। एशिया तथा यूरोप जहां धर्मों और सभ्यताओं का जन्म हुआ 'पुरानी दुनिया' कहलाने लगे। लगभग चार सौ वर्ष पूर्व इंगलैंड के छोर में 'मे-फ्लवर' (May-flover) नाम का एक जहाज़ चला। इस में इंगलैंड के कोई लगभग दो सौ परिवारों के बूढ़े, बच्चे, जवान शामिल थे। यह लोग इंगलैंड में धार्मिक स्वतंत्रता के अभाव के कारण रुष्ट होकर अमरीका की ओर चल पड़े थे। इनमें से लगभग आधे सौभाग्यशाली व्यक्ति अमरीका पहुंच सके थे। इन्हें तथा इनकी सन्तान को जिन घोर कठिनाइयों और यातनाओं का सामना करना पड़ा वे अमरीका के इतिहास में पूर्णतया अंकित है। अमरीका के पूर्वी छोर पर इनकी प्रारम्भिक बस्तियां स्थापित हुईं। अमरीका उन दिनों निर्जन देश था, इसकी अपार धन-संपदा के अनबिंधे मोती अछूते बिखरे पड़े थे। दूर कहीं कहीं यहां के आदिवासी (Red Indians) मटमैले रंग के व्यक्ति निवास करते थे, जिन्होंने अंग्रेजों के वहां आबाद होने के प्रयास में बहुत रुकावटें डालने की कोशिश की, पर वे पश्चिम की इस बाढ़ को रोकने में सफल न हुए। अमरीका पर कब्ज़ा करने का प्रयास प्रारम्भ में स्पेन तथा पुर्तगाल के नाविकों ने किया। जैसे-जैसे समुद्रों पर इनका अधिकार घटता और अंग्रेजों का बढ़ता गया वैसे-वैसे अमरीका पर भी अंग्रेजों की पकड़ और मज़बूत होती गई। अमरीका का सबसे बढ़िया तथा प्राकृतिक संपदा में भरपूर वह क्षेत्र जिसे 'युनाइटिड स्टेटस' कहा जाता है, विश्व के इतिहास में किसी भी राष्ट्र या देश ने इतनी तेजी से प्रगति नहीं की, इसका बड़ा कारण यह था कि यह देश बिल्कुल अछूता तथा निर्जन था। इस देश को

बसाना या आबाद करना कोई आसान काम नहीं था। यह तो परिश्रमी हाथों, साहसी पुरुषों तथा निष्ठावान व्यक्तियों का ही काम था। उन्होंने घने अंधेरे जंगलों को साफ किया, मैदान बनाया। पहाड़ों नदियों को चीरते 'मे-फ्लावर' जहाज़ में पहली बार आये परिवार तथा उनकी सन्ततियां और बाद में आने वाले अन्य यूरोपीयन लोग अमरीका के पूर्वी किनारे से पश्चिमी किनारे तक फैल गये। अशान्त सागर से चलकर यह लोग प्रशान्त सागर के किनारों तक जा पहुंचे। जंगलों और टीलों को समतल कर दिया गया, जहां खेत लहलहाने लग पड़े। नदियों में लकड़ी के जहाजों द्वारा यातायात एवं वाणिज्य व्यापार होने लग पड़ा। खेती में देश समृद्ध हो गया तथा जब लोहे और कोयले की खाने मिल गई तब तो मानो मिट्टी से सोना निकल पड़ा। चार सौ वर्ष तक इस देश में कोई बड़ा युद्ध नहीं हुआ। आपस में एक दो छोटी-छोटी लड़ाइयां हुईं पर वे सुधार और शक्ति की वृद्धि के लिए हुई, विनाश के लिए नहीं। उत्तरी एवं दक्षिणी अमरीका के सारे राज्यों का सिरमौर यू.एस.ए. है जिसका महान आदर्श यह है कि वह किसी अमरीकी राज्य के काम में टांग नहीं अड़ाता, साथ ही किसी गैर अमरीकी देश को यहां के किसी राज्य पर अधिकार नही जमाने देता। इस प्रकार यूरोप के समस्त युद्ध यूरोप में ही रह जाते हैं तथा अमरीका के सभी राज्यों में अमन-चैन रहता है।

1913-14 में जब मुझे अमरीका में रहते हुए लगभग एक वर्ष बीत गया था यू.एस.ए. अभी उन्नति के शिखर पर नहीं पहुंचा था। अमरीका के पश्चिमी किनारों की परछाई शान्त महासागर की लहरों पर दूर तक पड़ती है क्योंकि इस किनारे के साथ-साथ ऊंचे पहाड़ है जो जंगलों से ढँके रहते है। इस किनारे के बड़े शहरों में जापान, आस्ट्रेलिया, भारत तथा अनगिनत द्वीपों में जहाजी यातायात होता रहता है। धुर उत्तर में जहां अलास्का राज्य की सीमाएं रूस को स्पर्श करती हैं इतनी सर्दी पड़ती है कि वहां बस्ती बसाना असम्भव सा है। इन भौगोलिक स्थितियों के कारण अमरीका स्वाभाविक तौर पर लड़ाइयों से बचा हुआ है। आगे की ईश्वर जाने।

मैं सीधा जापान से जहाज द्वारा ओरेगन के शहर पोर्टलैंड जा पहुंचा था और अविलम्ब ही समीप के एक लकड़ी चीरने के कारखाने में नौकर हो गया था। तब तक न तो मैंने इस देश का कुछ देखा था और न ही मुझे देखने की कोई समझ थी। दूर दूर तक वृक्षों की पहाड़ी दून जैसी थी जिसमें मालिकों ने रेल की पटड़ियां बिछाई हुई थीं। जगह-जगह लम्बे ऊंचे जवानों ने लकड़ी के झोंपड़े बनाये हुए थे। इनका काम, निशान लगे वृक्षों को काटना तथा उन्हें गिरा कर साफ करना था। वृक्ष सामान्यत: ही सौ सौ फुट से लम्बे होते थे। सफरी आरियों द्वारा उनकी छोटे-छोटे संभाले जा सकने वाली गेलियां बना रेल में लाद कर उन्हें कारखाने में लाया जाता था, जहां वे बड़ी देर तक

पड़ी सूखती रहती थीं। हमारा कारखाना एक अच्छे बड़े गांव जैसा था। अढ़ाई तीन सौ के लगभग मजदूर, दस बारह बड़े इंजीनीयर अधिकारी आदि कुछ व्यापारी तथा ठेकेदार, दुकानें, जिनमें खाने पीने पहनने आदि की दैनिक उपयोगिता की वस्तुएं उपलब्ध थीं, मजदूरों के लिए बैरकें, कुछ खाने-पीने के होटल, चाय की दुकानें आदि कुल मिलाकर एक अच्छी खासी स्वतन्त्र बस्ती बनी हुई थी। दिन रात बिजली की सुविधा थी। सर्दियों में गर्माहट भी बिजली द्वारा मिलती थी। मेरे लिये जिसने जीवन में शुरू के पन्द्रह-सोलह वर्ष स्कूल में टाटों पर या गांव में ढोर चराते हुए या लड़कपन में लड़ते भिड़ते बिताये थे, इस प्रकार के स्थान पर नये लोगों में आकर महीने भर में इतना कमा लेना जितना पंजाब का जाट बर्ष भर में न कमा सके, सचमुच एक नई दुनिया थी।

पंजाब एक सपना सा हो गया था। पंजाब वाला मेरा रूप बदल चुका था। नई दुनिया में नया रूप ही धारण करना था। लकड़ी चीरने वाले कारखाने में काम करने के लिए बाहुबल, चुस्ती तथा मेहनत की आवश्यकता होती है। हम सभी कारखाने के मजदूर छ:-छ: फुट के जवान हृष्ट पुष्ट तथा पहलवानी शरीर के थे तथा हमें खुराक भी अच्छी मिल जाती थी। हमसे भी ऊंचे-लम्बे तथा शक्तिशाली वे थे जो जंगल में कुल्हाड़े का काम करते थे। इस कारखाने में तीन अन्य पंजाबी थे और हम चारों की एक मण्डली जैसी बनी रहती थी।

एक दिन उड़ती सी बात सुनी कि मिल (कारखाने) में हड़ताल करने के मश्वरे हो रहे हैं। मिल के मैनेजर से गोरों का छुट्टी आदि के बारे में झगड़ा था। हम तो परदेस में रुपया कमाने के लिए गए थे, न तो हमें अधिक छुट्टियों की आवश्यकता थी और न इन झगड़ों में पड़ने की। गोरे हमें अपने साथ घसीटना चाहते थे। पर हमारी सहमति न थी। वैसे हम उनकी एकता से भी डरते थे पर हमें यह भी पसन्द नहीं था कि झमेलों में पड़कर नौकरी ही गंवा बैठें। मजदूरों की हड़ताल में आरों काम तो भला क्या चलना था प्रबन्धक चाहते थे कि कम से कम उतने लोग काम में जवाब न दें जिनसे बस्ती की आवश्य कतानुसार बिजली और पानी का काम चलता रहे। जवाब न देने वालों में हम चारों परदेसियों के नाम सबसे पहले आते थे। अभी हड़ताल का दिन निश्चित भी नहीं हुआ था कि एक शनिवार की रात को हम में से एक पंजाबी को गोरों ने घेर लिया और उस पर दबाव डालने लगे, कि वह 'हां' या 'न' में जवाब दे। नौबत हाथापाई तक पहुंच गई पर वह बचकर आ गया। हम चौकन्ने हो गए। हमने अकेले चलना फिरना बन्द कर दिया तथा गोरों के साथ खींचातानी बढ़ गई। अन्ततः गोरों ने हड़ताल कर दी पर हम चारों काम पर हाजिर रहे। आरों का काम तो रुक ही जाना था, पर तीन

चार फोरमैंनों ने तथा हमने मिलकर इतना काम संभाल लिया कि मिल तथा बस्ती की दुकानों आदि की रौशनी तथा पानी आदि बन्द न हो। गोरों की हड़ताल अधूरी सी रह गई पर हमारे लिए खतरा दिनों दिन बढ़ता गया। मिल वाले हमारी पीठ ठोकने के लिए सब कुछ करने को तैयार थे परन्तु हड़ताल से हमारे सुखी जीवन पर दुख एवं क्लेश के बादल छा गये। हम दुविधा में फंस गये, न तो हम मिल वालो को जवाब देकर हड़ताल करने वालों में शामिल होने योग्य रहे और न हमें यह भरोसा ही रहा कि हड़ताल समाप्त होने पर हम गोरों में रहकर पहले की तरह काम कर सकेंगे। हड़ताल समाप्त करने के लिए, मिल मालिकों ने, हड़ताल पर गये लोगों के साथ बातचीत शुरु कर दी। हड़ताल वालों की एक बडी मांग यह भी बन गई कि मिल में किसी एशियाई को नौकर न रखा जाए। हम कैदियों की तरह रहते थे। हर एक बात की तंगी महसूस होने लगी और हर समय डर लगने लगा। अन्ततः हमने महसूस किया कि देश तो गोरों का ही है, हमें किसने अपनी छाती से लगाए रखना है। जाट जाटों के भोलू किस का? (अर्थात अंग्रेज़ अंग्रेज़ों के रहेंगे परदेसियों को कौन सहारा देगा?) हड़ताली लोग भी तंग थे जो कमाते थे वही खा लेते थे।। इतने दिन उधार पर और कर्ज़ की शराब पर कैसे गुज़ारा हो सकता था। मुझे आशंका होने लगी कि इस हड़ताल से या तो किसी का खून होगा और यदि न भी हुआ तो हम पंजाबियों का यहां किसी भी सूरत में रह सकना असंभव है। हमारा होटल मालिक एक बूढ़ा सा चीनी व्यक्ति था। देखने में वह अफीमी सा प्रतीत होता था पर भीतर से गहरा 'लाल'। उसका होटल हड़तालियों का अड्डा बना रहता था और मिनट मिनट की खबर वहां से मिल सकती थी। उसने सूचना दी कि आज सूर्य अस्त होते ही गोरों ने तुम पर हमला करना है। हमें पहले हो आशंका थी कि यह हड़तालहमारे लिए शुभ नहीं। यह हमारा रक्तपात करवायेगी। पर हमें बड़ी चिन्ता यह थी कि हम पर आक्रमण किस रूप में होगा? कैसे शस्त्र इस्तेमाल होंगे और कितने लोग आक्रमण करेंगे।

अमरीका एक बड़ा धनवान देश है। इसका इतिहास भी बहुत शानदार है पर दाग़ तो चांद पर भी होते हैं। इनकी दो-एक बातें बड़ी क्रूर हैं। एक तो यह कि ये एशिया वासियों और हब्शियों को अपने बराबर नहीं समझते और अपने (देश) में देखना बर्दाश्त नहीं कर सकते। जहां देखो हब्शियों की बस्तियां अलग होगी। चीनी तथा जापानी अमरीका में बहुतेरे हैं। खाना पकाना, चाकरी का काम चीनी करते है पर क्या मजाल कि अमरीका वाले कभी इन पर विश्वास करें। जापानी लोग सामान्यतः व्यापार या व्यवसाय तथा नौकरी भी करते हैं पर इन्होंने हर जापानी को लगभग 'दस नम्बरिया' सा समझा हुआ है। साम्प्रदायिक भेद भाव न्यूनाधिक सभी कौमों में होता है, पर अमरीका-निवासियों में यह इसलिए अधिक खटकता है कि इन्हें एशिया वासियों से रत्ती

भर भी खतरा नहीं है फिर भी ये उन्हें अपने से दूर दूर रखना पसन्द करते हैं। यूरोप से प्रत्येक जाति के लोग यहां आकर निवास कर सकते हैं पर यह लोग एशियावासियों के नाममात्र से नाक भौं चढ़ाने लगते हैं। इसके अतिरिक्त अमरीका निवासी सामान्य ईसाइयों से भी अपने जीवन को ऊंचा समझते हैं। सारे एशिया में इनके मिशनरी डेरा डाले बैठे हैं, करोड़ों डालर दुनिया को ईसाई बनाने के लिए खर्च करते है पर जब चीनियों या हिन्दुस्तानियों को बराबरी देने का प्रश्न हो तब बड़े से बड़े अमरीकी के मुख से हां नहीं निकलेगी।

एर अन्धेर की बात यह देखी कि किसी गोरी का किसी एशियानिवासी या हब्शी से मेल इन्हें बिल्कुल ही सहन नहीं होता। काले और गोरे को एक स्थान पर देखकर इनका दिमागी सन्तुलन बिल्कुल बिगड़ जाता है। कितने ही हब्शी प्रति वर्ष इनके इस पागलपन का शिकार हो जाते हैं जो बहुत ही क्रूर ढंग का होता है। जब किसी शहर या गाँव में काले और गोरों के मिलने की बात हो जाती है वह चाहे स्वेच्छा से हो या बल से, गोरे लोग इकट्ठे होकर काले को वृक्ष से बांध कर जीवित ही जला डालते हैं। ऐसी हत्या की सम्पूर्ण अमेरिका में कोई सुनवाई या फरियाद नहीं। वैसे सब कुछ हैं, विधान है, दण्डावली है, न्यायालय हैं पर ऐसी प्रत्यक्ष क्रूर हत्या की पूछताछ भी कोई नहीं करता एक जुण्डली ही ऐसी बनी हुई है जो इस प्रकार के काले लोगों का पता लगते ही उनका सफाया कर देती है। इस जुण्डली का नाम क्लू कैल्क्स क्ला है और कातलों को इस तरह बेरहमी से समाप्त करने को 'लिंच' कर देना कहते हैं। अन्य देशों में बलात्कार की सजा अधिक से अधिक आठ दस साल होती है। पर इस ऊंची सभ्यता वाले प्रथम श्रेणी के देश में किसी गई-गुज़री गोरों को पकड़ लेने की सज़ा वहशी (असभ्य) देशों से भी क्रूरतर है।

मेरे यहां आने पर निकटवर्ती राज्य में ऐसी एक दो घटनाएं सुनी थीं। जब हमें पता चला कि गोरे हम पर आक्रमण करने वाले हैं तो हमें भांति भांति के भयावने खयाल आने लगे। यदि सारे के सारे दो-अढ़ाई सौ गोरे मजदूर हम पर टूट पड़े तो हम चार पंजाबियों की बोटी बोटी कर सकते हैं और ऐसे समय कारखाने के प्रबन्धक या उनके दो चार सिपाही क्या (मुकाबिला) कर सकते हैं। हमारे बचाव का एक ही रास्ता था कि हम किसी न किसी तरह यहां से बच निकल कर बड़े शहर पोर्टलैण्ड में पहुंच जाए जहां इस प्रकार की बुरी मृत्यु की कम संभावना थी तथा जहां हमारे दूसरे पंजाबी साथी हमारे लिए किसी से प्रार्थना या शिकायत भी कर सकते हैं। हमें मात्र इतनी तसल्ली थी कि गोरों के पास कोई बन्दूक आदि आग्नेय हथियार नहीं होगा।

इस पक्ष में हम बराबर थे पर सैंकड़ों के झुण्ड के सामने हम चार परदेसी क्या कर सकते थे । गोरों को हमारी ओर से किसी प्रकार के प्रतिरोध की आशंका कम ही थी । मूक अनुशासित मजदूरों से मारपीट की आशंका कौन कर सकता है । तीसरे पहर हमें सूचना मिली और लगभग पांच बजे दो दो तीन तीन की जुण्डली कारखाने के बड़े दरवाज़े के निकट चक्कर लगाने लग पड़ी । संध्या होते ही हमने अन्दर की सब बत्तियां बुझा दो ताकि बाहर वालों को हमारी हिलजुल दिखाई न दे सके । चारों ओर कंटीली तार थी और फाटक के पास दफ्तर के कमरे थे ।

कारखाने के प्रबन्धक या तो जानबूझकर अनजान होने का अभिनय कर रहे थे या सचमुच ही यह समझ बैठे थे कि सांझ को दस बीस अपेक्षाकृत अधिक तेज स्वभाव के शराबी तथा उग्र हड़ताली दफ्तर के पास आकर शोरशराबा करेंगे तथा नशा उतरने पर अपने अपने घर चले जायेंगे । हमारा ख्याल था कि वह फाटक पार करके हमसे हाथापाई करेंगे और हमें जबरदस्ती अपने साथ मिलायेंगे या अधिक से अधिक हमें खींच घसीट कर बाहर ले जायेंगे । प्रबन्धकों के पास दो तीन राइफलें थीं । पर रात के अन्धेरे में कानून से डरने वाला व्यक्ति किसी की क्या सहायता कर सकता है ।

हमारे सारे अनुमान गलत निकले । बिल्कुल अन्तिम समय पर यह सूचना मिली कि फाटक के पास जमा होने वाली लगभग एक सौ व्यक्तियों की भीड़ तो मात्र दिखावे के लिए थी, असली हमले की योजना पीछे से कंटीली तारें काटकर तोड़ फोड़ तथा अग्निकांड की थी और साथ ही हमें भी कुचल देने की थी । हम मृत्यु को इतना समीप नहीं समझते थे पर जब यह आखिरी सूचना पहुंची तो हमारे हाथों के तोते उड़ गये । हमने थोड़ी बहुत तैयारी तो की हुई थी पर रत्ती भर भी यह अनुमान नहीं था कि हमें फाटक की ओर से ही भाग निकलना होगा । हमने अपने मुंह-सिर लपेटे हुए थे और हाथों में मजबूत गांठों वाली लाठियां कारखाने में से ही काट छांट कर तैयार कर ली थी । हमारा पहला टकराव बिजली घर में ही हुआ । उनका यत्न था कि सड़कों की बत्तियों के लिए बिजली मिलती रहे । मेरे साथी फाटक के पास तैयार खड़े थे । मैं तेजी से लपक कर बिजली घर की ओर पहुंचा जहां पांच छः गोरे घेरा डाले खड़े थे और इस यत्न में थे कि अन्दर की बत्तियां जला दें । मैंने जाते ही दो गोरों को धराशायी कर दिया और देखते ही देखते बिजली घर के फ्यूज़ आदि तोड़ दिये तथा तारें उखाड़ दीं । इंजन चल रहा था पर चारों ओर अंधेरा छा गया । गोरों ने शोर मचाया पर इंजन की आवाज में बाहर आवाज़ न गयी । मैं साथियों के पास पहुंचा जो जोश और भय से कांप रहे थे । हमने मिलकर यही योजना बनाई कि लाठियां पकड़ कर ललकारते हुए फाटक वाली भीड़ पर टूट पड़ें, जो होगा देखा जाएगा तथा बाद की

बात फिर देखेंगे। हम दफ्तर की छत पर चढ़ गए। बाहर की भीड़ थी तत्तैयों के छत्ते की तरह हमले के लिए तैयार हो रही थी। किसी के हाथ में ईंट थी, किसी के पत्थर और कोई खाली हाथ ही हिला रहा था। पर लाठियों की लड़ाई का इनके पूर्वजों को भी पूर्वानुमान नहीं था। इस प्रकार की भीड़ के आगे होकर भाग उठना मौत को बुलावा देना था। भीड़ चाहे कितनी भी बड़ी हो उसके स्तम्भ होते हैं, उसका दिमाग होता है हाथ पैर तो बेचारे केवल आज्ञापालक होते हैं। मनुष्यों की भीड़ भी न्यूनाधिक पशुओं की भीड़ के समान होती है। एक भौंचक्का हुआ तो बाकी भी भयभीत हो जाते हैं। एक का मन डोला तो बाकियों के सारे शरीर कांपने लगते हैं। एक (डरके) भागे तो बाकी का झुण्ड भी पूंछे उठाकर जिधर राह मिले उधर दौड़ जाता है। भगदड़ एक संक्रामक बीमारी है जो रेडियो की लहरों की गति जैसे छूती है और दिल दिमाग सभी कुछ को एक पल भर के लिए बेसुध कर देती है।

दफ्तर कमरे की नीची सी जगह से हम चारों बाहर कूद पड़े और ललकार कर गोरों की भीड़ पर टूट पड़े। जब तक उन्हें समझ आयी कि क्या हो रहा है दस-बारह लोग सड़क पर धराशायी हो चुके थे। कोई बांह लटका रहा था और कोई सिर पकड़ कर बैठ गया था। हमारा रास्ता तो साफ होने लगा पर साथ ही चारों तरफ से पत्थरों की वर्षा होने लग पड़ी। हमारा काम यह था कि कहीं भी चार गोरे इकट्ठे न खड़े हों। जिधर भी हमें पांच सात एक स्थान पर दिखाई देते हम दौड़कर पिल पड़ते, वह या तो आधे रह जाते या बिखर जाते। ऐसे करते हुए हम जंगल की ओर खिसक रहे थे और साथ ही गोरों की शक्ति को कम कर रहे थे। बन्दूक पिस्तौल लेकर, मोर्चाबन्दी में छिपकर लड़ने वालों को भला लाठियों की आमने सामने समीप से एकदम पड़ने वाली, मार की कैसे समझ आ सकती है। लाठी गोरे के कानून में नहीं, उसकी पुस्तक में भी नहीं। जब तक कनपटी पर पड़कर धराशायी न कर दे उसका नियम ही यह नहीं बताता कि किस प्रकार चार पंजाबी और चार लाठियां आठ लोग, सौ गोरों को भगा सकते हैं। बात क्या कि भगदड़ मच गई और सड़क पर पड़ी जीवित लाशों को छोड़कर (गोरे) तितर-बितर हो गए तथा हम चारों बिना किसी खरोंच के जंगल में घुस गए तथा दूसरी प्रात: हम पोर्टलैंड शहर जा पहुंचे जहां हमें दो चार पढ़े लिखे पंजाबी मिल गए तथा उन्होंने हमारी सारी बातचीत सुनकर शहर की पुलिस को सजग कर दिया।

दूसरा अध्याय

कामा गाटा मारू

मेरे साथी बिछड़ना तो नहीं चाहते थे परन्तु एक तो हमें यह डर था कि हमारे खिलाफ, बाद में, कोई कानूनी कार्यवाई न हो तथा दूसरे इस मण्डली का बने रहना हमारे काम काज के लिए अच्छा नहीं था। वे अपने अन्य मित्रों के पास चले गए तथा मैं दो-एक दिन पोर्टलैंड में रुकने के पश्चात् कैनेडा के एक शहर वैंकूवर की ओर चल पड़ा जहां लकड़ी चीरने के कारखानों का काम बहुत बताया जाता था। वैंकूवर कैनेडा का एक बहुत बड़ा द्वीप भी है और इसी नाम का एक शहर भी है। सन् उन्नीस सौ चौदह का पहला पखवाड़ा अभी बीता नहीं था कि मैं अपने सिख मित्रों के पास वैंकूवर शहर के समीप एक कस्बे में जा पहुंचा। कैनेडा और यू.एस.ए. की बोलचाल तथा रहन-सहन आदि में अधिक अन्तर नहीं है। कैनेडा* वैसे बरतानवी साम्राज्य के अन्तर्गत है पर यहां के लोगों की रुचि अधिकतर यू एस.ए. के साथ मेल खाती है। उन दिनों बहुत से पंजाबी कैनेडा जाया करते थे। कैनेडा में पंजाबियों का कारोबार अच्छा है बहुत से सिक्खों ने अपने आरेखाने लगाए हुए हैं तथा कई लोग इस कारोबार से धनाढ्य बन गए हैं। इनके लड़के लड़किया यूरोपीय लिबास तथा बोलचाल अपना चुके हैं। परदेस में हिन्दू, सिख, मुसलमान के भेदभाव भुला दिए जाते हैं। सभी को या तो पंजाबी कहा जाता है या हिन्दू।

इन्हीं दिनों की बात है कि अमेरिका की ग़दर पार्टी बड़े ज़ोर शोर से काम कर रही थी 'ग़दर दी गूंज' नामक एक पंजाबी में छपने वाला अखबार यहां से प्रकाशित होता था। वैसे तो 'गदर पार्टी' में हिन्दू, सिक्ख, मुसलमान सभी थे पर

---

*कैनेडा अब एक स्वतन्त्र देश है।

अधिक संख्या में सिक्ख ही इस काम को चला रहे थे। अंग्रेज सरकार को इस सरगर्मी का सारा पता था और उसने कई गुप्तचर इसमें छोड़ रखे थे। इन गुप्तचरों के कारण एक दो हत्याएं भी हुई। अमरीका की 'गदर पार्टी' चाहे अपनी पूरी शक्ति से भारत में गदर करने की कोशिश करती रही पर कोई वर्णनीय सफलता इसे प्राप्त नहीं हुई।

वैंकूवर में मुझे पहुंचे अभी कुछ ही दिन हुए थे कि समाचार मिला कि एक पंजाबियों से भरा जहाज़ अमेरिका पहुंच रहा है। इस बात की बड़ी चर्चा हुई और सरकारी कर्मचारी भी चौकन्ने हो गये। सावन भादों के महीने थे जब अचानक यह ख़बर फैल गयी कि अढ़ाई तीन सौ पंजाबी 'कॉमागाटामारु' नामक एक जापानी जहाज़ में है और यह जहाज़ अपने यात्रियों को वैंकूवर उतारेगा। साथ ही यह खबर भी गर्म थी कि इन पंजाबियों को यहां उतरने नहीं दिया जायेगा।

'कॉमागाटामारु' जहाज़ की गाथा एक विशेष ऐतिहासिक महत्व की कहानी है। इसका विवरण इस प्रकार है। भारत में और विशेषत: पंजाब से बहुत से लोग अमरीका जाना चाहते थे। देश से बाहर निकल जाने का शौक पंजाबियों में अपेक्षाकृत अधिक है तथा जो सामार्थ्य हज़ार दो हज़ार रुपये यात्रा के लिये इकट्ठे करने की पंजाबी मध्य वर्ग में है वह अन्य किसी भारतीय में नहीं। गरीब तो मद्रासी भी बहुत हैं पर ज़मीन गिरवीं रखकर परदेश जा पहुंचने की हिम्मत उनमें इतनी नहीं।

पहले पहल जब अमेरिका जाने का रिवाज आम नहीं था तब अमेरिका में खुली छूट थी, पंजाबी जाते रहे। जब बहुत संख्या में लोग जाने लगे तो कैनेडा और यू. एस. ए. सरकार ने पाबन्दियां लगानी शुरु कर दीं। कभी कहते थे कि इतना रुपया पास हो, अभी अग्रेज़ी के ज्ञान की रुकावट लगा देते थे और कभी बीमारियों की। कैनेडा की सरकार बरतानवी होने के कारण स्पष्ट इनकार नहीं कर सकती थी पर रुकावटें वह भी खूब खड़ी करती थी। लगभग उन्हीं दिनों किसी बड़े अधिकारी ने बयान दे दिया कि केवल उन लोगों को प्रवेश की अनुमति होगी जो सीधे अपने देश से यहां पहुंचेंगे। इस बयान को बाबा गुरदित्त सिंह ने गांठ में बांध लिया तथा घोषणा छपवादी कि जिसने भी अमेरिका जाना है वह उससे पत्र-व्यवहार करे तथा किराया जमा करवा दें। इस तरह दो अढ़ाई सौ पंजाबी हांगकांग में जमा हो गये। बाबा गुरदित्त सिंह ने एक जापानी जहाज़ 'कॉमागाटामारु' के मालिकों के साथ लिखा पढ़ी कर ली कि वह मुसाफिरों को हांगकांग से लाद कर अमेरिका के किनारे वैंकूवर या सानफ्रांसिस्को उतारेगा। बाबा गुरदित्त सिंह का ख्याल था कि भारत से सीधे अमेरिका को कोई जहाज़ कंपनी यात्री नहीं ले जाती। इसलिये इस जहाज़ को जो सीधा हांगकांग से यात्री बैठा कर अमेरिका ले जायेगा प्रवेश की अनुमति होगी तथा यात्रियों

को अमेरिका में दाखिल होने दिया जायेगा और यदि इन्हें प्रवेश की अनुमति न मिली तो कैनेडा की सरकार का भण्डाफोड़ होगा । जहाज़ 'कॉमागाटामारु' चीन के तट से चलकर शान्त महासागर को चीरता हुआ सीधा अमेरिका पहुंचा । जब अमेरिका की सरकार को इस बात का पता चला तो पहले तो धमकाया कि वापिस चले जाओ नहीं तो सैनिक कारवाई की जायेगी । जब बाबा गुरुदित्त सिंह के यात्री न डरे तो हुकम दे दिया गया कि न तो जहाज़ को किनारे लगने दिया जाये और न ही इसके किसी यात्री को तट पर उतरने दिया जाये । अमेरिका के भारतीयों ने बहुत शोर मचाया पर किसी ने बात तक न सुनी । जहाज़ 'कॉमागाटामारु' बन्दरगाह में किनारे से कुछ दूर लंगर डाले खड़ा था । चारों ओर पुलिस अग्नि कश्तियाँ लिये गश्त लगा रही थी। न किसी को बाहर से जहाज़ के भीतर जाने की आज्ञा थी और न ही जहाज़ से बाहर उतरने की । दो चार दिन इसी प्रकार बीत गये तो समाचार पत्रों में इसकी चर्चा छपने लगी । भारत सरकार के लिए भी दुविधा खड़ी हो गई । हम चाहते थे कि हमारे भाईयों को अमेरिका में प्रवेश करने दिया जाए । हमने पूरा ज़ोर लगाया, वकील किये मुकद्दमा किया पर (हमारी) कोई पेश न चली । अन्ततः जहाज़ के यात्री भी तंग आ गये और इस रवैये के विरोध के लिए तैयार हो गये । इधर से सरकारी पुलिस जहाज़ पर चढ़कर लंगर उठाने तथा जहाज़ को चलाकर समुद्र में ठेलने के लिये यत्न करने लगी । उधर से यात्री उन्हें रोकते थे, हाथापाई हो जाती थी । दोनों ओर चोटें लगती थी। बन्दरगाह के किनारे तमाशबीनों की, जिनमें भारतीय होते थे, भीड़ लगी रहती । न जहाज़ पीछे हटा और न यात्री तट पर उतरे । जहाज़ वालों का राशन समाप्त हो गया, यात्री भूखों मरने लगे । उधर जहाज़ के जापानी अकिारी तंग आ गये । जहाज़ पर पीने का पानी भी समाप्त होने को आ गया । जब गोरी पुलिस ने देखा कि यात्री मुकाबला करते हैं तो उन्होंने जहाज़ की ओर पानी के नलके खोल दिये तथा यात्रियों को, जो जहाज़ का लंगर नहीं उठाने देते थे पानी से बुरी तरह गच कर दिया, पर यात्री अड़े रहे ।

यात्रियों की इस दयनीय दशा को देख कर हम भारतीयों ने एक गोरा वकील किया और बड़े उच्च न्यायालय में वकालत करने के लिए भेज दिया । जहाज़ के यात्रियों को, जब हम आज्ञा लेकर इस बहाने मिले कि हम उन्हें वापिस जाने के लिए प्रेरित करेंगे तो हमने देखा कि उनकी हालत बहुत ख़राब थी । राशन लगभग समाप्त हो चुका था और पानी भी केवल तीन चार दिनों का शेष था । बहुत से यात्री हताश और उदास थे । उनमें से कुछ बाबा गुरुदित्त सिंह के साथ झगड़ने को तैयार थे कि उसने इन्हें मुसीबत में फंसा दिया है और स्वयं रुपया इक्ट्ठा कर लिया है । भाव यह कि न तो कोई इस बिगड़ी का मालिक की बनता और न ही युक्ति ही सूझती थी । बीच में

कई ऐसे भी थे जिन्होंने जुआरिए के दांव की तरह अपना सब कुछ इसी यात्रा पर लगा दिया था। उधर भारत को तारें पहुंचने लगीं कि सिखों को कैनेडा में उतरने नहीं दिया जा रहा हालांकि वह अपना सीधा जहाज़ लेकर गये हैं। इधर अमेरिका के सिखों में रोष की लहर उठी। ग़दर पार्टी के कार्यकर्ता तो पहले ही अंग्रेज़ों की जड़ें खोखली करने के लिए सारा जोर लगा रहे थे। अब इन्हें और मौका मिल गया। पश्चिमी तट के आसपास के सारे बड़े बड़े पंजाबी वैंकूवर पहुंच गये। सारा सारा दिन सलाह मश्वरे होते कि अब क्या किया जाए पर सरकारी आदेश और निश्चित बरतानवी पालिसी के विरुद्ध कोई क्या कर सकता था। 'कॉमागाटामारु' का वास्तविक लक्ष्य तो सिद्ध होता दिखाई नहीं देता था पर इसका दूसरा लक्ष्य बड़ी अच्छी तरह सिद्ध हो रहा था। अंग्रेज़ों के विरुद्ध गुस्सा और जोश आषाढ के तापमान की तरह बढ़ रहा था। कहीं कहीं कैनेडा तथा यू. एस. ए. के इक्का-दुक्का समाचार पत्र भी 'कॉमागाटामारु' के यात्रियों के साथ सहानुभूति प्रकट करने लग पड़े थे।

पर सबसे बड़ा प्रश्न अविलम्ब सुलझाई जाने वाली समस्या तो यह थी कि 'कॉमागाटामारु' के यात्रियों को भूख-प्यास से बचाया जाए। बाकी सब प्रश्न बाद के थे। अब प्रश्न यह नहीं था कि यात्री उतरें अपितु यह था कि जहाज का झगड़ा और कैसे निलम्बित रखा जाए तथा यात्रियों को राशन पानी कैसे पहुंचाया जाए। आदमी की परख तभी होती है जब कोई बाधा न आ पड़े। जब तक पहाड़ आगे न आए तब तक पहाड़ पर चढ़ने वाला भी पैदा नहीं हो सकता। कठिनाई पहले उत्पन्न होती है और मनुष्य बाद में उत्पन्न होते हैं। पर कठिनाइयों से जूझने वाले सभी नहीं होते। दुनिया के व्यक्तियों को दो वर्गों में बांटा जा सकता है, एक बातें करने वाले, दूसरे काम करने वाले, एक कठिनाई पड़ने पर शोर मचाने वाले, दूसरे एक ओर बैठकर उपाय खोजने वाले, दांत भींच कर, कमर कसकर, सिर उठाकर उलझनों को सुलझाने वाले। चारों ओर नजर घुमाकर देख लो यही दो वर्ग हैं। प्रथम वर्ग का काम है या तो ढोल ढमक्का तथा रौनक लगाए रखना या चीखना-चिल्लाना। इस श्रेणी में बड़े बड़े लीडर पार्लीयामैंट तथा कौंसिलों के सदस्य मन्त्री, समाचारपत्र, भाषणकर्ता, धर्मशालाओं के मालिक, धर्म-प्रचारक, हलवामांडा खाने वाले प्रचारक तथा उपदेशक-इनकी गिनती बहुत है। इनका असली काम दुनिया को व्यर्थ की उलझनों में फंसाये रखना होता है जिससे सामान्य लोगों को यह लगे कि यह बड़ा काम कर रहे हैं। इनकी ज़बान भी और लेखनी भी चलती है और जब दोनों चलती है तो ऐसे लगता है कि दुनिया में क्रान्ति लाई जा रही है। समझदार व्यक्तियों ने वैसे ही नहीं कहा कि 'दुनिया खाइए मक्कर नाल' दुनिया फरेब का शिकार होती है? यदि मैं स्पष्ट कहूं कि मैं तो ठाला बैठूंगा तुम अन्न पैदा करो तो मुझे कौन ठाला बैठने देगा। यदि मैं कहूं तुम खेत में जाकर हल चलाओ

मैं तुम्हें एक पैसे की कनक का एक रुपया दिलवा दूंगा तब आप पसीना बहायेंगे और मैं पंखे तले कुर्सी पर बैठ सकता हूं। यह है बातूनी दुनिया, टालस्टाय के कथनानुसार दिमागी काम करने वाली दुनिया के दिमाग में काम होता किसे दिखाई देता है। दूसरी श्रेणी है हम जैसे काम करने वाले ग़रीब व्यक्तियों की दुनिया जो सुबह से ही उठकर बिल के चींटीं की तरह काम में जुटे रहते हैं जो कण कण तृण तृण जोड़ते हैं, मुख से कम बोलते हैं। यह हैं काम करने वाले जो धरती के (पौराणिक) धवल बैल बन कर; इसे सिर पर उठाए हुए हैं, इसका पालन करते हैं। धरती इन्हीं के सहारे खड़ी है।

'कॉमागाटामारु' के यात्रियों की दशा देख सुनकर अधिकांश को तो भाषण ही सूझते थे तथा भाषण भी, लच्छेदार भाषा में, ढोल बजाकर, श्रोताओं की भीड़ इकट्ठी करके, रंगीन तथा मसालेदार शानदार पुलाव की तरह परोसना दो चार आंसू भी बहाने, साहिबज़ादों (श्री गुरु गोबिन्द सिंह के पुत्रों) के बलिदान की बात भी बीच में पिरो देनी, उच्च स्वर में बैंत (पंजाब का लोकगीत) सुनाने। ऐसे व्यक्ति विरले ही थे जिन्हें भाषण नहीं सूझते थे, वह तड़प रहे थे कि अढ़ाई तीन सौ कैदी ग़रीब यात्रियों की जो अपनी गांठ से पैसा खर्च कर हज़ारों मील समुद्र पार करके, मज़दूरी के लिए आए थे, परन्तु आगे कोई सत्कार के शब्द कहने वाला क्या दुत्कार के शब्द भी कहने वाला कोई न था, किस प्रकार सहायता की जाए, उन्हें किस प्रकार भूख और प्यास से बचाया जाये। इन विरले व्यक्तियों में एक बाबा ज्वाला सिंह था। ईश्वर उसका भला करे। उसे लोग 'पोटेटोकिंग' भी कहते थे क्योंकि वह आलुओं की खेती बड़ी कुशलता से करवाता था और बड़ा सफल किसान बन गया था। अमेरिका देश की यही महानतम विशेषता है कि यहां छोटे से छोटे गरीब को भी ऊपर उठने का पूरा अवसर मिल जाता है। यू. एस. ए. के छोटे से छोटे व्यक्ति के लिए प्रथम नागरिक अर्थात राष्ट्रपति बनने में कोई रुकावट नहीं। बाबा ज्वाला सिंह जो अपने इलाके तरनतारन में दस बीघा ज़मीन का मालिक भी नहीं था और यदि था उन दस बीघों के बावजूद अच्छा निर्वाह नहीं कर सकता था, अमेरिका जाकर इतने आलू उपजाने लग पड़ा कि लोग उसे 'पोटेटो किंग' कहने लग पड़े। मुझे वह दिन अच्छी तरह याद है। प्रशान्तसागर के तट पर वैंकूवर की बन्दरगाह में काले तथा गोरे पंक्तियां बांधे खड़े थे। गर्दनों को उठा उठा कर इस शर्मनाक तथा सभ्यता से गिरे हुए तमाशे को देख रहे थे जो अढ़ाई सौ गरीब भारतीयों पर किराये के जहाज के गिर्द हो रहा था। गोरा पुलिस तथा कुछ फौजी जहाज़ के साथ आग्नेय नौका को लगा कर ऊपर चढ़ने का यत्न कर रहे थे। एक दूसरी नौका से ठण्डे पानी की जांघ जितनी मोटी धारा इस तरह फैंकी जा रही थी जैसे आग की लपेट में आए मन्दिर की आग बुझानी हो ? भारतीय यात्री जहाज़ के चारों ओर दौड़ दौड़ कर

कभी इधर कभी उधर पुलिस के झुण्ड को रोकने की कोशिश कर रहे थे कि कहीं अनजाने में वह ऊपर न आ चढ़े। जहाज़ का जापानी कपतान तथा उसके ठिगने साथी ऊपर खड़े देख रहे थे। सामने जहाज़ के ऊपर से भानुदेवता लज्जा से प्रशान्त सागर में कहीं नाक डुबोने को नीचे की ओर जा रहा था। कोई विरला ही गोरा होगा जो अपनी सरकार की इस निर्लज्ज हरकत में खुश हो रहा हो, नहीं तो सारे ही शोक प्रकट कर रहे थे। एक बुत सा बना हुआ ज्वाला सिंह जहाज़ की ओर टिकटिकी लगाए बैठा था। उसे यह भी सुध न रही थी कि वह कहां खड़ा है। वह यह भूल गया लगता था, काफी देर के बाद उसके मुख से अंग्रेज़ी में एक वाक्य निकला, और इन गरीबों का कसूर इतना ही है कि यह मजदूरी करके रोटी खाना चाहते हैं। कितनी शर्म की बात है। 'बाबा ज्वाला सिंह के समीप खड़े गोरे कुछ पीछे हट गये कुछ गर्दनें लटकाए चल दिये। मैं उसके पीछे कुछ दूरी पर खड़ा था। हमारे देखते देखते सूर्य छिप गया। प्रशान्त सागर की छाती उभरी जैसे उसने भी आह भरी हो। पलभर में ही इस पश्चिमी क्रूरता के जीते जागते सिनेमे पर पर्दा गिर गया। बाबा ज्वाला सिंह मानो अपनी मूर्छा से जागा। धीरे से एक हाथ में उसने टैक्सी वाले गोरे को इशारा किया। दूसरे हाथ में पतलून की जेब से घड़ी निकाल कर समय देखा। टैक्सी में सवार होते समय उसकी नजर मुझ पर पड़ी, कहने लगा 'आ जाइए'। मैं भी साथ सवार हो गया।

उस रात वैंकूवर के एक छोटे से होटल में उस योजना की रूपरेखा तैयार की गई जिस कारण पंजाबियों का नाम वैंकूवर की पुलिस को अब तक याद है। चाहे मौत सामने खड़ी हो फिर भी मनुष्य का मन ऐसा सदा-जीवी है कि तब भी जिए जाने की आशा लिए रहता है। 'कॉमागाटामारु' के यात्रियों की आशा बल्लरी अब भी हरी भरी थी और उस पर पत्तियां फूट रही थी। उन्हें ख्याल था कि यदि इसी प्रकार अड़े रहे तो शायद किसी दिन किसी तरीके या सहारे से तट पर उतरने की आज्ञा मिल ही जाये। परन्तु अड़े तभी रह सकते थे यदि राशन पानी का प्रबन्ध हो सके। अतः यह निर्णय हुआ कि जल्दी से जल्दी खाने पीने की सामग्री जहाज़ पर पहुंचाने का प्रबन्ध किया जाए। अमेरिका सरकार राशन पानी तथा जहाज के लिए कोयला आदि सब कुछ स्वयं ही पहुंचा देती यदि बाबा गुरदित्त सिंह अमेरिका के तट को अलविदा कह कर, जहाज़ का मुख घुमाकर, पुनः चीन की ओर लौट पड़ता। पर जब तक जहाज वहीं अड़ा खड़ा था तथा सरकारी कर्मचारियों की समीप नहीं आने देते थे तब उन्हें राशन कैसे दिया जाये। जो भी जहाज वालों को सहायता करता उल्टे पुलिस उसी को पकड़ कर सलाखों के पीछे बन्द कर देती थी। जहाज़ में राशन पानी पहुंचाना बड़े जोखिम का काम था। बाबा ज्वाला सिंह तथा उसके साथी उन दिनों दो तरह का

जीवन जी रहे थे। एक जीवन दिन का था जिसमें सारे साथी मिलकर शोर मचाते थे, अखबारों के सम्पादकों को मिलते थे, सभाएं करके भाषण देते तथा बड़े-बड़े वकीलों के सहारे न्यायालय में कोशिश करते थे। बाबा ज्वाला सिंह की दृष्टि में इसका एक ही लाभ था कि गुप्तचर पुलिस तथा घर में घुसे गुप्तचरों को यही लगे कि इन्होंने कोलाहल मचाने तथा न्यायालीय यत्नों से बढ़कर कुछ नहीं करना। दूसरा जीवन रात का जीवन था जब जी तोड़ कोशिश इस बात को पूरा करने में लगती थी कि किसी न किसी तरह, चाहे दस बीस पंजाबियों के जीवन की बलि देनी पड़े, सप्ताह के अन्दर-अन्दर जहाज़ वालों के पास सारी आवश्यक सामग्री पहुंच जाये।

जिस दिन बाबा ज्वाला सिंह ने एक ओर खड़े होकर जहाज़ की दुर्गति तथा दुर्घटना देखी थी वह सोमवार का दिन था। इसके पांच दिन बाद यह शनिवार की बात है। रात हो चुकी थी, पर यह वह रात थी जो दिन से भी अधिक सुन्दर थी। वैंकूवर बन्दरगाह में खड़े कई जहाज़ बेमालूम से हिलोरे ले रहे थे। ऊपर धरती के तारे और नीचे मनुष्य निर्मित तारे, इन तारा गण का पानी में डुबकियां लेना, तट पर शहर की अनगिनत बत्तियां तथा महासागर मौन-शान्त काला, भयावना तथा मोहक भी। किनारे के नृत्य गृहों से नृत्य वादन की स्वर लहरियां। शनिवार का दिन सोच समझ कर निश्चित किया गया था। इस दिन मज़दूरों को वेतन मिल गया होता है। इतवार के दिन प्रत्येक परिवार विशेष तैयारी करता है, आराम करने की, गिरजाघर जाने की, डटकर ठालेपन का आनन्द भोगने की तथा छुट्टी का दिन मनाने की।

अभागा जहाज़ जिसमें शोक ही शोक था एक अन्धकारपूर्ण किले की तरह सांय-सांय करता खड़ा था। नियमानुसार मस्तूलों पर केवल दो तेल की बत्तियां टिमटिमा रही थीं (जब कि) अन्य जहाज़ों पर बिजली की बत्तियां जल रही थीं, चहल पहल थी। कोई शहर को जाने के लिए किश्ती बुला रहा था और कोई शहर में सराबोर होकर मस्ती में गा रहा था तथा रस्सी की सीढ़ी पर चढ़ रहा था। बहुत कम दृश्य ऐसे होते हैं जो रात के समय शान्त समुद्र पर जगमगाती जहाजों की चहल पहल भरे से (अधिक) सुन्दर हों।) जहाज़ के शहर की दिशा वाले क्षेत्र में एक (स्वचालित) अग्नि नौका पहरे पर खड़ी रहती थी। जब ज्वार शिखर पर था बिल्कुल उसी समय उत्तर दिशा से दो काले से बेड़े चले आ रहे थे। उनका रुख उस तैर रही पुलिस चौकी की ओर प्रतीत होता था। एक स्वचालित अग्नि नौका अपने पीछे बंधे रस्से के साथ एक माल ढोने वाली नौका को तेज़ी से खींचे आ रही थी। जब यह स्वचालित नौका पहरा दे रही स्वचालित नौका के पास पहुंची तो इसकी गति एकदम रुक गयी तथा ऐसे प्रतीत होता था कि पिछली माल ढोने वाली नौका, रस्सा तुड़ाकर या रस्सा छुड़ाकर,

'कॉमागाटामारु' की ओर रुख किए अपने पहले बहाव के साथ ही तैरती जा रही है। उसी समय स्वचालित नौका से आवाज़ आई कि 'आदमी पानी में डूब गया है' तथा तीन चार आवाज़ें एक छोटी नौका में से आई जिनका अभिप्राय था कि बचाओ हमें डुबोया जा रहा है। यह शोर पुलिस वाली नौका के चारों ओर हो रहा था। लगता है कि पुलिस वाले अपनी मौजमस्ती में थे। माल ढोने वाली नौका तैरती हुई 'कॉमागाटा मारु' की ओर जा रही थी तथा उसे खींचने वाली स्वचालित नौका बहुत धीमे-धीमे पुलिस की नौका की ओर 'कॉमागाटामारु' के मध्य में आ रही थी। बन्दरगाह पर किसी व्यक्ति का पानी में गिर पड़ना एक बड़ी दुर्घटना थी जो हर रोज नहीं होती। खीचने वाली नौका की सर्च लाईट पानी में गिरे व्यक्ति पर इतनी न थी जितनी कि पुलिस की नौका पर पड़ रही थी। समीप के दो तीन जहाजों में खतरे का भौंपू (Alarm) बज उठा। इधर-उधर से आवाजें आने लगीं तथा नौका पर सवार गोरों ने अलग शोर मचाया हुआ था कि उन्हें टक्कर लगी है, वे डूब रहे हैं। इतना कुछ होने में आठ-दस मिनट लग गये। नौका से पानी में गिरे व्यक्ति की आवाज़ पुलिस की नौका से शहर वाली दिशा की ओर थी जिससे पुलिस-नौका का सारा ध्यान शहर की ओर हो गया तथा दूसरी ओर यदि कोई देखने का यत्न भी करता तो आगे से खींचने वाली नौका की तेज रोशनी उसे चौंधिया देती थी। शोर की ओर अधिक बढ़ाने के लिये उस नौका वाले चीखने लगे कि उनकी माल ढोने वाली नौका खुल गई है। अभिप्राय यह है कि माल ढोने वाली नौका प्रवाह के वेग से ही 'कॉमागाटामारु' के साथ जा लगी तथा जहाज़वालों ने इशारा मिलते ही जहाज की निचली छत वाला दरवाज़ा खोल दिया तथा राशन की बोरियां एवं पानी के ड्रम जहाज के पेट में लुप्त होने लग पड़े। जिस समय पुलिस को इस षडयंत्र का पता चला तो उनकी नौका 'कॉमागाटामारु' की ओर दौड़ी।[2] मैं तथा मेरे दो साथी उनका स्वागत सत्कार करने के लिए माल वाली नौका पर खड़े थे। रात के समय उन्हें कुछ न सूझा कि वे क्या करें। माल ढोने वाली नौका खाली हो गयी तथा इस नौका को खींचने वाले गोरे अंधेरे में खिसक गये। पुलिस वालों को बड़ी चिन्ता यह थी कि कहीं यात्रियों में से कोई तट पर उतर न जाये। इस लिये उन्होंने हमें तथा माल ढोने वाली नौका को हिरासत में ले लिया। मैंने उन्हें साफ बता दिया कि हम तीन तो तट पर से आये व्यक्ति हैं यात्री नहीं, हम इसका प्रमाण भी प्रस्तुत कर देंगे। पर राशन पानी हमने जरूर जहाज़ में पहुंचाया है। राशन उठाने में जहाज वालों ने भी स्वयं ही हिम्मत दिखाई अतः वह वापस नहीं ढोया जा सकता था। हमारी खींचने वाली नौका और माल ढोने वाली नौका के साथी पहले ही अपना इनाम वसूल कर चुके थे जो कि काफी बड़ा था क्योंकि उन्हें आशा नहीं थी कि काम इतना आसानी से हो जायेगा।

एक अन्य गोरा हमारे साथ माल ढोने वाली नौका पर था जिसकी होशियारी तथा कार्य कुशलता असीम थी। खींचने वाली नौका से ठीक समय पर रस्सा काटना तथा फिर माल वाली नौका को दिशा नियंत्रक यंत्र से जहाज़ तक इस तरह पहुंचाना कि वह उसके साथ भी लग जाये तथा टक्कर भी न लगे। ये सब उसी की उस्तादी थी। यह गोरा माल ढोने वाली नौका में घुसकर छिप गया तथा बाद में आंख बचा-कर खिसक गया। पुलिस ने विशेष आपत्ति नहीं की।

—0—

तीसरा अध्याय

युद्ध

मैं तथा मेरे साथी अमेरिका की हवालात में थकावट उतार रहे थे। हमारी जमानत के लिए प्रयास हो रहे थे पर सच पूछो तो, हवालात में हम घरों से भी ज्यादा सुखी थे। छह दिन हमने जीतोड़ काम किया था, राशन इकट्ठा किया, चोरी-चोरी बसों पर लाद कर तट पर लाये, गोरों के साथ साठ-गांठ की, लाँच (माल ढोने वाली नौका को खींचने वाली स्वचालित नौका) वालों के साथ सौदा तय करके दो तीन चक्कर बन्दरगाह के लगाये, प्रत्येक स्थान को चौकसी से देखा। समुद्री पुलिस, तटवर्ती पुलिस तथा अन्य चौकियों से आंख बचाकर निकलने के उपाय सोचे। रात के सन्नाटे में केवल छह व्यक्तियों द्वारा डेढ़ सौ बोरी का लदान कमर तोड़ने वाला काम था। इन छह दिनों में मैं बड़ी मुश्किल से बीस घण्टे सोया था तथा हवालात में पहले दो दिन मेरी नींद ही पूरी न हुई थी। जिसे दिन में चार समय खाना, रोटी, मांस, सब्जी तथा पीने को खुली चाय, बैठने के लिए कुर्सियां और सोने के लिए बैंत की खाट तथा गद्दे एवं कम्बल मिल जाएं, उसे और क्या चाहिये। लगभग सप्ताह के पश्चात् हमारी जमानत हो गई और हम बाहर आ गये। 'कॉमागाटामारु' जहाज़ यथावत वहां खड़ा था। रसद पहुंचाने के कारनामे को अमरीकी पुलिस ने, बात का बतंगड़ बनाने की बजाय, अधिक छोटा करके प्रस्तुत किया। सारी बात बताने में बदनामी थी तथा मामला एक तरफ से अन्तर्राष्ट्रीय था जिससे हमारे सफल अभियान का कोई अधिक शोरगुल नहीं हुआ और न ही हम पर कोई मुकद्दमा चला।

पता नहीं यह मामला कहां जाकर क्या करवट लेता और कैसे सुलझता, परन्तु जब उच्च न्यायालय ने उनके विरुद्ध निर्णय दे दिया तो बाबा गुरदित्त सिंह तथा उनके साथियों के लिए वापस जाने के अतिरिक्त कोई चारा न रहा। जहाज़ को कोयला वगैरह तथा अन्य राशन सरकार की ओर से ही दे दिया गया तथा जहाज़ पुनः जापान

की ओर चल दिया । अमेरिका की 'गदरपार्टी' का रोष पहले से कई गुणा बढ़ गया। जो पहले साथ शामिल नहीं होते थे वे सब अंग्रेज़ी राज को उखाड़ फेंकने के लिये कुरबानियां देने को तैयार हो गये । सच पूछो तो 'कोमागाटामारु' की घटना ने बहुत से पंजाबियों के मन अमरीका से उचाट कर दिये तथा उनमें से अधिकांश इस बात की प्रतीक्षा करने लग गये कि वापस पंजाब पहुंचे तथा देश में से अंग्रेजों को निकालें ।

हम अमरीका में धनोपार्जन करने वाले पंजाबी, गिनती के दस बारह व्यक्तियों के अतिरिक्त, सारे के सारे श्रमिक, कम पढ़े लिखे और सीधे सादे आदमी थे । हमने धन बहुत कमाया और देशहित में बहुत व्यय भी किया । स्कूल-कालिजों वाले तो हम से मांगते ही रहते थे । हमने कभी इन्कार नहीं किया था । पर हमारी तीव्र इच्छा देश को स्वतंत्र करवाने की थी । हम सोचते थे कि अंग्रेज सौ दो सौ बम्बों, थोड़ी सी डकैतियों तथा चार पाँच सौ जिन्दगियां कुरबान कर देने से देश छोड़ जायेंगे । हमने तो कभी भारत का नक्शा भी ध्यान से नहीं देखा था और न ही हमें बरतानिया की शक्ति का अनुमान था । जब इकट्ठे होते तो भाषणों और नारेबाजियों से ही समझते थे कि अंग्रेज भारत से आज नहीं तो कल निकल जायेंगे । हमें केवल रूस और जापान के युद्ध की थोड़ी सी जानकारी थी । प्रति दिन पढ़ा सुना करते थे कि यूरोप का देश जर्मनी बहुत शक्तिशाली हो गया है । अंग्रेजी समाचार पत्र स्वयं बताया करते थे कि जर्मनी की सैन्य-शक्ति सारे यूरोप से कहीं जबर्दस्त हो गई है । दूर बैठों को, हिन्दुस्तानी समाचार पत्रों में राष्ट्रीय आन्दोलन के समाचार पढ़कर लगता था कि भारत एक मामूली से धक्के द्वारा ही अंग्रेज़ों को निकाल बाहर फेंक देगा । सामान्य लोग छोटी सी बात में ही किस्सा समाप्त कर देते थे कि भला अंग्रेजों को निकालना भी क्या कठिन है । जिस दिन हिन्दू और मुसलमान एक हुए तो अंग्रेजों का नाम निशान भी नहीं मिलेगा । लायलपुर में बड़ी ज़मीन वाले जाटों ने हिन्दुओं के साथ मिलकर थोड़ा सा शोर किया था कि हलचल मच गई । लाजपतराय को मांडले पकड़कर ले आया गया और अजीतसिंह तथा सूफी अंबाप्रसाद ईरान की ओर भाग निकले मानो अंग्रेजों की गद्दी हिलते क्या देर लगती है । इन सारी बातों को देख कर यह अजीब नहीं लगा जब अगस्त उन्नीस सौ चौदह में जर्मनी ने एकाएक युद्ध घोषित करके बेल्जियम को जीत लिया । अमरीका में बैठे हम सब को लगा कि बस अब अंग्रेज चले ।

यदि व्यक्ति रेल की प्रतीक्षा में हो पर तांगा आ जाये तो भी समझता है कि रेल आ गयी । इस धोखे में केवल हम अकेले नहीं आये, हमसे भी अधिक सारी दुनिया यह समझे बैठी थी कि बस अब अंग्रेज़ी साम्राज्य जिस पर सूर्य नहीं छिपता, अब समाप्त

होने लगा है। आम ख्याल था कि सेना विद्रोही हो जायेगी। थोड़ी सी भी हलचल यदि हिन्दुस्तान में हुई तो अंग्रेज़ों से संभाली नहीं जायेगी। 'कॉमागाटामारु' जहाज़ अभी रास्ते में ही था कि हम सब समझने लग गये कि बाबा गुरुदित्त सिंह और उनके साथी भारत पहुंचते ही उथलपुथल मचा देंगे। जो दुर्दशा इस जहाज़ के यात्रियों की कलकत्ता पहुंच कर 'बजबज' घाट पर हुई वह सारे भारतीयों के लिये एक ऐसा आँखें खोल देने वाला धक्का था जिससे कई लोग सँभल नहीं सके। कई जगह से धक्के खाता यह जहाज़ कई महीनों में कलकत्ते पहुंचा। जापान, चीन सिंघापुर (हरजगह) यात्रियों ने कहा कि उन्हें भारत ही पहुंचाया जाये। जब कलकत्ता पहुंचे तो अन्य सारे जहाज़ों के यात्री तो 'आउट्रम' घाट आदि पर उतारे जाते हैं पर भारत की अंग्रेज सरकार ने (यह) फैसला किया कि उन्हें कलकत्ता से छह मील दूर, जहां कोयला आदि माल उतारा जाता है वहां उतारा जाये। यात्री कहने लगे कि उन्होंने जुलूस निकालना है अंग्रेज कहते थे कि जुलूस नहीं निकालने देना। फिर यात्रियों ने कहा कि उन्होंने श्री गुरु ग्रंथ साहिब ले जाना है——जुलूस स्वयं ही बन जायेगा। अंग्रेज़ों को कोई बहाना न मिला तो उन्होंने कहा कि यात्रियों को यहां अर्थात् बजबज घाट से ही रेल पर बैठाकर पंजाब भेज देते हैं। जहाज़ से यात्री उतरे तो सामने बंदूकें लिए फौज खड़ी थी। पंजाबी भला अपने हठ से कब पीछे हटने वाले थे, रेल की ओर से हट कर नारे लगाते तथा स्यापा करते हुए शहर की ओर चल पड़े। सिपाहियों ने रोका, टकराव हुआ, फिर क्या था। सिपाहियों ने वहीं बहुतों को भून डाला, बाकी दौड़ कर जंगल में जा छिपे। 'कॉमागाटामारु' के एक भी यात्री का कहीं कोई चिन्ह भी न मिला तथा बाबा गुरुदित्त सिंह वहां से भाग कर छह वर्ष न जाने कहां छिपा रहा। हमने ये सारी बातें सुनीं। बल्कि हमारा तो विश्वास और भी दृढ़ हो गया कि देश तो विद्रोह करने को तैयार बैठा है। ऐसे अवसर पर हमारा यहां बैठे रहना बड़ी भारी गद्दारी है। अत: 1914 के अन्त में बहुत से पंजाबियों ने अमरीका में अपने-अपने काम-धन्धे समेट कर भारत में लौट आने की तैयारियां प्रारम्भ कर दीं। 'गदर पार्टी' के नेताओं ने बिगुल बजा दिया कि पंजाब चलो। वास्तव में न तो गदर पार्टी का तथा न ही भारत की किसी अन्य पार्टी का सोच विचार कर निश्चित किया हुआ कोई कार्य कम नहीं था। जोशीले दिलों के इक्का दुक्का अपने-अपने उद्गार तथा प्रयास थे जो केवल अटकलों और आशाओं के हवाई किलों की तरह नित नये बनते बिगड़ते रहते हैं। 'गदर पार्टी' तथा उसके हमदर्दों की सबसे बड़ी यह योजना थी कि किसी तरह सेनाओं में घुस कर उन्हें बिगाड़ा जाये जिससे अंग्रेजी प्रशासन के ढांचे की नींव खोखली हो जाए तथा ज़रा से धक्के में चरमरा जाये। उधर अंग्रेज़ तथा उनके भारतीय सुरक्षा अधिकारी सोये हुए नहीं थे। प्रत्येक भारतीय जो भारत की

ओर अग्रसर होता अंग्रेज़ों की गुप्तचर सेवा की आँखों से बच नहीं सकता था। जापान, चीन, हांगकांग, सिंघापुर सभी जगह प्रत्येक भारतीय यात्री की समस्त गति विधियां सी. आई. डी. की दृष्टि में थीं। जहां तक अंग्रेज़ों का शासन था वहां तक युद्ध के कारण कर्मचारियों को अधिकार दिये हुए थे। जहां अंग्रेजों का झण्डा नहीं भी झूलता था वहां भी टेढे मेढ़े ढंग से अंग्रेज़ अपने राज्य के संदिग्ध शत्रुओं की रोक थाम करने का सामर्थ्य रखते थे। हमें पता था कि कैनेडा तथा यू. एस. ए. में जहां जहां पंजाबी बसे हुए थे, कैलीफोर्निया, आरेगन, वैंकूवर आदि सभी स्थानों पर, हममें से ही कई व्यक्ति अंग्रेज़ सरकार तक पूरी पूरी सूचना पहुंचाते थे। कलकत्ता के बन्दरगाह तथा रेल (स्टेशन) पर सादा कपड़ों में पुलिस के आदमी एक एक स्त्री और पुरुष की पूरी छानबीन करते थे। पंजाब में पहुंचते ही अमरीका से आये व्यक्तियों को, घर पहुंचने से पहले ही रोक लिया जाता था तथा एक तरह से नज़र-बंद कर लिया जाता था। जब तक पुलिस की तसल्ली नहीं हो जाती थी उन्हें छोड़ा नहीं जाता था। केवल सन्देहवश सैकड़ों व्यक्ति जेलों में भेज दिये गये, सैंकड़ों व्यक्तियों द्वारा अर्जित लाखों रुपये, चैक, ड्राफ्ट आदि गुम कर दिये गये तथा कितने ही व्यक्ति अपने भोलेपन में, छोटी छोटी बातों के लिये, वर्षों की कैद में फैंक दिये गये। भोले, अमरीका में आये, पंजाबियों का सामान्य हाल यह था कि अव्वल तो (वह) रास्ते में ही दबोच लिये जाते थे पर यदि किसी तरह पंजाब पहुंच भी गये तो पहुंचते ही वह आज़ादी तथा अंग्रेज़ों की गुलामी के बारे में शोर मचाने लगते थे। तीसरे चौथे दिन ही गांव के नम्बरदार, जैलदार आदि उस भले व्यक्ति को पुलिसथाने में पहुंचवा देते थे। भरपेट भोजन करने वाले तथा भूखा रहने में अन्तर ही यह होता है कि तृप्त व्यक्ति को भोजन की चिन्ता ही नहीं होती और भूखे को भोजन के बिना और कुछ सूझता ही नहीं। अमरीका से आये बहुत से सिक्ख यहाँ के लोगों की गद्दारी तथा अंग्रेज़ भक्ति की वृत्ति से इतने खिन्न थे कि उन्होंने यह निष्कर्ष निकाल लिया कि जब तक यह अंग्रेज़ भक्त, भद्रपुरुष जो नम्बरदारियों, जैलदारियों तथा जागीरदारियों आदि के भूखे हैं, समाप्त नहीं किये जाते, तब तक अंग्रेज़ो का (यहां से) निकालना बड़ा कठिन है। इस प्रकार के व्यक्तियों ने 'बब्बर पार्टी' की स्थापना की जिसने थोड़े से समय में ही पद और प्रतिष्ठा के भूखे व्यक्तियों की संख्या बहुत घटा दी। पर इन बातों से चालीस करोड़ व्यक्तियों को गुलामी से नहीं छुड़ाया जा सकता।

यह सारे समाचार हमें अमरीका में पहुंच रहे थे। हमारे पास से लोग बड़ी आशाओं और उमीदों के पुल बांधकर चलते थे, पर उनमें से किसी एकाध की ही कोई सूचना वापस हमारे पास पहुंचती थी। आखिर मेरी बारी भी नजदीक आ गई।

वैंकूवर की उथल-पुथल या झमेले में से निकलकर मैं बर्कले के समीप एक फलों के बगीचे में नौकर हो गया था। बगीचे में केवल आड़ू तथा नाखों की उपज होती थी। प्रारम्भ में मैं यहां सर्दियों के शुरू में दैनिक वेतन पर आड़ू तोड़ने के लिए नौकर लगा था। मेरा काम देखकर मालिकों के मन में कुछ आया तथा उन्होंने मुझे पक्का नौकर रख लिया। कैलिफोर्निया फलों की उपज के लिए प्रसिद्ध है। इसके पूर्व में अमरीका के पहाड़ (Rockees) हैं जिनकी हरियाली, वृक्ष तथा झरने देखने के लिए दूर-दूर से लोग आते हैं। पश्चिम में शान्त महासागर है जिसके कारण यह प्रदेश अधिक सर्दी तथा अधिक गर्मी दोनों से बचा रहता है। बगीचे का स्वामी मिस्टर फ्रांज़ प्रौढ़ावस्था का जर्मनीथा। श्रीमती फ्रांज़ घर की देखभाल तथा रसोई का काम करती थी तथा आवश्यकता पड़ने पर कभी-कभी बगीचे में सहायता करती थी। इनके दोनों पुत्र समीप की बर्कले यूनिवर्सिटी में पढ़ते थे। लगभग बारह एकड़ जमीन थी जिसमें से एक तिहाई अभी बेकार पड़ी थी। लगभग दो एकड़ घर, मुर्गीखाना, सब्जियां बोने तथा खेलने आदि के लिए थी तथा बाकी छह एकड़ पर पौधे लगे हुए थे जो सभी फलों के थे। मेरा काम सवेरे आठ बजे प्रारम्भ होता था। घर की मालकिन अभी हमारे लिए प्रातः का नाश्ता तैयार कर रही होती थी कि मिस्टर फ्रांज दिन निकलते ही मेरे साथ दिन-भर का कार्यक्रम निर्धारित कर लेता था। नाश्ता खाकर हाथ में नोटबुक लेकर मैं बाग के प्रत्येक पौधे की जांच करता था। प्रत्येक पौधे पर नम्बर लगा हुआ था। जिस पौधे में कोई विशेष अच्छी या बुरी बात नज़र आती थी, उसे नोट कर लेता था। जब दिन निकलने पर ओस सूख जाती थी तब फल तोड़ने वाले, दो या तीन, दैनिक वेतन पर काम करने वाले नौकर आ जाते थे। मैं उन्हें फल तोड़ने वाली सीढ़ियाँ, कैंचियां तथा टोकरियां आदि देकर स्वयं भी काम में जुट जाता। उतनी देर मिस्टर फ्रांज़ बंजर धरती पर हल चलाता या बिजली की मोटर पम्प आदि की देख-भाल तथा सफाई करता।

दोपहर से पहले के सभी फल अलग-अलग छांट कर बन्द कमरे में रख दिए जाते। दोपहर के भोजन के समय मिस्टर फ्रांज़ मेरी नोटबुक पढ़कर कमजोर पौधों के इलाज तथा अच्छे पौधे के कारणों के प्रति सोचता तथा मुझसे विचार-विमर्श करता। दोपहर का भोजन समाप्त करके हम पुनः फल तोड़ने के काम में लग जाते थे या यदि यह काम न होता तो हम फलों को अलग-अलग छांट कर रंगदार कागज़ों में लपेट कर छोटे बक्सों में बन्द करके ऊपर नाम तथा तोल लिखकर रख देते थे। रात उतरने से पहले मेरा काम था कि मैं दिन की डायरी लिखूं तथा मौसम के पूर्वानुमान को नोट करूं। मिस्टर फ्रांज आधा दिन शारीरिक काम करता तथा आधा दिन पत्रिकाएं, समाचार

तथा फल बुलेटिन आदि पढ़ता और पत्रव्यवहार करता। धनी देश की निशानी मैं समझता हूं कि यही होती है कि लोगों को हर प्रकार की सुविधा हो तथा जो भी वह उपजायें उसकी अच्छी कीमत वसूल हो जाए। मज़दूर को भी इतना अच्छा वेतन मिले कि वह अच्छा पेट भर कर खाये पिये, परिवार का पालन पोषण कर सके तथा बच्चों को अच्छा पढ़ा सके। अमरीका के निवासियों को यह सारी सुविधाएं उपलब्ध थी। इस देश के धनी होने का बड़ा कारण यह है कि देश के सभी पक्ष पूर्ण हैं। यह इंग्लैंड की तरह छोटा नहीं है कि खाने-पीने की सामग्रियां बाहर से मंगवानी पड़े। खेती-बाड़ी के लिये हर प्रकार की ज़मीन यहां है। सस्ती ऊसर भूमि भी यहां है जहां हज़ारों एकड़ों के फार्म हैं तथा बहुत उपजाऊ मरलों के या बिसवों के भाव बिकने वाली भूमि भी है जिसमें से, आधा-आधा एकड़ के स्वामी, केवल फूल उगाकर हजारों डालर बना लेते हैं। अमरीका न केवल अपनी आवश्यकता के लिए गेहूं उपजाता है बल्कि बाहर के देशों को भी भेजता है। अनाज आदि के लिए अमरीका स्वाबलम्बी है। अमरीका के धनी होने का दूसरा बड़ा कारण उसका लोहा और कोयला है। इसके पास इसकी आवश्यकता से कहीं अधिक लोहा तथा कोयला है। तीसरा बड़ा कारण है इसका तेल (भण्डार) जब मैं वहां था, पैट्रोल दस बारह आने (सत्तर पचहत्तर पैसे) गेलन था। कई मेरे जैसे मज़दूर जो मशीनों की समझ रखते थे लगभग तीन सौ डालर में पुरानी मोटर लेकर घूमते रहते थे।

युद्ध प्रारम्भ हुए एक वर्ष हो गया था। अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से अमरीका में इस बात की बड़ी चर्चा थी कि अमरीका युद्ध में कूदे अथवा न कूदे। मुझे बाबा ज्वाला सिंह तथा अन्य मित्रों की ओर से सन्देश मिला कि काम काज छोड़ कर तुरत अमुक तारीख को 'सटाकटन' के गुरुद्वारा में पहुंचा जाये। साथ ही यह भी संकेत था कि मुझे कोई विशेष काम सौंपा जाना है। मिस्टर फ्रांज तथा उसकी पत्नी ने मुझे बड़ा रोका कि राजनैतिक झमेलों से क्या लेना है। पर जब देखा कि मैं हठ पर डटा हुआ हूं तो उन्होंने मुझे छुट्टी दे दी तथा साथ ही यह इकरार भी किया कि यदि मैं वापस आ जाऊं तो वह मुझे अपने पास फिर रख लेंगे।

चौथा अध्याय

अमेरिका से जापान

सर्दियों के प्रारम्भ में जब अमेरिका में बसे बड़े बड़े भारतीय 'सटाकटन' के गुरुद्वारा में इकट्ठे हुए तो ऐसा प्रतीत होता था मानो अंग्रेजों का अन्त समीप ही है। यह आम चर्चा थी कि अमरीका निवासी भारतीयों ने तीन चार लाख डालर जमा कर लिए हैं, भारत के राजनैतिक योद्धाओं के साथ गठजोड़ कर लिया है तथा विशेष रूप से पंजाब की सेनाओं में हमारे आदमी दिन रात काम कर रहे हैं, बहुत शीघ्र ही भारत से अंग्रेज लोग दौड़ते हुए दिखाई देंगे। सिखों के लिए तो 'सौ साखी' ही काफी है। पता नहीं 'सौ साखी' किसके दिमाग की उपज है पर यह एक ऐसा 'छूमन्तर' का थैला है कि इसमें से जब चाहो जो चाहो निकाल कर दिखाया जा सकता है। यदि अंग्रेज पराजित होते प्रतीत हो तो (कहा जाता है कि) देखो जी 'सौ साखी' में भी यही लिखा है 'भज्जे जाण फरंगी वज्जै घुंगरु' ('भागे जाएं फिरंगी बाजे घुंघरु') और यदि जलियां वाला बाग में गोली चलने से शवों का ढेर लग जाए तब भी 'सौ साखी' में से कहीं से यह निकाल कर दिखा देते हैं कि बस अब इन उपद्रवों के बाद इनका नाश हो ही जाना है। गुरुद्वारा में एकत्रित पंजाबियों में बड़ा जोश तथा उत्साह था।

अब जब मुझे उन दिनों की, जवानी की, सदाबहार, रंगीन आशाओं तथा सदा ठीक पड़ने वाली चोटों की नरदों, कभी विफल न होने वाली योजनाओं तथा वैरियों को ललकार से ही पराजित कर देने की युक्तियों की काल्पनिक शृंखलाएं याद आती हैं तो हंसी आ जाती है। परन्तु दिल में हूक सी भी उठती है कि कितनी घोर भ्रान्तियों में से हम गुजर चुके हैं और इन भ्रांतियों के कितने घातक परिणाम इन ग़रीब भारतीयों और विशेष कर पंजाबियों ने भुगते हैं। जब मैं भारतीयों का नाम लेता हूं और पंजाबियों का जिक्र करता हूँ तो इसमें भी मुझे ग़लती दिखाई देती है। भारतीय अमेरिका में कितने थे, बंगाल मद्रास आदि के विद्यार्थी शायद गिनती के ही होंगे। हमारी तरह खेतों में काम करने वाला तथा मजदूरी करने वाला कोई गैर-पंजाबी हमने नहीं देखा और अमरीका

में ज्यादा पंजाबी ही थे ।) हम समझ बैठे थे कि इंगलैंड एक छोटा सा द्वीप है और जब करोड़ों भारतवासी उठ खड़े होंगे तो यह मुकाबला नहीं कर सकेगा । हमें बिल्कुल ही पता नहीं था कि हमारी लड़ाई संख्या की लड़ाई नहीं अपितु गोरी सभ्यता और पश्चिमी विज्ञान के विरुद्ध है । चीन की प्राचीन सभ्यता, यूनान, मिश्र तथा रोम एवं मध्य एशिया की सभ्यतायें समाप्त हो चुकी हैं । वह भी जमाना था जब भारत के भिक्षु दूर दूर हिन्द महासागर के द्वीपों में जाकर बौद्ध धर्म का संदेश लेकर घूमते थे तथा स्याम, सुमात्रा और हिन्दचीन (इण्डोचायिना) सभी पर भारत का प्रभाव था । पर आज यूरोप की सभ्यता चढ़ती जवानी में है तथा इसका बड़ा हथियार नया विज्ञान है । भारत, चीन तथा मिश्र की सभ्यतायें मनुष्य के आचरण मन तथा उसकी आत्मा के विकास पर निर्मित हुई थी । इन सभ्यताओं ने, विश्व में, आत्मबल, दर्शन, ज्ञान तथा मनुष्य के हस्तशिल्प को उन्नत किया । इन्होंने गौतम बुद्ध, कृष्ण, ईसा, मुहमद तथा कनफयूशिसस आदि विश्व के ज्योति स्तम्भ उत्पन्न किये । पर अब कलियुग के गहन अन्धेरे पक्ष में रोटी तथा कपड़े की भूख ने गोरी सभ्यता को उछाल कर ऊपर कर दिया है और यह सभ्यता विज्ञान के प्रभाव से दुनिया की सादगी तथा मिठास को मिटा कर गोरों को धनी एवं शक्तिशाली बनाना चाहती है तथा दूसरों को तुच्छ तथा मिटा देने योग्य समझती है । इसे पूर्व और पश्चिम का टकराव कहते हैं ।

आज कल के नये विद्यार्थियों को भी पिछले चालीस पचास वर्षों के मनुष्य के इतिहास को पूरे ध्यान से पढ़ना, समझना तथा विचारना चाहिए । पूर्व और पश्चिम का टकराव उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में प्रारम्भ हुआ, जब विज्ञान पश्चिम के अधिकार में आ गया तथा पूर्व के विरुद्ध प्रयुक्त होने लगा । बीसवीं शताब्दी में अब विज्ञान कुलाचें भारत हुआ आगे बढ़ा जाता है और ऐसा प्रतीत होता है विज्ञान स्वयं ही अपना विनाश करके गोरी सभ्यता का भी सफाया कर देगा । सन् 1914 का युद्ध प्रारम्भ हुआ । विज्ञान की जवानी उमड़ उमड़ कर दुनिया को नित नये चमत्कार दिखा रही थी । सन् 1900 से पूर्व ही इंज्जन, रेल गाड़ियां, वाष्प-चालित जहाज तार द्वारा सन्देश पत्र बिजली से रौशनी, छापा खाना, मोटरें, बारुद वाली बन्दूकों एवं तोपें प्रचलित हो चुकी थीं । 1907-1908 के युद्ध में जब जापान जैसे छोटे से देश ने रूस जैसे विशाल देश को चोट पहुंचाई जो दुनिया के सामने एक प्रत्यक्ष चमत्कार हुआ । दुनिया को पता चला कि बहुत सी स्थल सेना, बाहुबल तथा शक्ति की विजय नहीं हुई अपितु देशभक्ति विज्ञान एवं नौ शक्ति की विजय हुई है । यूरोप तथा अमेरिका की बड़ी शक्तियां इस कारण से समुद्री शक्ति बढ़ाने में जुट गई । लगभग इन्हीं दिनों अमेरिका के राईट ब्रदर्ज (Wright Brothers) नामक दो भाई वायुयान तैयार करने में सफल हो

गए तथा जब 1914 का युद्ध शुरू हुआ तब दोनों पक्षों के पास पहली किसम के, तेल से चलने वाले तीस चालीस मील की गति में उड़ने वाले वायुयान थे। सन् 1900 से पूर्व आपस में दूर के सन्देश पहुंचाने के लिए तांबे की तारों से बिजली के माध्यम से बातचीत की जाती थी। इंगलैंड और अमेरिका में परस्पर सन्देशों के आदान प्रदान के लिए ताँबे की तारों के मोटे मोटे रस्से बनाकर समुद्र तल में बिछाए गए थे परन्तु सन् 1910 के आस पास बिना तार के सन्देश भेजे जा सकते थे। अमेरिका के वैज्ञानिक एडिसन ने ग्रामोफोन के आविष्कार द्वारा घर घर संगीत पहुंचाने का साधन जुटा दिया था। पानी पर तैरने वाले बड़े बड़े समुद्री जहाज़ तो पहले ही थे पर अब इन्हे डुबोने के लिए पानी में छिपकर चलने वाली छोटी-छोटी पनडुब्बियां बन गई थी। सन् 1914 में जर्मनी इस प्रकार की नौका बना चुका था तथा बैलून (गुबारा हल्की) के सिद्धांत पर बड़े बड़े जैयलीन नामक वायुयान बना रहा था, जो हल्की धातु से बने तथा गैस से भरे होते थे तथा स्वयमेव ऊपर की ओर उड़ जाते थे। इस युद्ध में प्रथम बार ज़हरीली गैस का भी प्रयोग किया गया जिससे सैनिकों को बड़े कष्ट हुए। अभिप्राय यह है कि विज्ञान ने यूरोप वालों को पंख लगा लिए तथा वह ततैयों की तरह छोटी सी भिड़ से उड़कर दुनिया भर को सताने लग पड़े।

यह सब मुझे अब स्पष्ट होने लगा है। पर तब, जब हम गुरुद्वारे में एकत्रित होकर अंग्रेज को फूक मार कर उड़ा देने की योजनाएं बनाने में लगे थे, बिल्कुल पता नहीं था। लोग कहते हैं कि जवानी में दृष्टि प्रखर होती है पर वास्तव में जवानी के दिनों में व्यक्ति पर्याप्त सीमा तक अन्धा होता है। अगस्त 1914 में आस्ट्रिया के एक राजकुमार की हत्या से युद्ध शुरू किया। आम धारणा थी कि जर्मनी इतना शक्तिशाली है कि वह वर्ष समाप्त होने से पहले ही पैरिस पहुंच कर फ्रांस से सन्धि कर लेगा तथा युद्ध समाप्त हो जाएगा। जर्मनी का अनुमान था कि जिस प्रकार 1870-71 में उसने फ्रांस को आसानी से पराजित कर दिया था, अब भी वह फ्रांस को तोड़ मरोड़ कर रौंद डालेगा तथा यूरोप का सबसे शक्तिशाली देश बन जाएगा। तत्पश्चात् इंगलैंड तथा रूस आदि देशों को उससे टक्कर लेने का हौंसला ही नहीं पड़ेगा। आस्ट्रिया तथा जर्मनी वास्तव में रूस के विरुद्ध एक जुट थे जर्मनी तथा आस्ट्रिया को सेनाएं संयुक्त रूप से (रूस को छोड़ कर) सारे यूरोप की सेनाओं से अधिक थीं। शास्त्र सज्जा एवं युद्ध की तैयारी की दृष्टि से तो यह सबसे आगे थीं। जर्मनी का ख्याल था कि रूस के तैयार होने से पहले ही यह फ्रांस को समाप्त कर देगा तथा बरतानिया अपने आन्तरिक झगड़ों के कारण युद्ध में भाग नहीं लेगा। आयरलैंड में बरतानिया के विरुद्ध बड़ा रोष था तथा आयरलैंड वाले स्वसाशन (Home Rule) के लिए संघर्ष कर रहे थे। इधर भारत में

बिद्रोह का डर था परन्तु अंग्रेज़ सरकार की स्थिति का जर्मनी सरकार ने गलत अनुमान लगाया। जब जर्मनी ने सभी समझौतों सन्धियों आदि को तोड़ कर सीधा बेल्जियम के रास्ते से फ्रांस पर आक्रमण कर दिया तो अंग्रेज़ों की आंखे खुली कि जर्मनी अपने किये हुए समझौतों पर भी बिल्कुल पक्का नहीं। यह बात आम प्रचलित है कि जब कैसर बिलियम को कहा गया कि उसने बेल्जियम पर आक्रमण करके सन्धि की शर्तों को तोड़ा है तो उसने उत्तर में कहा कि कागज़ के टुकड़े की कीमत ही क्या होती है। बेल्जियम की पराजय के बाद अंग्रेज़ों को भी आशंका ने घेर लिया, अत: इन्होंने दिनों में ही युद्ध की घोषणा कर दी। भारत की ओर से यहां के वाइसराय ने यह घोषणा कर दी।

देखा जाए तो जर्मनी ही एक ऐसा देश है जिसे अपनी वैज्ञानिक उन्नति पर बड़ा गर्व है। कहा जाता है कि विश्व का सबसे बड़ा घातक आविष्कार, परमाणु बम्ब, जर्मनी के वैज्ञानिकों की खोज से ही अमेरिका तथा रूस के पास पहुंचा है। यदि जर्मनी को थोड़ा सा और समय तथा शत्रुओं से अवकाश मिल जाता तो इसी ने परमाणु बम्ब की तैयारी में पहल करनी थी। पर सर्वशक्तिमान प्रभु की बातें प्रभु ही जाने। अमेरिका तथा एशिया के जर्मन राजनयिकों तथा जर्मन व्यापारियों के साथ जब बातचीत होती थी तो प्रत्येक श्रोता और विशेषत: भारतीयों को तो यही प्रतीत होता था कि अंग्रेज समाप्त हो जायेंगे तथा सब जगह जर्मनों का बोलबाला हो जायेगा। मैं कहता हूं कि अंग्रेज़ों की वास्तविक प्रकृति की अभी तक दुनिया ने थाह नहीं पाई है। भारत जैसे बड़े देश को जिसे बरतानवी ताज का बड़ा हीरा कहा जाता था अपने आप छोड़ जाने से अंग्रेज़ों के आत्मिक गुणों के सम्बन्ध में नया पक्ष उभरता है जिसका अभी तक किसी को अभ्यास नहीं था। अंग्रेज़ों की चुप्पी, गंभीर बने रहना, कहना थोड़ा करना बहुत अधिक आदि इनके स्वभाव का बड़ा गुण है जिससे दुनिया को हर बार गलत अनुमान तथा भ्रम होता रहता है। अंग्रेज़ों के न गिरने तथा अपने पैरों पर खड़े रहने का एक बड़ा कारण यह भी है कि अंग्रेज़ी भाषियों का सबसे बड़ा गढ़ अमेरिका कुदरती तौर पर बरतानिया का सम्मान करता रहता है तथा दोनों युद्धों में अमेरिका की सहायता से अंग्रेज़ों का पलड़ा भारी होता रहा।

युद्ध के प्रारम्भ से ही अंग्रेज़ों को अमेरिका से सहायता मिलना स्वाभाविक था, पर उन्होंने इस प्रकार की कोई सहायता नहीं की जो अन्तर्राष्ट्रीय सिद्धान्तों का उल्लघंन करती हो। बरतानिया के लिए अमेरिका में कुछ तो स्वाभाविक हमदर्दी थी पर इसका यह अर्थ नहीं था कि अमेरिका ज़बर्दस्ती जर्मनी के विरुद्ध युद्ध में शामिल हो जाता। मई 1915 में जब अमेरिका का बड़ा यात्री जहाज़ लूसीटेनिया जर्मन पनडुब्बी ने डुबो दिया,

तब यू. एस. ए. में जर्मनी के विरुद्ध बड़ा रोष फैल गया। राष्ट्रपति विल्सन युद्ध से परे रहना चाहता था, पर कारण कुछ इस प्रकार के बनते गये जिनके फलस्वरूप अमरिका दिनों दिन जर्मनी के विरुद्ध तथा बरतानिया के पक्ष में होता गया। जर्मनी यदि अमरीका से इस अपराध की क्षमा याचना कर लेता तो शायद मामला टल जाता परन्तु जर्मनी ने तो उल्टे लूसीटेनिया को डुबोने तथा अपनी पनडुब्बियों की विजय की खुशी में एक-पदक (Medal) बनवाया, जिसके एक ओर लूसीटेनिया द्वारा बरतातिया को बम्ब तथा अन्य युद्ध सामग्री पहुंचाते हुए दिखाया गया था तथा दूसरी ओर लिखा था कि "व्यवसाय सदा की तरह" (Business as Usaual) तथा अमरीकी यात्री मृत्यु की खिड़की पर से जहाज़ के टिकट खरीदते दिखाये गये थे। लूसीटेनिया के डूबने के साथ बारह सौ निः शस्त्र नागरिक डूब गए थे। एक तो अमरीकी नागरिक मरे दूसरे उसका उपहास उड़ाया गया। इसका परिणाम यही हो सकता था कि अमरीका में गुस्से की लहर फैल गई और राष्ट्रपति विल्सन पर जर्मनी के विरुद्ध युद्ध में शामिल होने के लिए दबाव पड़ने लग पड़ा।

युद्ध की घोषणा होते ही जर्मनी का एमडन नामक युद्धपोत जो निकट पूर्व के किसी निष्पक्ष देश की बन्दरगाह में खड़ा था, तुरन्त हिन्द महासागर में पहुंच गया। तीन-चार महीने इसने हिन्द महासागर में बहुत से बरतानवी यात्री जहाज़ डुबा दिए तथा बड़ी हानि पहुंचाई। दो-तीन जहाज़ रोक कर यात्रियों तथा मल्लाहों को एक खाली जहाज़ में लाद देना तथा बाकी के जहाज़ों को डुबो देना इसका काम था। इतना आतंक फैला दिया कि हिन्द महासागर में यातायात लगभग ठप्प हो गया था। यह एक साधारण युद्धपोत था पर इसके कारनामों ने हिन्द महासागर के देशों और विशेषतः भारत में जर्मनी को एक 'हव्वा' सा बना दिया। आम लोगो में यह धारणा फैल गई कि जर्मनी तथा अंग्रेजों का कोई मुकाबला ही नहीं। अंग्रेज तो अब हारे कि अब हारे। अन्ततः 1915 के चैत्र या वैशाख के महीने में एमडन (युद्धपोत) आस्ट्रेलिया के एक जहाज़ का शिकार बना तथा आधी दुनिया ने सुख का सांस लिया। हम यह सब समाचार जानकर प्रसन्न होते थे, पर हमारे भारत पहुंचने में एमडन एक रुकावट बन गया था। सामान्य अमेरिकी नागरिक ने भी एमडन के कारनामों को बड़ा रस ले लेकर पढ़ा, पर जब लूसी-टेनिया डूब गया तो तथा आग की लपटें घर के नजदीक आने लगी। तो वह क्रुद्ध होने लगे।

हमारे लिए अमेरिका वालों का बरतानिया की ओर झुकाव तथा जर्मनी के विरुद्ध होना अच्छा नहीं था। हम गुरद्वारों में बैठे विचार-विमर्श कर रहे थे और नागरिकों का जुलूस निकाल रहा था और नारे लग रहे थे कि जर्मनी के विरुद्ध युद्ध छेड़ा जाए। इधर

हमें पता था कि जिस दिन संयुक्त राज्य अमेरिका युद्ध में कूद पड़ा उसी दिन हमारी आज़ादी पर बहुत सी रुकावटें लग जायेंगी, शायद हमारा भारत जाना भी रुक जाए। ज्यों-ज्यों युद्ध लम्बा हो रहा था उधर अमेरिकी नागरिक युद्ध में कूद पड़ने के लिए उतावले हो रहे थे और इधर हम भारत पहुंचने के लिए। उन दिनों अमेरिका से चल कर भारत पहुंचना एक बड़ा ही कठिन काम था। जहाज़ बहुत कम हो गए थे। रास्ते में स्थान-स्थान पर बरतानवी टापू तथा बन्दरगाह हमारे लिए जाल बिछाये बैठे थे तथा सबसे विचित्र बात यह थी कि ज्यों-ज्यों हम घर के समीप पहुंच रहे थे हमारे लिए खतरा घटने की बजाय बढ़ रहा था। बाहर के देशों से आने वाला प्रत्येक भारतीय अंग्रेज़ों का शत्रु समझा जाता था तथा हम तो उस देश से आ रहे थे जहां हमने खुले तौर पर गदर का प्रचार किया था। एक बड़ा दुख जो कांटें की तरह चुभ रहा यह था कि स्थान-स्थान पर भूखे भारतीय हमारे देश-भक्तों के पीछे इस प्रकार लगा रखे थे जैसे शिकार के पीछे कुत्ते छोड़े होते हैं। बड़ी सजी-संवरी दाढ़ियां, चिकने चेहरे देश-भक्ति के अतिरिक्त कोई बात ही न करना, (ऐसे लगता जैसे) अंग्रेज़ों का गला दबाने को तैयार हों, पर तभी पता चलता था जब हमारे जैसे तो सलाखों के अन्दर तथा यह भद्र पुरुष मुस्कराते हुए तथा मीठी-मीठी बातें करते बाहर नज़र आते थे। उत्साह और प्रोत्साहन का समय तो आसानी से गुज़र जाता है पर जब कठिनाइयां ठोस रूप में लक्ष्य और हमारे मध्य में खड़ी हो जाती हैं तब आंखे खुलती हैं। हमारे सामने सबसे बड़ी समस्या यह थी कि जो धन हमने एकत्रित किया वह किसी प्रकार ठीकठाक पंजाब में पहुंच जाये तथा वहां उसी उद्देश्य के लिए खर्च हो जिसके लिये यह एकत्रित किया गया है। शांति के समय एक देश से दूसरे देश में धन पहुंचाना (उतना) कठिन नहीं होता पर युद्ध के दिनों में तो कदम-कदम पर कठिनाइयां थी। एक तो अमेरिका से सीधे बम्बई या कलकता के लिए जहाज़ बन्द हो गये थे। दूसरे बरतानिया ने युद्धग्रस्त होने के कारण धन और विशेषत बड़ी राशि के लाने ले जाने पर कड़ी पाबन्दियां लगा दी थीं। युद्ध के समय सामान्य कानून (नियम) ताक पर रख दिये जाते हैं। सरकार को अधिकार होता है कि किसी के धन, संपत्ति, बैंक में जमा राशि आदि पर रोक लगा दे, जब्त कर लेवे तथा मालिक को न दे तथा गदर पार्टी का धन भला अंग्रेजों ने किस उद्देश्य के लिए छोड़ना था। राजनैतिक पार्टियों को, जो तात्कालिक सरकार के विरुद्ध होती हैं। यह एक बड़ी कठिनाई होती है कि वह सामान्य बैंकों में धन नहीं रख सकतीं क्योंकि सरकार जब चाहे मामूली सा बहाना बनाकर धन हड़प कर सकती है और युद्ध के समय तो अनगिनत बहाने होते हैं। यदि धन किसी एक व्यक्ति के पास या उसके नाम पर रखा जाए तो वह चाहे बेईमान न भी हो तब भी प्रशासन को यह सिद्ध करने में कठिनाई नहीं होती कि यह धन अमुक राजनैतिक पार्टी का है। बहुत सोच विचार के उपरान्त यह निर्णय किया गया कि दो-

दो, तीन-तीन व्यक्तियों के जुट बनाए जाएं तथा रुपया बांट कर उन जुटों को दिया जावे। प्रत्येक जुट में एक मुखियाबनाया गया जिसकी आज्ञा मानना जुट वालों के लिये अनिवार्य था। मेरा मुखिया दीनानाथ नामक एक सारस्वत ब्राह्मण था जो बातचीत तथा विचारों में देवता था। अंग्रेज़ी का इतना अच्छा वक्ता था कि अंग्रेज़ों को मात करता था, दिल का इतना साफ था कि पलों में टेढ़े से टेढ़े व्यक्ति को अपने पर मुग्ध कर ले। यही कारण था कि सारे देश-भक्ति उस पर लट्टू थे। मेरा तो उसके साथ थोड़े दिनों का ही सम्बन्ध था, पर लोगों की बातों से मुझे विश्वास हो गया कि यह बड़ा निष्कपट, सरल तथा गुणी व्यक्ति है जिसका साथ मिलने पर व्यक्ति को पछताने की आवश्यकता नहीं। पंडित दीनानाथ शर्मा अमेरिका में खदानों की विद्या पढ़कर इधर ही नौकर हो गया था। लोग कहते थे कि यदि दीनानाथ चाहता हो वह आज किसी बड़ी खदान का मालिक नहीं तो हिस्सेदार बनकर धनाढ्य बन जाता। परन्तु मैंने देखा कि दीनानाथ बेचारा तो धन की दृष्टि से मेरी तरह ही अपूर्ण सा था। वैसे रूप रंग में सुन्दर तीखे नयन नक्श, लम्बा कद तथा जब भारत की स्वतन्त्रता के प्रश्न पर भाषण देता था तब आंखों से ज्वाला तथा मुख से तर्कों और विचारों की बाढ़ इस प्रकार प्रवाहित होती थी कि जिसके समक्ष कोई टिक नहीं सकता था। मैं स्वयं कोई बड़ा देशभक्त नहीं था। परदेश में रहने वाला प्रत्येक भारतीय थोड़ा बहुत देशभक्त होता ही है क्योंकि उसने घर से बाहर निकल कर दुनिया को देखा होता है तथा दूसरों की स्थिति और दृष्टि की अपने से तुलना की होती है। मुझे तो इस बात का चाव था कि कुछ करेंगे, लड़ेंगे, भिड़ेंगे तथा यदि मेरे बाहर रहते ही पंजाब स्वतन्त्र हो गया तो मैं वहां पहुंच कर बात करने योग्य भी नहीं रहूंगा। मुझे ऐसा लगता था कि जैसे हम पंजाब पर चढ़ाई कर रहे हों।

जाटों को यह हिदायत थी कि जापान के आगे जिस मार्ग से चाहे चले जाएं। यह बात स्पष्ट दिखायी दे रही थी कि यह संघर्ष दिनों या सप्ताहों का नहीं है। संभव था कि हमें रास्ते में वर्ष ही लग जाए पर लक्ष्य की सिद्धि आवश्यक थी। ठिकाने पर पहुंच कर हमने दुआबा के गांव से अपने एक व्यक्ति से संघर्ष करना था तथा फिर जैसे कहे वैसे करना था। धन का ब्यौरा प्रत्येक का अपना-अपना था, पर अनुमान यह था कि धन उतना नहीं था जितना ख्याल किया जाता था। याकोहामा स्पीशी बैंक के नाम अमेरिकी डालरों के छोटे-छोटे ड्राफ्ट ले लिए गए थे। बाद में डालरों से बर-तानवी पौंड या भारतीय रुपए की व्यवस्था जापान में ही होनी थी। हमें पता था कि विदेशी मुद्रा का या ड्राफ्टों का भारत में पहुंचकर किसी बैंक से रुपये में बदलवाना बड़ा जोखिम-का तथा कठिन काम था। ऐसी समस्या का समाधान जुटों के अपने-अपने

अधिकार क्षेत्र में था। मुझे पण्डित शर्मा ने बताया कि कुल ग्यारह हज़ार डालरों के ड्राफ्ट हमारे हवाले किये गये हैं और हमने अपनी जापानी जहाज हैनान पर सवार होना है जो कि पोर्टलैंड की बन्दरगाह से चलना था।

कहने को सभी देश-भक्त बने फिरते हैं परन्तु देश-भक्ति बड़ी कठिन तपस्या है, यह तो बिना लवण की हांडी चाटने के समान है। यह तो एक इश्क है जिसमें सिवाय भूख, दुख तथा मृत्यु के किसी प्रकार के प्रिय मिलन की आशा नहीं रखी जाती। पुस्तकों में देश-भक्ति की रंगीन कहानियां कलम के धनियों द्वारा बना संवार कर लिखी हुई बड़ी सुन्दर लगती हैं, पर जब स्वयं देश-भक्ति के कुण्डल पहनकर फकीरी धारण की जाती है तब प्रत्येक कदम पर बल प्रयोग, धोखा, फरेब, मानवीय कमजोरियां तथा गन्दगी से वास्ता पड़ता है तथा दिल देश-भक्ति से उकताने लगता है। ईश्वर की भक्ति बड़ी आसान है, ईश्वर न मिले तो कोई उपालंभ नहीं। ईश्वर को छोड़कर यदि स्त्री के पीछे भी लग जाये तो दुनिया को क्या? पर देश-भक्त के लिए दो ही मार्ग है या देश की आज़ादी या फांसी का तख्ता। देश आजाद हो गया तो देश-भक्तों की स्मृति से भी आज़ादी मिल जाती है, और यदि देश-भक्त—बीच में ही छुटकारा पा जाये तो उसके बच्चों की देखभाल तो क्या उनके समीप आना या उनके बहते आंसुओं को पोंछना भी घोर अपराध हो जाता है। भारत के देश-भक्त की तो बात ही क्या कहें। जिस देश में 'अल्लाह' की ओर चलने वाले दीनदार मोमिन तिलक और यज्ञोपवीत धारण करने वाले तथा 'रहितनामे' के अनुसार चलने वाले (सिख) एक दूसरे के जानीदुश्मन हों, जिस देश में 'ईश्वर' को 'खुदा' कहना भी अपराध हो, उस देश के करोड़ों भूखे व्यक्तियों को बलपूर्वक खेंच कर गुलामी में से निकालने के लिए कौन देश-भक्ति धारण करे। देश-भक्तों को शत्रुओं से भय नहीं होता। जिन्होंने स्वयं को समर्पित कर दिया हो उन्हें शत्रुओं से क्या डर। वह तो उठे ही शत्रुओं से संघर्ष करने के लिए होते हैं। उन्हें सबसे बड़ा दुःख तो मित्रों द्वारा द्रोह एवं विश्वास-घात का होता है जो शत्रु द्वारा किए गए आघात से भी बहुत अधिक दुःखदायी होता है। इस भूखे देश के देश-भक्त का दिल मांस और रुधिर की अपेक्षा पत्थर का बना होना चाहिए जो न तो अपनों द्वारा किए गए विश्वासघात से टूटे, न मित्रों की ओर से की गई शत्रुता से और न ही धार्मिक दम्भियों द्वारा किये गए छलफरेब तथा जुल्म से ही टूट सके। भारतीयों को हाड़मांस के देश-भक्त नहीं चाहिए जो दुःख महसूस कर सकते हैं। इन्हें तो ऐसी मूर्तियां चाहिएं जिन्हें मस्तक झुकाकर नमस्कार किया जा सके ताकि जो ईश्वर की तरह सब कुछ देख सुनकर भी मुंह से कुछ न बोले और न ही बोलने में समर्थ हों। पांच नदियों के देश से बढ़कर किस देश ने देश-भक्तों को जन्म दिया है।

राजा पोरस से लेकर लाला लाजपतराय तथा भगतसिंह तक, कौन सा ऐसा प्रदेश है जिसने इतने शूरवीर देश-भक्तों को जन्म दिया है ? कहां हैं उनकी यादगारें, उनके निशान, उनकी सन्ततियों के निशान ?

जब मैं और मेरा मुखिया शर्मा जहाज़ पर सवार हुए तो ऐसे प्रतीत होता था जैसे हम स्वप्न में हों। हम चले तो देश की ओर थे पर न तो हमारी देश वाले ही प्रतीक्षा कर रहे थे और न ही हम ही उनसे मिलने की आशा रखते थे। कभी मन में आता था कि खुशियां मनाएं क्योंकि हम देश की ओर चले हैं फिर मन में आता कि खुशी किस बात की ? जेल जाने की या गोलियां खाने की। सेना के सिपाही को कोई दुविधा तो नहीं होती, यदि शत्रु को परास्त कर सही सलामत लौट आया तो वाहवाह नहीं तो किस्सा समाप्त। हमने देश-भक्ति का तमग़ा तो क्या लगाना उल्टे चोरों की तरह लुक छिपकर आंख बचा-बचाकर जहाज़ पर चढ़ते थे जैसे भारत के पक्षधर होकर हम हत्यारे बन गए हों। गुप्तचर पुलिस तो प्रत्येक देश की होती है पर जब हम अपने ही आदमियों को कुत्तों की तरह सूंघते देखते थे तो मन में बड़ा रोष उठता था। हम दोनों कमाते थे पर हमारी कमाई हमारे परिवारों के लिए नहीं थी। हमारे परिवारों को तो यह भी पता नहीं था कि हम क्या खेल खेल रहे हैं। हमारी कमाई तथा हमारा जीवन इन देश-द्रोहियों की सन्तान के लिए अर्पित हो रहा था जो हमारे चारों ओर खोज लेने के लिए चक्कर लगा रहे थे तथा जो गोरों से रुपए खाकर हमें फांसी लगवाने के लिए कटिबद्ध थे।

मैं और शर्मा अलग-अलग से धीमे से पहले यात्रियों में चढ़कर अपने-अपने कागज़ आदि दिखाकर दूर-दूर बैठ गए। जो विचार तथा उतार-चढ़ाव मेरे मन में आ रहे थे उनका वर्णन करना असंभव है। व्यक्ति की वाणी में यह सामर्थ्य ही नहीं कि इस प्रकार के अवसर पर तूफान की तरह मन में उठने वाले विचारों का चित्रण कर सके। इसी बन्दरगाह पोर्टलैंड में उतरे हुए मुझे लगभग तीन वर्ष हो गए थे जो एक तमाशे की तरह बीत गये थे। मुझे कभी ख्याल ही नहीं आया था कि देश क्या होता है। अंग्रेज़ क्या है और आज़ादी क्या होती है ? पर भावी बड़ी प्रबल होती है। कौन भारतीय था जो गदर पार्टी के विचारों के भंवर में कभी न कभी, किसी न किसी प्रकार से न फंसा हो। इस समय तक न तो मैंने अमरीका देश का ही कुछ देखा था और न ही कोई बड़ी कमाई की थी। मन में एक तरफ माता-पिता को याद करके मन कचोट रहा था कि क्या कमाई की है दूसरा शर्मिन्दा कर रहा था कि देश को स्वतन्त्र करवाने वालों के दिलों में ऐसे छोटे विचार कब आते हैं।

कुछ पता नहीं कि जहाज़ कब चला, अन्य कौन हमारे साथ जहाज़ में सवार हुए। हमें किसी ने नोट किया या नहीं। विचारों की आंधी इतनी प्रबल थी कि न तो आंखों ने कुछ देखा, न मेरे कानों ने कुछ सुना। जब सांझ हुई तो शान्त महासागर की ठन्डी हवा के झोंके लगे तो मुझे सुध-बुध आयी और मै अपनी कमजोरियों की कंवली परे झटक कर, बनावटी सी बहादुरी ओढ़कर शर्मा साहिब की ओर चला ही था कि याद आ गया कि अभी मेल नहीं करना। शर्मा जी को साहिब ऐसे ही नहीं कहा। शर्मा सचमुच ही साहिब बना बैठा था। उसको देखकर कौन कह सकता था कि वह होशियारपुर का उच्च जाति का ब्राह्मण है।

जहाज़ में पंजाबियों की संख्या तीस के लगभग थी, जिनमें से दो चार हमें जानते थे, फिर भी चौकन्ना रहने की आवश्यकता थी। शर्मा ने ऊंचे दर्जे का टिकट लिया हुआ था और वह अपने कमरे में जा बैठा। मेरा टिकट तीसरे दर्जे का था। हम सामान्य यात्रियों की तरह मिलते जुलते थे। खुले समुद्र में प्रवेश करते ही हमारी परेड शुरू हो गई। जर्मन पनडुब्बियों का बड़ा भय था। दिन में जहाज़ पर एक बड़ा जापानी झण्डा लहराता रहता था, रात को यात्री जहाज़ का संकेत देने वाली सारी बत्तियां जगती रहती थीं। युद्ध और शांति में बड़ा अन्तर होता है। युद्ध के कारण कोई यात्री या नाविक ऐसा नहीं था जो न्यूनाधिक चिन्तातुर न हो। इस बात का सन्तोष था कि चाहे जापान ने भी युद्ध की घोषणा की हुई थी पर प्रशान्त महासागर में किसी ओर से भी कोई छेड़खानी नहीं हुई थी। जर्मन जहाज़ एमडन, जिसने हिन्द-महासागर में आतंक फैलाया हुआ था, कुछ महीने पहले ही मार खाकर समाप्त हो चुका था। एशियाई सभ्यता तथा यूरोप की सभ्यता का अन्तर जहाज में सवार छोटी सी दुनिया से लग रहा था। जहाज के छोटे दर्जे में लगभग सभी यात्री एशियानिवासी थे, चीनी, जापानी, भारतीय, थोड़े मलायानिवासी व्यापारी तथा कुछ अमेरिका के निवासी पादरी। इस ओर सामान्य चुप्पी सी फैली रहती थी। एशिया वाले आपस में भी कम ही बोलते थे, इनकी बोली भी एक सी नहीं थी। खाना-पीना, जहाज़ वालों की ओर से एक जैसा था पर फिर भी खाने के तरीके प्रत्येक के अपने थे। ऊपर के दर्जे में लगभग सारे ही यात्री अमेरिका निवासी थे या कुछ आस्ट्रेलिया निवासी। यह बड़ी रौनक लगाए रखते थे, दिन में दो-दो तीन-तीन बार पोशाक बदलते थे, इकट्ठे बैठकर भोजन करते थे, सारे अंग्रेज़ी बोलते थे तथा जहाज़ के जापानी अफसर भी इनके साथ घुल-मिल जाते थे।

दो सप्ताह बाद हमारा जहाज़ हैनान योकोहामा की बन्दरगाह में पहुंचा।

जापानी कर्मचारियों ने अमेरिका निवासी यात्रियों की भी पूरी तरह से छानबीन की। हम सबको पूर्व वालों को और पश्चिम वालों को, एक पंक्ति में खड़ा कर दिया गया तथा हमारे कागज़-पत्रों की अच्छी तरह से पड़ताल की। स्वतन्त्र देश की हल्की सी झलक हमें तब दिखाई दी जब एक प्रथम दर्जे का गोरा थोड़ा सा इठला कर, दूर से ही अपने कागजों को दिखाकर चलने लगा। जापानी पुलिस वाले ने झट उसे कन्धे से पकड़ कर जांच-पड़ताल करने वाले इन्सपैक्टर के पास पेश कर दिया। वहां देखा कि गोरे किस प्रकार दूसरे स्वतन्त्र देश वालों के सामने अपनी अकड़ को भूल जाते हैं।

—0—

पांचवां अध्याय

जापान

जहाज़ से उतर कर शर्मा मेरा मालिक बन गया और मैं नौकर। हमारी पहली कोशिश यही थी कि हम अपने देशवासी मित्रों से पूरी तरह अलग हो जायें तथा शिकारी के मुख में पड़ने से बचे रहे। रात होने पर हम एक मामूली से जापानी होटल में जा ठहरे। दूसरे दिन हमारा पहला काम बैंकों से ड्राफ्टों का भुगतान लेना था। शर्मा की अंगरेजों जैसी आकृति तथा बोलचाल का ढंग इस प्रकार का था कि किसी को उसके अंगरेज न होने पर शक ही नहीं हो सकता था। डालरों के नोट लेकर हम उन्हें भारतीय मुद्रा में बदलवाने लिए के घूमने लगे। यदि हम ने भारत पहुंच कर भारतीय मुद्रा लेनी होती तो यह आसान था पर हमें विश्वास नहीं था कि भारत में हमें वहुत ढील मिलेगी। वहुतेरी कोशिश की पर हमें योकोहामा में भारतीय मुद्रा नहीं मिल सकी। आखिर यह निर्णय लिया गया कि डालरों को जापानी मुद्रा में वदलवा लिया जाये। तथा उसे पुनः किसी अन्य शहर या आगे चीन या मलाया में पहुंच कर भारतीय मुद्रा में बदलवा लिया जाए। इस युक्ति से इतना तो हो ही जायेगा कि सहज में किसी को भी हमारे अमरीका से आने का शक भी नहीं पड़ेगा यह युक्ति हमें योकोहामा के सिन्धी सज्जन ने बताई थी। हमने जापानी मुद्रा (यैन) लेकर गांठ में बांध ली पर अब हमें नोटों की वड़ी बड़ी गटिठयों की संभाल करनी थी। आम धारणा थी कि हांगकांग में भारतीय मुद्रा मिल जायेगी क्योंकि वहां का अधिकांश व्यापार अंगरेजों के कब्जे में है और अंगरेज भारत से कुछ न कुछ सम्बन्ध जोड़े रहते हैं। दूसरे देश में वैसे भारतीय मुद्रा रखने की क्या आवश्यकता हो सकती है। व्यापार के लिए भारतीय मुद्रा की भारत में ही आवश्यकता होती हैं। अतः व्यापारी लोग आपस में या बैंकों के माध्यम से हुण्डी पर्चे या ड्राफ्टों द्वारा विनिमय कर लेते हैं। फिर भी कभी न कभी विदेश में भारतीयों को भारतीय मुद्रा की आवश्यकता पड़ सकती है और इस आवश्यकता को पूरा कर सकना किसी विरले धनाढ़्य का काम होता है।

अब हमारे सामने दूसरी समस्या थी हांगकांग की ओर ले जाने वाले जहाज़ की खोज। पता लगा कि युद्ध के कारण यात्री जहाज़ बहुत कम संख्या में उपलब्ध हैं। इसका एक कारण यह भी था कि जर्मनी ने ताबड़ तोड़ बरतानिया के यात्री एवं माल वाले जहाज़ों को ध्वस्त करना एवं डुबोना शुरू कर दिया दूसरे, सेनाओं को लाने ले जाने के लिए बरतानिया ने बहुत से जहाज़ ले लिए थे। चीन के छोटे जहाज़ उपलब्ध थे पर हमारे पासपोर्टों पर चीन में प्रवेश की अनुमति नहीं थी। हांगकांग के लिए जाने वाले जहाज़ में अभी दो सप्ताह की देर थी और फिर भी यह निश्चित नहीं था कि हमें उस पर जगह मिल जायेगी। घूम फिर कर जब हम थक गए तो सोचा चलो किसी सिन्धी सुबुद्ध से कोई युक्ति पूछें। योकोहामा एक बड़ा व्यापारिक केन्द्र है तथा यहां सिन्धी व्यापारियों की बड़ी संख्या है जो वस्त्र, रेशम, विलक्षण हस्तशिल्प की संग्रहणीय वस्तुओं आदि का व्यापार करते हैं। समुद्री अड्डा होने के कारण तथा जापानी माल के निर्यात का शहर होने के कारण योकोहामा एक अन्तर्राष्ट्रीय शहर जैसा दिखाई देता है। सिंघापुर तथा हांगकांग के बाद अमरीका की ओर यही एक दो बड़े शहर है जो प्रशान्त महासागर के बड़े व्यापारिक तथा यातायात के अड्डे हैं। यूरोप तथा एशिया की बन्दरगाहों में बड़ा अन्तर यही है। यूरोप में कदम कदम पर बन्दरगाह तथा जहाज़ों के अड्डे है। पचास-सौ मील चले कि बड़ा शहर या अड्डा पहले से भी वड़ा मिल जाता है। पर एशिया में कलकत्ता से चलें तो रंगून आठ सौ मील पर है तथा सिंघापुर बारह सौ मील पर। आगे चीन डेढ़ दो हज़ार मील तथा आगे जापान अतिरिक्त दो हज़ार मील। एशिया के रास्ते लम्बे तथा यातायात के साधन कम भाषाओं का परस्पर बहुत अन्तर जिससे (एक) व्यक्ति के लिए (दूसरा) व्यक्ति ऐसे है जैसे सितारों बैठे हों। पूर्व, जिसमें भारत से लेकर हिन्द महासागर के सारे बड़े देश तथा द्वीप, बर्मा, मलाया, सुमात्रा, जावा और चीन का सारा किनारा, हांगकांग से लेकर आगे ज्ञापान तक एक से एक विलक्षण 'विलायतों' का एक संग्रह है जिसका भाग्य अभी चमका नहीं है, तथा जहां यूरोप के देशों के लिए पैर पसारने के लिए खुली जगह उपलब्ध है। भारत एक शताब्दी तक अंगरेजों की शिकारगाह बना रहा। बर्मा स्वाधीन तो हो गया पर गृहयुद्ध का शिकार हो गया। मलाया अभी अंगरेजों के कब्जे में है तथा जब तक अंगरेजों का ध्यान समुद्री अड्डों की ओर है मलाया का छुटकारा कठिन प्रतीत होता है, जहां सिंघापुर तथा पीनांग के अड्डे हैं। सुमात्रा तथा जावा द्वीप (यत्र-द्वीप) जिन्हें इण्डोनेशिया कहा जाता है हालैंड वालों की जागीर बनी रही, जहां से बहुत बड़ी मात्रा में चीनी विदेशों को जाती रही। दक्षिण की ओर अंगरेजों ने एक अन्य द्वीप पर अधिकार किया हुआ है (वह है) आस्ट्रेलिया जिसके ऊपर के गरम आधे भाग में गोरे निवास नहीं कर सकते पर किसी अन्य को वसने की आज्ञा नहीं दी जा

सकती। मलाया के साथ ही स्याम तथा हिन्दी-चीन, गरीब से देश हैं, एक स्वाधीन है दूसरे पर फ्रांस वालों का अधिकार है। प्रतीत होता है कि इनका भाग्य भारत से मिलता-जुलता है। ये बौद्ध देश हैं। सुमात्रा और जावा आदि आवाद हैं, जहां इसलाम का भी प्रभाव है। भारत की बौद्ध सभ्यता किसी युग में यहां प्रफुल्लित रही है। बाकी जैसे कई द्वीपों में रामायण की कहानियां अभी तक प्रचलित हैं। शहरों के नाम, मन्दिरों की बनावट, पूजा पाठ के रिवाज सभी हिन्दू संस्कृति से मिलते जुलते हैं।

सिन्धी व्यापारी भी बड़े प्रगतिशील तथा साहसी हैं। जहां जायें, व्यापार में सारे भारतीयों से पहले यही पाँव जमाते हैं। इनमें से लगभग सारे सहजधारी तथा गुरुघर के बड़े श्रद्धालु होते हैं। हमें मिलकर बड़े प्रसन्न हुए, हमारी बड़ी आवभगत की। सिन्धियों का व्यापार अधिकतर दुकानदारी के रूप में होता है, माल निर्यात आयात का नहीं उन्होंने कहा कि यात्री जहाज़ पर जाने का तो हमें स्वयं प्रबंध करना होगा पर यदि वहां काम न बने तो वे हमारा किसी जान पहचान वाले मालवाही जहाज़ से हांगकांग जाने का प्रबन्ध कर देंगे। यह तो ऐसे ही था जैसे अन्धे को दो आंखे मिल जाएं। हमने सोच विचार कर कहा कि हमें मालवाही जहाज़ पर जाना ही स्वीकार है। मालवाही जहाज़ों पर सामान्यतः यात्री नहीं ले जाते, परन्तु कभी कभी परिचितों या पर्यटकों को बिठा लेते हैं। यात्री जहाज़ों वाली सुविधाएं तो नहीं होती पर जगह काफी होती है, भीड़ नहीं होती। हमारे जैसे लोगों के लिए तो इस प्रकार के जहाज में बैठना 'एक पंथ दो काज' वाली बात थी। एक खुली जगह दूसरे कोई आशंका नहीं तीसरे खर्च कम। केवल एक बात थी कि माल जहाज़ मालगाड़ी की तरह पांच सात दिन अधिक लगा देगा। हमें जहाज़ मिलने की बात पक्की हो गई तो हम निश्चिंत हो गये। शर्मा साहिब कहने लगे कि जापानी स्नान गृह में अवश्य स्नान करेंगे। मैं भी साथ चल पड़ा। एक साईनबोर्ड पढ़कर अन्दर घुस गये। पैसे जमा करवाए तथा झिझकते झिझकते एक कमरे में प्रवेश किया जहां हमने कपड़े उतारने थे। हमें मुद्रा का बोझ तंग करने लगा। शर्मा साहिब ने तो अपना बोझ उतार कर मेरे हवाले कर दिया। हमने कपड़े उतार लिए मेरे निम्न भाग में कच्छा रह गया था और शर्मा के तौलिया नए स्थान पर मैं तो अचंभे से पसीना पसीना हो रहा था। गले में नोटों वाला बैग था। मेरी हैरानी तो बड़ी कठिनाई बन गई जब शर्मा साहिब ने तौलिया उतार फेंका और एक बनी संवरी जापानी लड़की ने मुझे भी कच्छा उतारने का संकेत किया। शर्मा हंस पड़ा और मैं शर्म से पानी पानी हुए जा रहा था। मुझे क्या पता था कि नाइयों के स्थान पर जापान में लड़कियां स्नान करवाती हैं और वे जन्मजात रूप में। स्नान करना मात्र पानी गिराना नहीं होता। पहले मालिश फिर वाष्प (भाफ) में प्रवेश, फिर ठण्डे पानी में स्नान तद-

नन्तर गर्म पानी में और अन्त में एक बार फिर शुष्क (सूखी) मालिश। मैं ऐसे स्नान से ही, बचे रहना चाहता था। पर पैसे काफी दे बैठा था, सोचा, समझ लेंगे कि आज शर्मा साहिब का उबटना (विवाह से पूर्व का स्नान) है।

योकोहामा देश के भव्य महल तथा बड़े-बड़े व्यापारियों के ऊंचे भवन देखकर ऐसा लगता है कि देश बड़ा धनवान होगा। एशिया के देशों में एक जापान ही ऐसा देश है जिसकी प्रसिद्धि यूरोप के देशों के साथ समानता होने के फलस्वरूप हुई है। सन् सत्तावन के विद्रोह के समत जापान एक अज्ञात सा द्वीप था जहाँ बाहर के जहाजों तथा व्यक्तियों को पाँव रखने की स्वतंत्रता तक नहीं थी। अमेरिका तथा बर्तानियाँ के जहाज जापान जाते थे पर कोई जापान की धरती पर उतर नहीं सकता था। जापानी हकूमत महाराजा तथा उसके वंश के धनी सामूराय की हकूमत थी। एक बार किसी कारण एक अमरीकी युद्धपोत से जापानी कर्मचारियों ने ज्यादती की तो अमेरिका युद्धपोत के अधिकारी ने जापानियों को धमका कर (और पिटाई करके) सेना उतार दी और जब तक जापानियों ने अनुवय-विनय करके समझौता नहीं किया तथा आगे से लिए यातायात की स्वीकृति नहीं दी, वहाँ से युद्धपोत नहीं हिला। यह शिक्षा जापानियों के लिए लाभप्रद सिद्ध हुई। उन्होंने महसूस कर लिया कि युद्धपोत ही नौशक्ति की कुंजी है। थोड़े से वर्षों में ही जापानी नौसेना एशिया की सारी शक्तियों से अधिक शक्तिशाली मानी जाने लगी। उन्नीस सौ सात-आठ में जापान का रूस से युद्ध छिड़ गया। जापान ने कोरिया में सेना उतार कर मंचूरिया के शहर मकडन पर अधिकार कर लिया तथा स्थल युद्ध में भी रूप के इतने दाँत खट्टे किये कि दुनिया चकित रह गई। जापान की विजय का रहस्य इस बात में था कि जापान की समुद्री-सेना (नौ सेना) शक्तिशाली थी तथा जापानी समुद्री सेनाओं के यातायात पर कोई रुकावट नहीं थी। रूस का युद्धपोत यूरोप के रूसी समुद्री बाल्टिक सागर में था जहाँ से जापान तथा युद्ध क्षेत्र आठ हजार मील दूर था। रूस को जब बार-बार पराजय का मुह देखना पड़ा तो उन्होंने अपना यूरोपीय युद्धपोत तैयार किया तथा उसे यूरोप से जापान की ओर भेजा। यह पोत अभी जापान से इधर ही था कि जापानी पोत के नौ सेना एडमिरल टांगों ने उसे घेर कर मार्ग में ही ध्वस्त कर दिया। तब से जापानी शक्ति की धाक जम गई। यूरोप की शक्तियां भी कन्नी कतराने लगीं। जापान की उन्नीस सौ सात-आठ की विजय तथा उन्नति का मूल कारण जापानी जनता का चरित्र है। कद के छोटे पर बड़े हृष्टपुष्ट, सादा लोग एक मुट्ठी चावल तथा एक चुटकी सूखी मछली पर गुजारा करने वाले, देश के नाम पर बड़े तो क्या छोटे लोग भी आवश्यकता पड़ने पर प्राण दे देने वाले, बादशाह को ईश्वरीय ज्योति तथा उसके

आदेश को अटल समझने वाले, ये इनके मोटे लक्षण हैं। प्रत्येक वर्ष सैकड़ों जापानी, आम तौर पर सम्मान के प्रश्न पर 'हाराकीरी' कर जाते है। 'हाराकीरी' जापानियों द्वारा आत्मघात करने की पुरानी रीति है। ऊंचे स्थान पर चढ़कर, पूजापाठ करके, पहाड़ी टीले से छलांग लगाना तथा प्राण दे देना। एक यूरोपीय लेखक द्वारा स्वयं देखी बात है कि एक युद्ध में पराजित होकर एक शहर के नर नारी तथा बच्चे, शत्रुओं से बचने के लिए चुपचाप समुद्र में घुस गए तथा मर गए। द्वितीय महायुद्ध में बर्तानिया के बड़े समुद्री जहाजों को डुबोने के लिए एक-एक जापानी तथा एक-एक हवाई जहाज प्रयोग किया गया। वायुयान लेना, उसमें बारुद भरना तथा उसमें सवार होकर जा टक्कर मारना। इस काम के लिए जापान के कर्नल तथा जरनल आत्म-बलि दान करते थे। यह कोई छिपी बात नहीं है कि जापानी सेना में एक टोली थी जिसे आत्म-घाती टोली (suicide squad) कहते थे। इसके स्वयं सेवकों का काम था कि जहां आवश्यकता पड़े स्वयं को प्रस्तुत कर देना।

जब हम योकोहामा शहर से बाहर निकले तो हमें यह पता चला कि जापानी बेचारे कोई धनाढय नहीं हैं। धनाढय बने कैसे? न जापान में कोयला है, न लोहा और न तेल। यही तीन चीजें हैं जो आज के युग में धन का स्रोत समझी जाती हैं। यही कारण है कि जापान चीन के लोहे तथा कोयले पर आंखें गड़ाये रखता है तथा चीन को मैत्री-संधि में बाँधे रखने के लिए प्रयत्न करता रहता है। हमने देखा कि जापानी पुरुष और स्त्रियाँ छोटे-छोटे खेतों में परिश्रम कर रहे थे, दरिद्रता प्रत्यक्ष थी। लकड़ी के घर थे जिन्हें पत्तों और कागजों से ढका हुआ था, पर उन्हें फूलों पत्तियों से सजा संवार कर रखा गया था। यदि असली बेल-बूटे न हों तो कृत्रिम रंगीन तस्वीरें प्रयोग में लाई गई थीं। श्रमिकों ने पैरों से लकड़ी की खड़ावे तथा आधी बाहों वाले चोगे से पहने हुये थे। स्त्रियों ने बच्चों को पीठ पर बांधा हुआ था। जापानी लोग हस्तशिल्प में कुशल हैं। जगह-जगह गांवों में हस्तशिल्प की इतनी वस्तुएं बनाते हैं कि आधे जापान का गुजारा इसी व्यवसाय पर निर्भर है। बच्चों के खिलौने, माचिस की डिब्बियां, हाथ के पंखे, कपड़े पर चित्रकला आदि की अनगिनत वस्तुएं। जापानी लोगों का चरित्र बड़ा सरल है, अत्यंत परिश्रमी हैं तथा अपने देश को शक्तिशाली देखने के बहुत इच्छुक। जापान में सरकारी कर्मचारियों के वेतन बहुत कम हैं, सेनाओं के कप्तान तथा मेजर सौ-सौ, डेढ़-डेढ़ सौ रुपया लेते हैं। समुद्र में बसने के कारण यह नौका-चालन में कुशल हैं अतः-मछलियां पकड़ने का काम बहुत है। जापान भी चीन की तरह अपने निवासियों को संभाल नहीं सकता, इसीलिए यहां के निवासी चारों ओर के देशों कोरिया, फिलिपाइन,

आस्ट्रेलिया आदि में जाकर बसने के इच्छुक रहते हैं। कई लाख जापानी अमेरिका तथा उसके द्वीपों में बसे हुए हैं। जापानी नौकर-चाकर सामान्यत, घरों में बागीचे की देख-भाल, कपड़े धोने तथा मशीनों की मुरम्मत का काम करते हैं तथा निर्वाह कर सकने वाले औषधि, जड़ीबूटी तथा रसायन आदि का काम करते हैं। अमेरीका की तुलना में तो जापान देश बहुत कम धनी प्रतीत होता था। योकोहामा शहर में मोटरें थीं पर उस तरह भरमार नहीं थी जैसे फ्रिस्को (Frisco) में थी। बाहर खुले देहाती इलाके में जाने के लिए यात्रा प्रबंध कम थे। न तो हमने जापानियों को शराब पीते न ही उन्हें मछलियों के इलावा कोई और माँस खाते देखा। दोनों चीजों की जापान में कमी प्रतीत होती थी।

एक दिन सांझ के समय हमें संदेश मिला कि मालवाही जहाज़ प्रातः ग्यारह बजे चलेगा और हम अमुक पुल पर आठ बजे पहुंच जाएं। हम रात को तैयारी करके लेखा-जोखा निपटाने की बात कर रहे थे कि शर्मा साहिब कहने लगे कि कल तो बृहस्पति-वार है और थोड़ा पहले ही चौथ का चंद्रमा उन्हें दिखाई दिया है। अतः वह इस जहाज़ पर नहीं चढ़नाचाहते। मैंने कहा इन वहमों में नहीं पड़ना चाहिए और हम कौन किसी बड़े मुहूर्त के काम पर चले हैं। हम तो पहले हो बलिदान हो चुकें हैं। शर्मा कहने लगे 'भाई हरनाम सिंह। चाहे बलिदान ही हो चुके हों, पर आंखों देखकर जहर नहीं खाया जा सकता। मैं तो इस जहाज़ का मुंह भी नहीं देखना चाहता।' मैंने बहुत समझाया-बुझाया पर शर्मा जी ने हामी नहीं भरी। हम झगड़ते-झगड़ते सो गये। प्रातः उठे तो शर्मा कुछ चुप से थे। आखिर कहने लगा 'भाई हरनाम सिंह' चाहे गुस्से रहो चाहे प्रसन्न मैं इस जहाज़ पर नहीं चढूंगा। अधिक हठ करते हो तो यह लो अपने रुपये और चलते बनो, अपने मन की करो। मैं तुम पर कोई दोष नहीं लगाता। मैं बाद में हाँगकांग में आ मिलूंगा। मैं बड़ा दुखी हुआ बड़ी कठिनाई से तो जहाज़ का प्रबंध हुआ है और अब शर्मा अड़चन डाल रहा है। उधर आठ बजने को हुए पर शर्मा जमकर बैठ गया। मुझे कुछ नहीं सूझ रहा था कि क्या करूं। आखिर मैंने पंजाबियों वाली युक्ति सोची तथा शर्मा को कहा :—'आखिर ब्राह्मण ही निकले न। वहां उतनी शेखी बघार रहे थे। अभी तो आधा मार्ग भी नहीं कटा कि डरने लगे हो। अच्छा मैं अकेला ही जाता हूं। आखिर तुम ने पहुंचना तो पंजाब ही है न।' इस तीखे कटाक्ष से शर्मा विचारों में डूब गया। मैंने सामान उठाया और रिक्शा बुलवा लिया। उसका बिस्तर और बैग मैंने दूर फेंक दिये तथा बनावटी क्रोध में थोड़ा कंधा मरोड़ कर चलने ही लगा था कि शर्मा-उठा और कहने लगा कि दो रिक्शे बुलवाओ मैंने कहाँ मैं नहीं मंगवाता दो रिक्शे उसका रास्ता अलग है और मेरा रास्ता अलग। खैर हम दोनों चल पड़े।

हमारे रिक्शे अगाड़ी और पिछाड़ी अभी सौ गज़ के लगभग भी नहीं चले थे कि पीछे से एक तेज़ मोटर-गाड़ी आई तथा एक जापानी बुढ़िया को बचाने की कोशिश में शर्मा साहिब के रिक्शे से जा टकराई। शर्मा साहिब की टोपी दूर जा गिरी। शर्मा साहिब और उसका रिक्शा टूट गया, रिक्शावाले के घुटने और टखने रगड़े गये। शर्मा साहिब उठते ही क्रोध से मेरी ओर झपटे। सामान तो क्या उठाना था, कहने लगे 'अभी भी रुक जाओ मैं तुम्हें हुकम देता हूं कि हम इस जहाज़ पर नहीं चढ़ेंगे। मैं भी उन दिनों अपनी अल्हड़ जवानी में था। मैं भला कैसे मान जाता। मैंने बहाना बनाया कि हमारा सिंधी मित्र उस तट पर हमारी प्रतीक्षा कर रहा होगा। कहेगा 'यह अच्छे भद्र पुरुष हैं।' चलो, वहाँ उसे कहकर लौट जायेंगे शर्मा-मान गया तथा हम दूसरा रिक्शा लेकर जहाज़ों के पुल पर पहुंच गये। नौ बज चुके थे और ग्यारह बजे जहाज़ ने चल पड़ना था। पहुंचते ही हमारा सिंधी मित्र कहने लगा— 'जहाज़ वालों ने मेरे कहने पर दो अंग्रेज यात्रियों को इनकार कर दिया है। जल्दी करो, आपको चढ़ा आऊं। शर्मा साहिब का मुंह बंद सा हो गया तथा मैं भीतर ही भीतर हंस रहा था कि सामान वाली छोटी नौका आई और सिंधी मित्र ने शर्मा का बैग उठाकर पकड़ा दिया। मैंने अपना सामान रखा तथा शर्मा की बांह पकड़कर नौका में खींच लिया। बस रोनी चिंघाड़ती हीर खेड़ों (खेड़ा-हीर के ससुराल का गांव) की ओर चल पड़ी।

जहाज़ में माल (सामान) लादा जा चुका था, कागज़-पत्र तैयार थे। हमने भी अपने किराये के रुपये दे दिये। मालवाही जहाज़ में कमरे तो होते ही नहीं पर हमें उन्होंने एक इंजीनियर का केबिन दे दिया। मैं तो बड़े मज़े में जहाज़ पर घूमने लगा, पर शर्मा इस प्रकार लग रहा था जैसे मौत के मुंह में आ गिरा हो। जहाज़ के चलने में आधा घण्टा रहता था, जब हमारे जैसा एक अन्य व्यक्ति थोड़ा सा सामान लेकर आ चढ़ा। मैं और शर्मा उसके चेहरे की ओर देख रहे थे कि न तो यह चीनी है न जापानी और न ही अंग्रेज़। उसका चेहरा पक्के रंग का तथा ऐसा लगता था जैसे उसे पहले कहीं देखा हो और यह भी लगे कि शायद भ्रम ही है। नये यात्री ने जबंदस्ती हमसे मैत्री गांठ ली और हमारे न न करते हुए भी उसने अपना बैग हमारे कमरे में जा रखा। जहाज़ ने अपने टिकाने से सांकल खोली तथा दो-तीन फर्राटे भरकर योकोहामा बंदरगाह की ओर पीठकर के खुले समुद्र की ओर चल पड़ा।

यदि कोई व्यक्ति अमीर हो और दुनिया की सैर करना चाहता हो और मुझसे पूछे, तो मैं कहूंगा कि जो आनन्द और मौज माल-जहाज़ में बैठकर समुद्र के अवगाहन में है वह दुनिया के किसी और स्थान पर नहीं। यात्री जहाज बड़े सुंदर होते हैं। उनमें ऐशो-

आराम का बड़ा सामान होता है, अच्छे सुंदर, साफ-सुथरे कमरे, दिन-रात चलते बिजली के पंखे, मिलने-जुलने, उठने-बैठने, ताश खेलने, गप-शप मारने के लिए बड़े-बड़े कमरे, स्नान के लिए तालाब, पीने के लिए बोतलें और बढ़िया खाना। पर यह सब कुछ होते हुये भी माल जहाज़ों में नंगे तख्तों पर बिस्तर लगाकर बैठना, अपना भोजन स्वयं तैयार करना, अपनी मौज से सोना-जागना आदि की तुलना में यात्री जहाज की सुख-सुविधायें कुछ भी नहीं। यात्री-जहाज़ का कोलाहल, भीड़, प्रत्येक अच्छे-बुरे को नमस्कार करना, प्रतिदिन कार्यालय की उपस्थिति की तरह औपचारिकता में रहना, सारा दिन घंटी की आवाज़ पर परेड करते रहना, न कभी सुस्ताना, न अपनी नींद सोना-जागना, यात्री जहाज़ तो कलियुग के मेले की तरह मात्र एक कैद होता है जिसमें न तो कोई बाहर जा सकता है और न जिसके शिकंजे से, जिसे सोसायाटी कहते हैं, बच सकता है। दूसरी ओर माल जहाज के इक्लले-दुकल्ले (एक या दो) यात्री नवाबों की तरह, जिधर, चाहें घूमें चारों ओर उन्हीं का साम्राज्य होता है। न वहाँ घंटियां, न कोई बंधन न घड़ी की सुई के अनुसार भोजन करना, न डैक-टैनिस खेलना और न ही विशेष दिनों पर विशेष पहरावे का बंधन। यात्री जहाज का (एक जगह से) चलना और (दूसरी जगह पर) पहुंचना न्यूनाधिक निर्धारित है। पर माल जहाज़ इन बंधनों से मुक्त होते हैं। जब दिल किया चल पड़े किसी की हुकूमत नहीं।

जो आनन्द मुझ जैसे व्यक्ति को काले जल, झिलमिलाते तारों तथा खुली वायु के साथ चुपचाप बतियाने में मिलता है वह वर्णन से परे है। मालजहाज़ सामान्यत: सात-आठ मील की गति से चला करते हैं। न इनमें धक्कामुक्की, न रगड़, न रेल की दुहाई, न धूल, न सड़क के पथिकों से बचाव की आवश्यकता, न मोटर गाड़ी की दिल धड़काने वाली उतावली गति समुद्र शान्त हो तथा जहाज़ के तख्तों पर सीधा लेटकर व्यक्ति अनन्त की ओर मुख उठा ले, ऐसा लगता है जैसे दिव्यलोक के धीमे मुलायम झूले पर झूल रहा हो। जहाज़ के मस्तूल झूले की तरह बेमालूम से झूल रहे होते। व्यक्ति में प्राणों का संचार करने वाली स्वच्छ एवं अनछुई वायु के झोंके आ रहे होते हैं। दूर कहीं नीचे मामूली सी इंजन की धुकधुक, सुनती तो नहीं पर शरीर को महसूस होती है तथा जब रात उतर आती है तो हजारों सितारे मोतियों की तरह झिलमिल-झिलमिल करने लग पड़ते हैं। जहाज़ के झकोले, सितारों का यह सारा ब्रह्मांड, नशे में डूबे व्यक्ति की तरह चढ़ता उतरता दिखाई देता है। कौन सा दृश्य है जो इससे बढ़कर सुन्दर है। कौन मूर्ख है जो इस मौन और शान्त एकान्त को छोड़-कर यात्री जहाज़ों के कलयुगी झमेलों में पड़ना चाहेगा साथ यात्रियों से व्यर्थ की बातें करना पसंद करेगा। जहां प्रत्येक मन में अहंभाव की आंधी चल रही हो और जहां इस प्राकृतिक

लीला को देखने वाली आंखें ही न हों तथा न ही विस्मय । विमुग्ध होकर समुद्र तथा आकाश के इस नाटक पर चिन्तन एवं मनन करने वाले हृदय ही होते है । जहां व्यक्तियों की भीड़भाड़ हो वहां शान्ति तथा आनन्द कैसे हो सकता है, जहां कि एक-दूसरे को आँखें फाड़फाड़ कर देखने से अवकाश ही न मिलता हो, वहां प्रकृति का सौन्दर्य निहारना किसे सूझेगा हमारा जहाज़ छोटा भी था और पुराना भी, नूरमहल के पुराने इक्कों की तरह, स्थान-स्थान पर रस्सियां बांधी हुई, पहियों पर सिवार बांध-कर पानी डाला हुआ, बाहियों पर पत्तियो जड़ी हुई, छत्त पर फटे कपड़े (चीथड़े) तथा बेचारा सा, साढ़े-तीन टांगों पर चलने वाला टट्टू, तथा इक्के वाले का पुकारना 'मोटर चली है आइये, अकेली सवारी ।' सवार तो हम हो गये थे, पर जब निश्चिन्त जहाज़ को घूमकर देखा तो मन डोलने लगा जहाज़ बड़ी मुश्किल से हज़ार टन का था । इंजन के चलने की आवाज़ बेसुरे बूढ़े मिरासी जैसी, चीनी कप्तान तथा पन्द्रह सोलह 'चीनी मल्लाह एक यूरोप निवासी इंजीनियर, न वायरलैस, न रेडियो और न ही कोई प्राणरक्षक नौका । निचले भाग में सामान भरकर ऊपर से तख्ते तथा कैनवस की चादर डाल कर बन्द किया हुआ । अपने भोजन का प्रबन्ध हमने जहाज़ के चीनी रसोइये से कर लिया, चावल तथा आलू और कभी-कभी उसमें सूअर के मांस का टुकड़ा और मछली का सूप । एक बात से हम बड़े प्रसन्न थे कि शहर के कोलाहल से छुटकारा मिल गया । हम अपनी मंज़िल के समीप पहुंच रहे थे । सात-आठ दिन जो हमें हांग कांग पहुंचने में लगते थे । खाने पीने और सोने के अतिरिक्त अन्य किसी काम से सम्बद्ध नहीं थे । सबसे बड़ी बात यह थी कि हमारे पीछे कोई शिकारी नहीं था और न ही हमारा किसी को पता था । शर्मा भी गुस्सा-शिकवा भूल चुका था । मैं अधिकांश समय सोने में बिताता था तथा शर्मा दो-तीन अंग्रेजी उपन्यास ले आया था, उनमें डूबा रहता था । हमारा तीसरा साथी जो हमारी तरह यात्री था और बड़ा भद्र प्रतीत होता था । तीसरे-चौथे दिन अपने बैग में से बोतल निकाल लाया और पीछे पड़ गया । हम दोनों ने आनाकानी करने की बजाये दो चार घूंट पी लेना ठीक समझा । हमने उसे कह दिया कि हमने उसकी मित्रता को चोट पहुंचाने से बचने के लिए दो घूंट पी ली है, अब वह मज़े करे पर वह हमसे जुड़ा ही रहा । अन्तत : बात यहां समाप्त हुई कि वह पण्डित जी को विवश न करे, मैं उसके साथ थोड़ा बहुत साथ देता हूं । मैंने उसकी एक बात नोट की कि न तो उसने यह बताया कि वह कौन है और न कि वह कहां जा रहा है और न ही वह दो चार शब्दों से अधिक बोलता था । शरीर की बनावट से वह पंजाबी प्रतीत होता था, पर वह टूटी-फूटी परदेस में बोली जाने वाली हिन्दुस्तानी में बातें करता था । मैंने मन में ठान ली कि आज इसका भेद जाना जाये । जैसे जैसे उसने

मुझे गिलास पकड़ाये मैं थोड़ा-बहुत आनाकानी करता हुआ पीता गया। जब बोतल समाप्त होने लगी तो नशे में डूबे व्यक्ति का सा व्यवहार करने लगा। आँखें बन्द कर लीं। कभी उठकर गिर पड़ता, कभी कहता, "आओ ब्राह्मण स्नान करें, छलांगे मारें, अपने साथी को विश्वास दिलाने के लिये मैं जहाज़ के जंगले की ओर लुढ़क पड़ा तथा ऊपर से छलांग लगाने लगा। मेरे जंगले पर चढ़ते ही शर्मा मेरी ओर आया, मैंने धीमे से हाथ दबाकर उसे संकेत किया साथ प्रत्यक्ष में झिड़क कर कहा' 'हट जाओ पण्डित।" शर्मा समझ गया और परे हट गया तथा जहाज़ की दूसरी ओर चल पड़ा। मैं कोट उतार कर शराबियों की तरह लड़खड़ाता हुआ फिर उठा तथा जंगले के ऊपर से नीचे की ओर होने लगा तो हमारा तीसरा साथी, जिसका नाम हमने 'बुलडाग' रखा हुआ था, इधर-उधर देखकर उठा तथा अपनी ओर शर्मा की पीठ देखकर मेरे दोनों टखने पकड़ कर बोरी की तरह ऊपर की ओर उछाल दिया। मैंने पूरी शक्ति से जंगले की शिखर वाली सलाख पकड़ी हुई थी पर बुलडॉग ने इतने ज़ोर से मुझे उछाला था कि सलाख टूट गई, मेरा सिर नीचे तथा टांगें ऊपर हो गई थीं पर मैंने सलाख को बांहों में भींचा हुआ था। ईश्वर ने मुझे अकाल मृत्यु से बचाया था 'बुलडॉग' ज़ोर लगाने के लिए जंगले के नज़दीक आया तो मैंने नीचे से उसके दोनों पैरों को जंगले में से ही ज़ोर से भींच लिया इतने में शर्मा दौड़ कर आया तो बुलडॉग कहने लग पड़ा' आओ, आओ, जल्दी करो नहीं तो हम को भी ले डूबेगा। मैंने अपना 'नाटक' जारी रखते हुए शर्मा को दो-चार सुनाई बुलडॉग को आलिंगन में ले लिया यह मेरा मित्र है मेरा सगा भाई है, पण्डित (तू) परे हट जा।

बस, हम जिस बात से डरते थे वही गले पड़ गयी। बुलडॉग की योजना यह लगती थी कि मुझे जल प्रवाह करे दे और बाद में शर्मा को लूट ले। पर यदि यह सरकारी जासूस है तो उसे प्राण लेने की क्या आवश्यकता थी। हमने यह निष्कर्ष निकाला कि यह जहाज पर चढ़ा तो सरकारी सहायता से ही है पर जासूसी करते-करते इसे लोभ ने आ घेरा है कि जासूसी के साथ-साथ डाका भी डाल लिया जाए। बाद में पता लगा कि यह गदरपारटी के सरकारी शत्रुओं के पीछे-पीछे चलने वाला कुत्ता है, जिसने अमेरिका में भी एक-दो हत्यायें की हैं। पर यह था बड़ा ही धोखेबाज़। यह माझे (पंजाब का एक हिस्सा) का पला हुआ जाट था जो 'एक पंथ दो काज' साधने के लिए मुझे शराब के नशे में डुबाकर धन लूट लेना चाहता था और साथ ही अपने मालिकों से प्रशंसा प्राप्त करना चाहता था। हमने सोचा कि इसे मित्र समझना ही अच्छा है। सरल राह भी यही है कि इससे शत्रुता ठानने की अपेक्षा मीठे रहें तथा अपना समय बिता लें। गुस्सा तो मुझे बहुत था और अभी यह भी मन में था कि मौका

मिलते ही इसे 'समुद्र, स्नान करवाऊं, पर उस स्थिति में हमारा पकड़ा जाना निश्चित था और उससे हमारे उद्देश्य में विघ्न पड़ सकता था। रुपयों की, हत्या के लिए प्रेरक पोटली को मैं कपड़ों के नीचे बासली की तरह बांधे रखता था और चौबीसों घण्टे चौकसी रखता था। उधर बेचारा शर्मा अपना बचाव करता रहता था। हमारा प्रयास होता कि हम दोनों अकेले न रहें तथा 'बुलडॉग' को भी आंखों से ओझल न होने दें।

'बुलडॉग' ने हमारा इन दो-चार दिनों का भी मजा किरकिरा कर दिया। कभी-कभी सोचते थे कि यह हमें अब भी काठ का उल्लू ही समझता है पर निश्चित रूप से नहीं। वैसे तो मनुष्य ईश्वर का ही रूप कहलवाता है पर वास्तव में इस धरातल पर जो भी दुःख और क्लेश हैं, वह मनुष्य के ही रचे हुए हैं। चाँदनी रात थी और जहाज़ अपनी नशीली सी, मस्त चाल में चला जा रहा था। शर्मा मेरे पास तख्तों पर खूब लम्बी तानकर सोया हुआ था। ज्यों-ज्यों हम दक्षिणी समुद्र की ओर आ रहे थे सर्दी कम होती जा रही थी। योकाहामा से चले दस दिन बीत गये थे परन्तु हांगकांग अभी दूर प्रतीत होता था। हांगकांग का ध्यान आने पर वैसे मुझे अच्छा लगता था कि न हांगकांग आए और न ही मैं समुद्र, के एकांत से बिछड़ूं। बनवास तथा जंगलों और पहाड़ों के एकांत लोगों ने देखे हैं। लोग अपनी खोज के लिए वनों की ओर दौड़ते हैं और दुनियां से भागते हैं। पर जो मौज तथा आनन्द समुद्री एकांत में है वह कहीं अन्यत्र नहीं। समुद्र की उभरती और उतरती छाती पर एक तिनका सा तैरता फिरता है। बीच में धरती की सारी गन्दगी भी होती है तथा पापी मनुष्य भी बहुतेरे होते हैं पर इस छोटी सी दुनिया में एकांत प्रिय मन एकान्त का ही स्पर्श करते हैं। कभी-कभी दिन में एकाध बार जाते हुए जहाज़ चमत्कार सा दिखा जाते हैं। वह हमें चमत्कार से लगते हैं और हम उन्हें। दुनिया का कोई कोलाहल नहीं होता। मनुष्य और उसके विचार उद्‌गार, आशायें, दिन में समुद्र का मेला तथा रात को सितारों और सितारों की परछाईयों का मेला। जिस जहाज़ में भीड़ न हो उस पर व्यक्ति उतना ही वैरागी तथा एकाकी हो सकता है जितना विन्ध्याचल की गुफाओं में। यही कारण है कि नाविक बहुत शक्तिशाली होते हैं तथा जब जहाज़ तट पर रुकता है, एकांतवास उन्हें दुनिया के लिए इतना क्षुधातुर बना देता है कि वह सप्ताहों और महीनों की कमी दिनों में पूरी कर लेते हैं तथा जेब खाली करके पुनः जहाज पर सवार होकर समुद्र वनवास की ओर चल पड़ते है।

शर्मा की पुस्तकें समाप्त हो गई। चावल खाते-खाते हम ऊब गए। न रोटी, न अच्छा मांस, न ताजी शाक-सब्जी और न ही फल। शर्मा कहने लगा, 'हरनाम सिंह।

अब तो हांगकाँग निकट ही है। मैंने कहा' शर्मा जी-पता तो करो कितनी दूर है, कब पहुंचेंगे ? शर्मा ने कहा इन चीनियों से कौन माथापच्ची करे आखिर कहीं पहुंचेगे ही। इतना शुक्र करो सकुशल हांगकांग पहुंच रहे हैं न।

मै – पहुंच तो गए हैं पर बुलडॉग का हाथ तुम पर नहीं चला। पता तब चलता यदि मै सिर के बल गहरे पानी में जाता और वह तुम्हारी गर्दन मरोड़ कर ग्यारह हज़ार डालर अपनी गांठ में बांध लेता।

शर्मा – मुझे कैसे लूट लेता। मैं शोर मचा देता। यहां कोई सारे ही तो डाकू नहीं।

मैं बस करो। इसका क्या प्रमाण था कि नोट तेरे हैं या उसके। रुपया कहीं मुंह से बोलता है।

शर्मा तुम्हें यदि वह समुद्र में फैंक देता तो जहाज़ वालों ने उससे पूछ-ताछ तो करनी ही थी।

मैं – क्या पूछताछ करते ? खाली बोतल पास पड़ी थी शराबी होकर समुद्र क्या नरक के मुंह में भी छलाँग लगा दे और शर्मा जी आप इतना पढ़लिखकर भी नहीं सोचते कि ग्यारह (हजार) में से आधे इन चीनी मलंगों को दे देता तो उन्होंने मुंह नहीं खोलने थे।

ये बात हम कर ही रहे थे कि चीनी नाविक भागे-भागे आए तथा जहाज ही ऊपर की छत पर जो वस्तुएं खुली पड़ीं थीं, उन सबको बांधने जकड़ने लगे। रस्सों के ढेर को उन्होंने धकेल कर परे फेंका, हवा वाले मस्तूल खोलकर लिटा दिये और बांध दिए। जहां कहीं तरपाल लगे हुए थे, उतार कर लपेट दिए और जहाज में फेंक दिए। इतने में और दो-तीन मल्लाह आए, तथा चारों ओर समुद्र की तरफ आंखें फाड़-फाड़ कर देखने लग पड़े। इतने में बुलडॉग भी आ गया और कहने लगा 'तूफान आ रहा है।' समुद्र इतना शांत था कि पहले इतना टिका हुआ लगता ही नहीं था। हवा का कहीं निशान भी नहीं था। मैंने कहा ऐसे ही बकवास करते हैं तूफान की गंध इन्हें कहां से आ गई। शर्मा कहने लगे जिस राह का पता न हो उसकी बात भी नहीं करनी चाहिए। तुम्हें इन चीनी समुद्रों का ज्ञान नहीं। यह जो पुस्तक मैने पढ़कर समाप्त की है इसमें चीनी समुद्रों के तूफानों की थोड़ी सी चर्चा है। इन तूफानों को चीनी लोग 'टाईफून' कहते हैं। शायद हमारा हिन्दी शब्द 'तूफान नहीं नहीं उर्दू शब्द तूफान-इस टाईफून, शब्द से ही बना है। ईश्वर बचावे टाईफून से। टाईफूनों से हवा जहाजों को खिलौनों की तरह उठाकर पटकती है। और यदि तट पर आ जाए तो छोटी नौकाओं का तो

पता ही नहीं चलता। बड़े जहाज़ों तथा मोटरबोटों को यह हवा समुद्र की लहरों पर उठाकर दो-दो तीन-तीन सौ गज़ परे सूखी जमीन पर उठाकर पटक देती है। मैंने कहा 'बस करो, यूं ही मत डराओ।

यह बातें चल ही रही थी कि पीछे से एक अन्य जहाज आया तथा हमारे पास से गुज़र चला। उसके मल्लाह तथा कप्तान बहुत तेजी से हमारे जहाज़ वालों को संकेत कर रहे थे कि 'जल्दी करो' भागो। हमारे मल्लाहों ने हाथों से इशारा करके पूछा कि कुछ बताओ तो सही। कप्तान ने मुख से लाऊड-स्पीकर लगाकर कुछ पूछा। पर उनके पास उत्तर देने का समय ही नहीं था। चीनी कपतान हमारे मल्लाहों को ज़ोर-ज़ोर से अपने स्थान से आदेश दे रहा था तथा मल्लाह तेज दौड़-दौड़ कर जहाज़ के सारे सामान को उठा-उठाकर नीचे जहाज में फेंक रहे थे जो भी उठाया जा सकता था उसे उठा रहे थे जो नहीं उठाया जा सकता था उसे ऊपर ही रस्सों से तारों के साथ जकड़ रहे थे। हमारा जहाज़ भी कुछ तेज़ हो गया, पर पुरानी हड्डियों में शक्ति कौन भर सकता है। धुंएंदानी के काले धुंएं से पता लगता था कि भट्ठी में आवश्यकता से अधिक कोयला डाला जा रहा है। पर इन्जन की गति में कोई बहुत अधिक वृद्धि नहीं की जा सकी। दौड़ जा रहे अंग्रेज इंजीनियर से इस बात की पुष्टि हो गयी कि टाईफून आ रहा है और बचना भाग्य के हाथ है या इंजन के। यदि तेज़ रफ्तार करके किसी किनारे जा लगे तो बचाव का कोई उपाय हो सकता है और यदि समुद्र में ही काबू आ गए तो ईश्वर ही सहायक है।

भूगोल के अध्यापकों ने टाईफून शब्द पढ़ा होगा, पर टाईफून क्या होता है किसी विरले को ही इसका पता होता है। पंजाब प्रदेश में जब जेठ (का महीना) तपने लगता है तो लू के वात्याचक्र उठने लगते हैं। फसल काटते हुए किसान, जहां तक वश चले इसकी ओर दृष्टि नहीं उठाते। लोगों का विचार है कि जो भी इसे देखेगा उसी पर यह 'भूत' आक्रमण करेगा। वात्याचक्रों को भूत प्रेतों की तरह सजीव समझा जाता है और यदि मामूली सा वात्याचक्र काटकर रखी हुई फसल में से गुज़र जाये तो खेत के गेहूं को बिखरा कर तिनका तिनका कर देता है। देखने वालों ने यह भी देखा होगा कि वात्याचक्र गोल-गोल घूम रहा होता है और गर्द का एक स्तम्भ सा जिसकी ऊपर की चोटी धूनी की तरह आसमान में खड़ी होती है तथा निचला धड़ मशीन के पहिये की तरह गोल-गोल घूम रहा होता है। बस यह टाईफून का एक अत्यंत छोटा सा नमूना होता है। यह वात्याचक्र दस बारह गज़ गोल होता है या थोड़ा कम या अधिक। परन्तु चीन के किनारे टाईफून सौ-सौ, दो-दो सौ, मील के घेरे वाले होते

हैं। छोटे-छोटे टाईफून भी समुद्र के पानी को घुमाकर उठाकर आसमान के साथ लगा देते हैं। परन्तु बड़े टाईफून बहुत क्रूर होते हैं, सैंकडों नौकायें, कई-कई जहाज तथा तटवर्ती अनेकों मकान इसका शिकार हो जाते हैं। ऐसे समय किनारे के निकट वाले जहाज किनारे की ओर दौड़ते हैं और यदि किनारा निकट न हो तो समुद्र में उस ओर दौड़ने का प्रयास करते हैं जो टाईफून की मार से और उसके मार्ग से बाहर हो। हमारे जहाज के पास सूचना पहुंचने का कोई साधन नहीं था। शायद चीनी कप्तान के कमरे में बैरोमीटर हो। हमें पता चला कि फार्मूसा द्वीप पीछे रह गया है तथा हांगकांग उतनी दूर आगे है। व्यापारी लोग सामान का तो बीमा करवा देते हैं पर मेरा तथा यह शर्मा का तो बीमा भी नहीं हुआ था। शर्मा कहने लगा 'मैंने तुम्हें कहा था न कि इस जहाज में हमने नहीं चढ़ना। तुम मेरे कहने पर नहीं चले, अब मरो कुत्ते की मौत।'

सूरज डूब रहा था तथा पूर्व और दक्षिण की सन्धि में से हमें अंधेरा सा उठता दिखाई दे रहा था। पंजाब के आषाढ़ महीने की काली आंधी इसकी तुलना में मात्र एक खेल होती है। अफ्रीका की समूम एक बहते तंदूर की तरह होती है। पर टाईफून को यदि शैतान तथा भाँति-भांति के तूफानों का मुरब्बा कहा जाये तब भी कुछ कमी रह ही जाती है। हमें पता था कि कुछ आ रहा है, पर क्या होगा और हम क्या करेंगे, जहाज कैसे बचेगा और यदि डूबेगा तो हम किधर जायेंगे, हमें बिल्कुल ही कुछ सूझता न था जिधर से चंद्रोदय होना था उधर से हो मौत के संकेत आ रहे थे। हमारे भय तथा आतंक को और तीखा करने के लिये ऊपर से रात हो गई काली अंधेरी रात। आज आसमान में इक्का-दुक्का बादल भी थे और हमारे पिछली ओर एक बड़ा अंधेरा सा ऊपर आसमान की ओर उठ रहा था। रोटी किसने खानी थी तथा नींद किसे आनी थी। आधी रात हुई तो हवा के धीमे से झोंके आने लगे। समुद्र पहले की अपेक्षा अशांत हो गया। जहाज के ऊपर बैठने का समय नहीं था तथा कोठरी में फंसे हुए चूहों की तरह मरने को भी मन नहीं मानता था। दोनों बैठे सोच रहे थे कि क्या करें और इस भवसागर से कैसे पार उतरें। हमारा साथी बुलडॉग भी कैबिन के दर-वाजे के सहारे मौत से सहमा हुआ हमारी तरह प्रकृति के फंदे में फंसा हुआ बैठा सोच रहा था। वह शायद अपनी विपति की जिम्मेवारी हम पर डाल रहा होगा। न हम इस राह चलते और न उसे हमारा पीछा करना पड़ता और न इस तरह प्राणों को दाव पर लगाना पड़ता। हवा तेज हो रही थी और उधर दिन भी समीप आ रहा था। जहाज डोलने लगा तथा हमारा चलना-फिरना तो क्या उठकर दूसरे स्थान पर होना भी दूभर गया। प्रात: जब चार बजे का समय हुआ तो शर्मा ऊपर खाट से मेरे ऊपर

आ गिरा। बुलडॉग मुंह के बल गिर कर लुढ़क कर कमरे से परे जा गिरा था। हमें ऐसे प्रतीत हुआ जैसे जहाज़ को किसी ने उठा कर फेंक दिया हो। शर्मा को ईश्वर याद आने लगा और अभी दूसरा 'राम' मुंह में हा था कि हमारे कैबिन में पानी आ घुसा और सब कुछ बुरी तरह से गीला हो गया। हवा के कारण जहाज़ के चारों ओर 'सां सां और चीखों की आवाज़ आ रही थी। समुद्र, 'खाड़ खाड़ कर रहा था। किसी बेचारे मल्लाह की आवाज़ किसी ओर से भी नहीं आ रही थी। सभी अपने-अपने दड़बों में घुस कर मौनी हो गये थे। कोठरी के छिद्र पर मोटे शीशे में से कुछ भी दिखाई नहीं देता था कि अंधेरा रात का है या काले पानी का। एक बार ऐसे लगता था कि जहाज़ नीचे की ओर जा रहा है फिर एकाएक उठता हुआ प्रतीत होता था और फिर ऊपर जाकर एक ऐसा धक्का पड़ता था कि जहाज़ में जो वस्तुयें खुली या ढीली रह गई थीं, सभी खड़खड़ाने लगती थीं और हम कोठरी में सीधे बैठ भी नहीं सकते थे। अंधेरी रात, हवा की भूतों प्रेतों की सी आवाज़े पत्थरों की तरह वर्षा की बूंदों का गिरना, समुद्र की लहरों की जहाज़ पर गिरने की आवाज़ों का सुनाई देना, इस प्रकार के संकट के भंयकर उत्पात को यह मामूली सा जहाज़ कैसे झेल सकता था, और यदि झेले भी तो कितनी देर तक। जहाज़ की बिजली पहले भी कोई अधिक तेज़ नहीं थी पर प्रकाश तो था। अब तो बिजली भी बुझ गई थी और एक दूसरे के कोहरे भी दिखाई नही देते थे। इतने में एक ऐसी लहर आई कि हमारी (कैबिन) में और कैबिन के ऊपर जाने वाली सीढ़ियों में कमर तक पानी आ घुसा। शर्मा को मैंने यह कहते सुना कि जहाज़ डूब रहा है। बाहर निकले तो मेरे समीप से शर्मा पानी में टोह लेता हुआ बाहर निकलता प्रतीत हुआ जब मैंने उसे पुकारा तो शर्मा वहां नहीं था। 'शर्मा शर्मा जी,' मै पानी में खड़ा था। हमारे बैग तथा बिस्तरे पानी में तैर रहे थे। मुझे तुरन्त ख्याल आया कि नोटों की बांसली कहां है। कमर को छुआ तो याद आया कि आज प्रातः जब मैं स्नान करने गया था तो उसे शर्मा को संभालने के लिए थमा गया था। बुल-डॉग का पता किया, वह भी वहां नहीं था। गिरता पड़ता केबिन से बाहर निकला तो न वहाँ शर्मा था और न ही बुलडॉग। जब सीढ़ी के समीप पहुंचा तो जहाज इस तरह से उछला कि मेरा सिर सीढ़ी से जा टकराया तथा मैं पानी में गिर गया। नमकीन पानी के दो-एक घूंट ही अन्दर गए थे कि मुझे होश आ गयी। भौंचक्का मैं पुनः खड़ा हो गया तथा सीढ़ी को दृढ़ता से पकड़ लिया। आधे-आधे मिनट बाद सीढ़ी की ऊपरी नाली से पानी का रेला सा आता था तो मैं कठिनाई से अपने आपको संभाल पाता था। आखिर इतना पानी बाहर कैसे निकलेगा और जहाज इस पानी से भरकर भला कितनी देर तैरता रहेगा। जब मेरे पैर तथा टांगे बोझ सहारने योग्य हुए तो मैंने मन को दृढ़ करके सीढ़ी पर चढ़ने की तैयारी की। शर्मा को ढूंढना आवश्यक था। आवाजें लगाईं,

पर इस प्रलयंकर शोर में, जो हवा और पानी मिलकर मचा रहे थे, कौन सुन सकता है । मैं अभी सीढ़ी चढ़ने की तैंयारी ही कर रहा था कि मेरे समीप से कोई जाता हुआ प्रतीत हुआ ऊंची आवाज में मैंने पूछा "कौन है ?" मैं हूं 'हरनाम सिंह' इतना सुनने की देर थी कि मैंने बुलडॉग को जोर से भींच लिया । हम दोनों पानी में गिर गये पर गिरते ही बैठ गये । पानी हमारे कन्धों तक था । मेरे मन में था कि यदि मरना ही है तो पहले इसे मार कर मरूं नहीं तो यह शर्मा की हत्या करके धन का स्वामी बन बैठेगा । मैंने पूछा 'शर्मा जी कहां हैं ।' वह बोला 'मुझे पता नहीं' केबिन में ही होगा । तरह-तरह के विचारों का रेला दिल को धकेल कर दिमाग को बावला बनाने लग पड़ा । मैंने सोचा कि यदि शर्मा को कुछ हुआ है तो उसी आधे घण्टे में ही हुआ है जो हो चुका है वह अब हुआ नहीं हो सकता पर यदि शर्मा अभी है तो बुलडॉग को अलग नहीं होने देना । मैं उससे चिपका हुआ था । न मैंने उसे छोड़ा और न ही उसने मेरे हाथों से छूटने की कोशिश की । जब तूफान आया तब दिन निकलने में दो घण्टे रहते थे पर यह दो घण्टे ही पहाड़ बन गए । मामूली सी पोहफटने जैसी लगती थी या शायद भ्रम ही था कि एक ऐसा 'खड़ाक्' हुआ जैसे जहाज के ऊपर कोई भारी वस्तु गिर पड़ी हो तथा हमारी सीढ़ी का शिखर भाग जो बहुत ऊंचे खड़ा था, टूट गया और हमारे ऊपर आकर गिरा । बुलडॉग के सिर से एक लोहे का खम्भा लगा । मैं बच गया । बुलडॉग बेहोश हो गया तो मुझे लगा कि अब इसे थामे रखने की आवश्यता नहीं । पहले पानी की कुछ रुकावट थी, पर अब चारों ओर से समुद्र की प्रत्येक लहर के साथ पानी जहाज में आने लगा । जहाज के गिरने-टूटने में अब कोई ओट नहीं रही । दीख रहा था कि अब जहाज का बच सकना असंभव है । अब सीधे मृत्यु की प्रतीक्षा होने लग पड़ी कि कब जहाज डूबे और छुटकारा हो । इन आशांकाओं में बैठा था कि दिन निकल आया तथा प्रकाश हो गया ।

सूर्योदय होने में एक ऐसा जादू है कि मृत्यु के किनारे खड़ा व्यक्ति भी कहता है कि दिन निकल आया । पहले अंधेरे में कुछ दिखाई नहीं देता था अब दिखाई देने लगा । जहाज कभी लहरों के मध्य में खाई में गिर पड़ता था और लगता था कि अब ऊपर से पानी गिर कर दबा लेगा तथा कभी ऊंचा उठकर लड़खड़ाता सा था और चारों ओर पानी के पहाड़ तथा झाग दिखाई देते थे । आधा घण्टा और बीता तो हवा बिल्कुल ही बन्द सी हो गई । हिलोरे अब भी थीं पर हवा नाम मात्र नहीं थी । मेरे मन ने कहा कि बच गए । मैं हिम्मत कर सीढ़ी पर चढ़ा और लगा शर्मा जी को ढूंढने जहाज का जंगला जगह-जगह से टूट चुका था । छत पानी से धोई हुई तथा बुहारी हुई प्रतीत होती थी, जैसे कोई झाड़ू फेर कर गया हो । जहाज का एक मस्तूल, हमारी ओर की

सीढ़ी की बुर्जी पर टूट कर गिर गया था। किसी एक सहारे को पकड़ कर बैठ जाता था। जब थोड़ा सुस्ता लेता था तो झपट कर दूसरी चीज को जा पकड़ता। जब बिल्कुल आशा समाप्त हो गयी तभी दूर से देखा कि जहाज के अग्रभाग की ओर जो लंगर उठाने तथा गिराने वाला चरखा होता है, शर्मा उसके तले तिरपाल तथा रस्सों में फंसा हुआ पड़ा है। कैसे हो सकता है कि वह जीवित हो। इतने जोर के पानी तथा लहरों में जो लकड़ी की छत को तोड़ दे, भला हाड़मांस का शरीर कैसे बच सकता है? मुझे होश नहीं था कि मैंने क्या किया, पर पहली बात तो मुझे प्रतीत हुई वह यह थी कि उसकी कमर में नोटों की बांसली ('बुगची) नहीं थी।

—0—

छटा अध्याय

टाईकून

मैंने शर्मा को खींच खांच कर निकाला उसमें प्राण से नहीं लगते थे पर मृत्यु के चिह्न भी अभी प्रकट नहीं हुए थे। उठाने की मुझ में शक्ति कहां थी। एक तो मैं तख्तों पर घिसटता था, साथ ही उसे भी घसीट लेता था। रुपये के गुम हो जाने ने और भी पागल सा बना दिया था। मेरे मन में अब यह था कि चाहे शर्मा मरे चाहे जीवित रहे बुलडॉग का गला जरूर भींच दूं। उधेड़ बुन में मैं अपनी सीढ़ी के मस्तूल के पास पहुंचा ही था कि एकाएक हवा फिर तेज़ हो गई तथा पांच मिनटों में ही पहले जैसा ही हाल हो गया। शर्मा को मैंने उसका कमीज़ फाड़ कर मस्तूल के साथ अटका दिया ताकि पानी की हिलोरें उसे लुढ़का कर न ले जायें। इस शान्ति के आधे घण्टे में एक दो मल्लाह आये। आकर सारी स्थिति देखकर चले गया तथा छत पर फिर सुनसान सी हो गयी। चाहे दिन का समय था। पर वर्षा आंधी तथा बादलों ने अधिक रोशनी नहीं रहने दी। मैं भी हिलोरों से डरता मस्तूल की ओर में टेढ़ा हो गया। मन में एक बात यह आई कि बुलडॉग को बाहर घसीट कर ला रखूं। हिलोरें स्वयं ही लुढ़का कर ले जायेंगी। दूसरा ख्याल यह आया था कि यदि रुपया मिल जाये तो प्राण क्यों लेने हैं। हवा पहले दक्षिण तथा पूर्व की ओर से थी अब सीधे पश्चिम की ओर से आने लग पड़ी। पहले हिलोरों का रुख हमारी सीढ़ी की ओर सीधा था अब दूसरी ओर हो गया। पर मुझे और शर्मा को बह जाने का बड़ा डर था। थोड़ा सा सुस्ता कर मैंने शर्मा को मस्तूल से खोला तथा सीढ़ियों के शिखर से छोड़ दिया। वह शव की तरह लुढ़कता हुआ, नीचे पानी में आ गिरा। पानी अब कम हो गया था। मैं भी नीचे उतर गया। मेरे नीचे उतरते ही तूफान अपनी पहले तेज़ी से भी कहीं अधिक भयंकर हो गया। शर्मा जी को तो मैंने संभाल लिया, पर जब मैंने देखा कि बुलडॉग वहां नहीं है तो मेरी परेशानी मेरे लिये जंजाल बन गयी। बुलडॉग का मेरी आंखों से

ओझल रहना बड़ा कष्ट का कारण था। जब तक वह ओझल है कोई न कोई शैतानी कर रहा होगा, हमारे धन को छिपाने की कोशिश करता होगा। बड़ी विवशता की स्थिति थी। ऊपर जाकर शर्मा को खींच कर लाने में शरीर निशक्त हो गया था तथा रूपये के गुम हो जाने ने मेरी रही सही मनशक्ति भी तोड़ दी थी। शर्मा के मुंह में डालने के लिये पानी भी नहीं था, आश्चर्य यही था कि वह अब तक मरा क्यों नहीं। दोपहर तक यही स्थिति रही तथा तीसरे पहर जाकर कभी-कभी सूर्य दिखाई देने लगा था तथा हवा धीमी होने लगी। सायं काल राम राम करते कुछ आशा सी बंधी कि जहाज़ भी बच गया है और हम भी बच गये हैं। सूर्य के अस्त होते समय तक इंजन की धक् धक् पुन: सुनाई देने लगी। मालूम होता है कि कपतान ने इंजन को बन्द करने का आदेश तो नहीं दिया, बल्कि आदेश तो यह था कि कुछ हो इंञ्जन चलता रहे तथा जहाज़ की दिशा सीधी वायु के विपरीत रखी जाये। पर प्राण सभी को प्रिय होते हैं, इंज्जन चलाने वाले तथा कोयला झोंकने वाले भी तो आखिर मनुष्य ही थे कि जब कोयला झोंकना रह गया तो कुछ घण्टे बाद इंज्जन स्वयं बन्द हो गया। हवा जहाज़ को पहले से हांगकांग के सामने से आगे ले गई और फिर घुमाकर द्वीप से लगभग सौ मील दूर समुद्र में धकेल कर ले गई। पर जान बची लाखों पाये, हांग-कांग क्या कहीं दौड़ा जा रहा था। सभी ने मुख की सांस ली इस प्रकार भयंकर तूफान में से सही सलामत बच गये हैं। सोये और पानी की घूंट पिये तीस घण्टे बीत गये थे। तन्द्रा भी आती थी और पानी की घूंट के लिये भी मन तरस रहा था। पर यह पता होते भी कि पानी की कुप्पी केबिन में होगी, उसे उठा लाने की हिम्मत नहीं थी। न बुलडॉग ही किसी ओर से आया और न शर्मा ने ही आंखें उघेड़ी दिन निकलने पर पता चला कि शर्मा के सिर में एक घाव है जो कि गिरने से या किसी भारी वस्तु के लगने से हुआ है। शर्मा की बेहोशी के कारण का तो पता चल गया पर रुपये का कुछ पता न लगा दो तीन बार गीले कपड़े तथा बैग आदि टटोले पर नोटों का कहीं कोई नाम निशान तक न मिला।

अभी आठ नहीं बजे थे तथा समुद्र गत दिन के तूफान से क्षुब्ध हुआ अब भी काफी हिलोरे दे रहा था। जहाज़ के मल्लाह भी बाहर आ कर टूटी फूटी वस्तुओं को संभालने में लग गये थे कि इतने में गोली की आवाज़ आई। क्षणभर के बाद दो और गोलियां चलीं तथा इंजन बन्द हो गया। सारे मल्लाह बाहर निकले तथा हैरान से थे कि गोली कौन चला रहा है। एक ख्याल आया कि कोई एमडन जैसा जर्मन जहाज और आ पहुंचा है। देखने से पता चला कि छोटी तोप से तीनों धमाकें करने वाला अजीब सा हमारे जैसा ही जहाज है। जहाज़ समीप आया तो चिह्नों से चला कि यह कोई चीनी लुटेरा (जहाज) है तो इन समुद्रों में अब भी लूट मार करते रहते है। एक विपत्ति

में से अभी निकले नहीं थे कि दूसरी ओर ने आ घेरा। उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्व भाग में समुद्री डाकू बहुत होते थे। बल्कि अंग्रेजों ने जो समुद्री शक्ति प्राप्त की थी वह इन्हीं दुस्साहसी डाकुओं के बल पर प्राप्त की थी। पर जब अंग्रेज स्वयं शक्तिशाली हो गये तथा अन्य समुद्री शक्तियां समुद्र में स्वतन्त्र रूप से आने लगीं तो समुद्री डकैती के विरुद्ध बीड़ा उठाया तथा यह कानून सा बन गया कि जो भी जहाज़ किसी देश के झण्डे के बिना चलता हो तो उसके सारे व्यक्ति गिरफतार कर लिए जायें, जहाज़ डुबा दिया जाये तथा उन व्यक्तियों को फांसी लगा दिया जाये। अन्य सब जगह समुद्री डकैती बन्द हो गई पर एशिया के चीनी भाग में तथा अफरीका के अरब के समीप के पानियों में इसके निशान रह गये। चीन, इण्डोनेशिया तथा आस्ट्रेलिया के पानियों में इतने द्वीप हैं कि लुटेरों को छिपने के लिये बहुत स्थान मिल जाते हैं।

हमारा जहाज़ रुक गया। कप्तान के हाथों के तोते उड़ गये। डाकू जहाज़ की एक नौका सशक्त हृष्ठ-पुष्ठ चीनियों से भरी हुई हमारे जहाज़ की ओर आई तथा क्षणों में ही यह हमारे जहाज पर चढ़ आये। कप्तान तथा उसके साथी पंक्तिबद्ध खड़े हो गये। डाकू जहाज़ की तोप हमारी ओर निशाना बांधे हुए थी। पन्द्रह डाकू तरह-तरह की बन्दूकें लिए हुए घेर कर खड़े हो गये। हमारे कप्तान ने जहाज़ की सारी तालियाँ तथा कागज पत्र उनके हवाले कर दिये जिससे उन्हें कुछ निराशा सी हुई। माल तथा सामान के रूप में जापानी खिलौने तथा बिजली का कुछ सामान था। बड़ी मुश्किल से दस बारह गठरियां रेशम की थीं जो उन्होंने हथिया लीं। न तो काम का हथियार ही जहाज़ में था और न ही लूटने के लिए अधिक यात्री। हम तीन भारतीय थे जिनमें से एक बेहोश पड़ा था। हम दोनों को उन्होंने लेटा लिया तथा हाथों पर तख्तें रखकर ऊपर चार व्यक्ति चढ़ कर बैठ गये। हमसे एक तो पहले से ही अधमरे पड़े थे ऊपर से यह यातना शुरू हो गई। संभव था कि यदि मुझे ग्यारह हज़ार डालरों तथा खरीदे हुए जापानी पैनों (जापानी मुद्रा) का पता होता तो मैं बता देता। मुझे तो यह ख्याल था कि बुलडॉग ने रूपया उड़ाया है। डाकू इससे निकलवा लेंगे। बुलडॉग तो मुझसे भी पहले बेहोश होने लगा। हम जब बेहोश हो जाते तो वह हमें पानी के छीटें मारकर होश में ले आते तथा पुनः हम पर चढ़ बैठते थे। पर यह काम अधिक देर नहीं चल सकता था और न ही इसमें कोई बुद्धिमता थी। हमारी केबिन की उन्होंने तलाशी ले ली। हमारे बैगों में से या जेबों से जो फुटकल रूपया था वह उन्होंने अपने अधिकार में कर लिया तथा लगभग दो घण्टे हमें रोक कर हमारे खाने-पीने की कुछ सामग्री भी ले गये और हमारी जान छोड़कर चलते बने।

अंग्रेजी द्वीप हांग कांग के सामने सौ मील पर इस तरह का डाका अंग्रेजों के लिए

बदनामी थी पर युद्ध के दिन थे। अंग्रेज व्यस्त थे अतः उनका पीछा कौन करता। हमारा पीछा तो छूट गया पर हममें से हिलने जुलने की शक्ति किसी में भी नहीं थी, न ही जहाज़ पर कोई डाक्टर था जो शर्मा का इलाज करता। सारा दिन हम बीमारों की तरह पड़े रहे। हमारे चीनी रसोइये ने कुछ सहारा दिया। शर्मा को गर्मागर्म चाय तथा हमें कुछ शोरबा आदि बना कर दिया। जहाज़ का बुरा हाल था, मस्तूल टूट चुका था, रफ्तार आधी रह गई थी। बहुत रात बीतने पर हमें हाँगकाग की बत्तियां दिखाई दीं, हमने शुक्र की सांस ली कि हम धरती का मुंह देख रहे हैं। पर मुझे तो रूपये का गम खाये जा रहा था। हानि तो हुई ही, साथ ही जीवन भर के लिए कलंक का टीका लग जायेगा कि हमने रूपया हड़प लिया। लगभग आधी रात हुई तो मैं डरा तथा केबिन में जाकर सब कुछ पुनः खोल खोज कर देखा। बुलडॉग के बैग को अच्छी तरह से देखा तथा पासपोर्ट आदि काबू कर लिये पर नोटों का कहीं पता न चला। आखिर यह विचार आया कि शर्मा को किसी तरह होश में लाया जाये, नहीं तो मामला यहीं चौपट हो जायेगा क्योंकि दिन निकलने पर तो जहाज़ से उतर ही जाना है। शर्मा के पैरों की मालिश की, सिर को तेल लगाया, गर्म गर्म सूप (शोरबा) मुंह में डाला, पर सवेर तक कुछ न बना। दूसरी प्रातः जहाज़ हांगकांग की खाड़ी में जाकर खड़ा हो गया। सामान उतारने के लिए नौकायें आ पहुंची और हमारी साथी बुलडॉग भी उतरने के लिये तैयार हो गया। जहाज़ वालों को कह कर मैं तट से डाक्टर बुलाने की तैयारी में था कि याद आ गया कि मेरे पास तो देने के लिए छोटा सिक्का भी नहीं है। अजीब परेशानी की हालत में था कि सौभाग्य से स्वयं ही शर्मा की आंखें खुलीं (होश आ गया)। दो एक घण्टों में सारी बात का पता लग गया। शर्मा ने बताया कि सीढ़ियों के पास जो सामान नीचे फेंकने की मोरी है उसके ऊपर तरपाल देकर, किनारों पर लोहे की पत्तियां फंसा कर बद किया हुआ है। उस तरपाल में सीढ़ी के सामने ही एक अन्य कपड़े में बांधकर नोट छिपाए हुए थे। तरपाल सभी ओर से खोली जा चुकी थी नीचे हवा लगाने के लिए, केवल जहाँ मस्तूल गिरा था वहां बंधी थी। संयोग की बात है कि नोट उसी स्थान पर तरपाल के पल्लू के नीचे मामूली सी सीलन से प्रभावित सुरक्षित पड़े थे। मेरी प्रसन्नता की कोई सीमा न रही, मुझे मेरे सारे दुख भूल गए। मैं शर्मा को एक कुर्सी पर बैठाकर सही सलामत हांगकांग द्वीप पर उत्तर गया। बुलडॉग के साथ शत्रुता करने को जी तो नहीं चाहता था, पर यह देखकर कि इसने फिर हमारा पीछा करना है मैंने बन्दरगाह की पुलिस को सूचित कर दिया कि अमुक व्यक्ति के पास, जो मालवाही जहाज का यात्री था पासपोर्ट आदि नहीं है तथा लगता है कि वह जर्मन जासूस है। बुलडॉग को बन्दी तो मेरे समाने ही बना लिया गया था पर यह पता नहीं चला कि वह किस प्रकार और कब छूट कर आ गया।

सातवां अध्याय

हांगकांग

जैसे अमृतसर निवासी को लाहौर देखकर लगता है कि लाहौर कुछ अन्य रंग का शहर है उसी तरह हांगकांग में प्रवेश करते ही हमें हवा भी अन्य ही प्रकार की प्रतीत हुई। बड़े-बड़े मालवाही जहाज सभी पंक्तियों में खड़े, नौकायें चलाने वाले सारे चीनी साफ, स्वस्थ, नौकाओं में सफेद गद्दे, किनारे के पुल, दफ्तर, मुसाफिरखाने, ऊंचे हवादार रंगेपुते, दूर पहाड़ियों पर आवास-निवास, चौड़ी साफ-सुथरी सड़कें तथा मोटरों के यातायात की चहल-पहल पहले से भरपूर थी तथा सामने बरतानवी झंडा लहरा रहा था। कुछ भी हो अंग्रेजों को स्थान और व्यक्तियों को साफ सुथरा रखना तथा काम में लगाना आता है। फ्रांस, जर्मनी, पुर्तगाल आदि अन्य यूरोपवासियों ने भी बस्तियां बसाई है पर जो योजना-बद्धता और परिपक्वता, स्वतन्त्रता तथा ऊंचा रहन-सहन अंग्रेजों द्वारा अधिकृत स्थानों में है अन्य किसी स्थान पर नहीं मिलता। अंग्रेजों को पराये देश तथा पराये स्थान हथियाने की लालसा अवश्य है। पर जब एक स्थान इन्होंने अधिकार में कर लिया तो उसको सुन्दर बनाकर रखना तथा लोगों के लिए कारोबार के साधन बढ़ाना तथा जीवनस्तर को ऊंचा उठाने के इनके ढंग अनुकरणीय हैं।

सन् अठारह सौ बयालीस में यह स्थान एक सूना निर्जन, चीन देश का एक ओर को बढ़ा सा खण्ड था, जिसके समीप अनेक छोटे-छोटे ऊंचे-ऊंचे से द्वीप थे। हांगकांग तथा शंघाई दो ही बड़े अंग्रेजी व्यवस्था तथा अंग्रेजी रंगढंग के शहर थे। चाहे छोटे-छोटे अन्य शहर भी थे परन्तु जो रोचक तथा रंगीनी, यातायात, व्यापारिक गहमा-गहमी इन दो शहरों में थी अन्यत्र कहीं भी नहीं थी। आज शंघाई कम्युनिस्ट प्रबंध में आ चुका है तथा इसकी अंग्रेजों के समय वाली रौनक, व्यापार तथा व्यवसाय इसे छोड़कर हांगकांग में आ जुटे हैं। आज तो बेशुमार चीनी धनिक हांगकाँग में भूमि खरीद कर बड़े-बड़े आवासीय तथा व्यवसायिक भवन बनवा रहे हैं सम्पत्ति का मूल्य भी

कई गुना बढ़ गया है तथा जनसंख्या भी दस लाख से अधिक हो गयी है। हांगकांग द्वीप पर आजकल गरीब व्यक्ति का रहना कठिन है क्यों कि कम्युनिस्ट लहर से डर कर भागे हुए चीनी यहां आकर अपने घरबार बना रहे हैं। हांगकाँग को पिछली और आजकल की उन्नति के कई बड़े कारण हैं। एक तो यह शहर समुद्र, से घिरा हुआ, अच्छे जलवायु वाला है। सर्दी और गर्मी दोनों ऋतुओं में यह चीन की अपेक्षा कम सर्द एवं कम गर्म है। हांगकांग में सभी के लिए रहने, कारोबार करने, सम्पत्ति खरीदने और बेचने तथा आने जाने की स्वतन्त्रता है। हर साल मौसम के अनुसार लाखों चीनी यहां आते हैं तथा जब मन किया लौट जाते हैं। बन्दरगाह सभी देशों के जहाजों के लिए खुला है तथा इतना विशाल और सुविधाओं से सम्पन्न है कि आवश्यकता पड़ने पर सैकड़ों जहाज यहां खुले विचरण कर सकते हैं? सुदूर पूर्व में आने जाने वाला कोई व्यापारिक या यात्री जहाज जो हांगकांग नहीं आएगा, समझिए कि उसने आधा चीन नही देखा। अग्रेजो की हुकूमत मुगलों की तरह सकीर्ण हृदय तथा बेबात का आतंक फैलाने वाली हुकूमत नहीं है। हांगकाग में धनाढ्य पूंजीपति तथा व्यापारी चीनी भी आते हैं। पर अग्रेजी व्यवस्था मे चीनी भिखारियो तथा चीन के साथ चोरी छिपे विवर्जित वस्तुओं का व्यापार करने वाले चीनियों को भी यहां रहने आदि की स्वतन्त्रता है। आजकल यह शहर चीन के तथा विशेष कर दक्षिणी चीन के साथ व्यापार का बड़ा केन्द्र है। बड़े-बड़े जहाजों में माल यहां आकर उतरता है तथा यहां से पुनः छोटे जहाजो तथा नौकाओं मे बंट जाता है।

जिन दिनों मैं और शर्मा यहां पहुंचे थे, वहां आजकल इतनी भीड़ तथा रौनक नहीं थी फिर भी हांगकांग दर्शनीय था। हांगकांग में अमीरों के भवन, सिनेमाहाल, नृत्यशालाये तथा व्यापारिक कार्यक्रम आदि देखने योग्य थे। सारा दिन व्यक्ति खुली सड़कों, पहाड़ियों में से निकाली हुई ऊंची-नीची तथा समतल सड़कों, हरे-भरे झूमते हुए वृक्षों के नीचे से समुद्र, की सैर करता अघाता नहीं था। हांगकांग के यूरोपीय निवासियों, यूरोपीय रंगढंग, खुले स्थानों, हरे-भरे मैदानों तथा प्रफुल्लित वृक्षों ने समृद्ध करके पूर्व और पश्चिम के सम्मिश्रण का बढ़िया मनोरम आकर्षण उत्पन्न कर दिया है। सड़कों पर यूरोपीय बच्चे चीनी सेविकाओं की देखरेख में स्कूलों को जाते दिखाई देते हैं। यूरोपीय स्वामियों के साथ काम करने वाले अनेकों चीनी, कोई रसोइया कोई दफ्तरी, कोई बैरा तथा कोई अन्य बाहरी काम करने वाला, आम मिल जाते हैं। यहाँ के चीनियों ने भी विशेषतः जो समृद्ध है, यूरोपीय रहन सहन अपनाया हुआ है। आजकल तो कई बार दूर से पहचान भी कठिनाई से ही होती है, जब तक चेहरे के चिह्न आदि न देख लिए जाएं।

पर सबसे अधिक देखने योग्य हांगकांग का वह इलाका है, जहां शुद्ध चीनी निवास करते हैं चीनियों को समझने के लिए तथा इनकी सभ्यता के रंगों को देखकर रसास्वाद के लिए यह आवश्यक है कि चीनी इतिहास का स्थूल सा परिचय पा लिया जाये।

आंकड़ों के जानकार बताते हैं कि चीन में सारी पृथ्वी के निवासियों का पांचवां हिस्सा निवास करता है तथा इस देश के बड़े-बड़े हिस्से, तिब्बत, मंचूरिया, मंगोलिया एवं तटवर्ती पश्चिमी व्यक्तियों द्वारा बसाये गए बन्दरगाहों तथा नगरों को अलग करके भी रख दिया जाए तब भी चीन भारत से बड़ा देश रह जाता है। दो हजार वर्षों से पश्चिमी शक्तियाँ तथा हमारे युग की जापानी शक्ति इसको खण्ड-खण्ड करने पर तुले हुए हैं पर इस बड़े दैत्याकार देश का कुछ भी नहीं बिगड़ा। चीन एक ऐसा जटिल देश है कि इसे समझना तथा समझकर दो-चार पुस्तकों द्वारा इसका वर्णन-विश्लेषण कर देना असंभव ही नहीं अपितु नसमझदारी तथा मूर्खता हैं। चीनी धर्म, चीनी दर्शन, चीनी लोग तथा चीनी सभ्यता का प्राचीन इतिहास इतना उलझनों भरा है कि इसकी कोई भी प्रतिमा पूर्ण नहीं हो सकती। चीनियों के बारे में एक ही बात सच्ची हो सकती है कि देखे ही बनता है। चीनी संस्कृति का वर्णन करते हुए ऐसे लगता है कि जैसे हिमालय पर्वत को खोदने लगे हैं। भारत के स्कूलों में पढ़ाया जाता है कि भारत का इतिहास अभी अंधेरे में ही था जब चीनी यात्री फाहियान तथा ह्यूनसाँग यहाँ आए तथा भारत को देखकर गए। पश्चिमी लोग अभी पशुओं की तरह विचरण करते थे जब चीनी सभ्यता का प्रकाश सारे एशिया में फैला हुआ था। चीनियों का धर्म कहने को तो बौद्ध कहलाता है पर इसकी वास्तविकता इतिहास के अतीत में छिपी हुई है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि बुद्ध मत का चीनियों पर बहुत प्रभाव है, पर यह कहना ठीक नहीं कि चीन निवासी बौद्ध हैं। इनका मत अधिकांश में कनफ्यूशियस के दर्शन से सम्बद्ध है, पितृ-पूजा प्रधान है। चीनी चाहे ईसाई हो जावे, चाहे मुसलमान हो जावे अपने पूर्वजों को पूजना, याद करना उनके दिन मनाना इसका आदर्श है। मंगोलिया में अधिकांश चीनी मुसलमान हैं, पर इस प्रकार के नहीं कि उनके एक हाथ में तस्बीह तथा दूसरे में छुरा हो। पितृ-पूजा का बड़ा परिणाम यह है कि जिस प्रकार हिन्दू मत में पुत्र के बिना गति नहीं समझी जाती उसी प्रकार जिस चीनी के पुत्र नहीं वह अपने आपको भटकता हुआ सा महसूस करता है। इसीलिए चीनियों में सन्तान पैदा करना आवश्यक है। कुवांरा चीनी मिलना बड़ा दुर्लभ है। अतएव यदि चीन में पचास साठ वर्ष सुखशान्ति के बीत जायें तो जनसंख्या बड़ी तेजी से बढ़ती है। प्रत्येक गरीब से गरीब चीनी के घर अपने पितरों को प्रणाम करने के लिए या दीप-स्थापन के लिए एक आला या कोना आवश्यक होगा। चीनी मन्दिरों में मूर्ति पूजा भी होती है जिसकी एक

विधि यह है कि छपे हुए कागजों को मूर्ति के सामने जाकर प्रज्वलित किया जाता है। कोई भी चीनी ऐसा नहीं मिलेगा जो साल में कम से कम एक बार अपने पितरों की समाधियों पर जाकर उन्हें खाने-पीने की सामग्री अर्पित नहीं करता या दीप प्रज्वलित नहीं करता।

परिवार पालन का एक परिणाम यह है कि चीन में हर दूसरे तीसरे वर्ष अकाल अवश्य पड़ता है। चीन में जनसंख्या की वृद्धि के फलस्वरूप अनाज का अकाल ही पड़ा रहता है तथा इस मुसीबत को बढ़ाने के लिये चीन की बड़ी नदी यांगसीहांग हूं आदि लगभग प्रत्येक वर्ष बाढ़ के कारण लाखों वर्ग मील भूमि को जलप्लावित कर देती हैं। लाखों व्यक्ति तथा अनेकों गांवों के गाँव इन बाढ़ों का शिकार हो जाते हैं। चीन में प्रारम्भ से ही दो दलों का मुकाबिला चला आता है। एक ओर वह शहरी व्यक्ति जो कैंटन के इलाके में रहते हैं दूसरी ओर उत्तरी चीन के निवासी मांचू तथा मंगोल। कैंटन निवासी नागरिक हैं व्यावसायिक वृति वाले चालाक तथा चतुर हैं, उत्तरी लोग, हृष्ट पृष्ट शरीर वाले धार्मिक वृत्ति वाले, ग्रामीण तथा साधारण हैं। चीनियों के अजीब अजीब रिवाज़ हैं जो अब धीरे-धीरे बदल रहे हैं। तीस चालीस वर्ष पूर्व अधिकांश चीनी सिर का आगे का आधा हिस्सा मुंडा लेते थे तथा पिछले भाग के केश बढ़ा कर तीन-तीन फुट लम्बी वेणी बांधते थे। धनाढ्य चीनी अपनी समृद्धि का प्रदर्शन करने के लिये अधिक नहीं तो हाथ के एक दो नाखून अवश्य बढ़ाते थे। स्त्रियों को लोहे या लकड़ी के जूते पहनाकर उनके पैरों को बढ़ने से रोकने का प्रयास सर्व साधारण में प्रचलित था। पर जब से चीनी लोग बाहरी देशों में विशेषतः अमेरिका, आस्ट्रेलिया तथा मलाया आदि में जाने लगे हैं यह रिवाज़ बहुत कम हो गये हैं। अफीम खाने की बुरी आदत पहले बहुत थी पर अब कम हो रही है। शराब की लत इतनी नहीं जितनी कोकीन आदि बूटियों की। अफीम का रिवाज़ इतना बढ़ गया था कि यूरोपीय जहाज़ चालक अपनी आय का एक चौथाई भाग चीन में अफीम बेचकर प्राप्त करते थे। बल्कि यूरोपीय जातियों की चीनियों से जब इसी बात पर लड़ाई हुई कि यूरोप के लोग जबर्दस्ती चीनी बन्दरगाहों में अफीम ले आते थे तथा चीनी जनता की अफीम की आदत घटने में नहीं आती थी। सामान्यतः चीनी लोग विदेश में जाकर भी अपने रहन सहन और रीतिरिवाज को बदलते नहीं। चाहे अनपढ़ ही हो चीनी लोग मिलने जुलने के लिये कोई स्थान या कल्ब अवश्य रखते हैं जहां जाकर वह इकट्ठे खाते-पीते तथा गाते-बजाते हैं। व्यवहार में चीनी लोग बड़े साफ तथा खरे होते हैं। चीनी व्यक्ति यदि किसी से कर्ज़ लेता है तो उसके लिये किसी लिखा पढ़ी की आवश्यकता नहीं है, वह स्वामी का वफादार तथा प्रथम श्रेणी का मेहनती होता है। यह नौकरी की

अपेक्षा जहां तक हो सके अपना स्वतंत्र काम करने की कोशिश करते हैं। यही एक कारण है कि चीन के तटवर्ती द्वीपों में चीनी सिपाही नहीं दिखाई देते। अधिकांशतः एशिया निवासी या पंजाबी ऐसी नौकरियां करते हैं। चीनियों की अपनी संस्कृति अपनी समृद्धि है कि चीनियों की बस्तियों में पुरातन पद्धति के अनेकों वैध मिलेंगे पर एलोपेथी वाला डाक्टर कोई भी नहीं। अपनी दुकानों को यह अपने ही चीनी तरीकों से सजाते हैं। इनका खानपान बड़ा सुन्दर तथा शताब्दियों के अनुभव पर आधारित है। मछली, कच्छप का शोरबा, केकडा आदि जल-जन्तुओं का प्रयोग ये अधिक करते हैं। मांसों में से सूअर के मांस का प्रयोग अधिक करते हैं। पर विशेषता यह है कि यह अनेकों प्रकार की सब्जियां खाते हैं। हम लोग मटरों के दाने खाते हैं। पर चीनी लोग अधकच्चे मटरों की फलियां भी खाते हैं। ब्राह्मी बूटी जिसे हम औषधि समझते हैं यह शाक की तरह खाते हैं। हम कद्दू की सब्जी खाते हैं यह कद्दू की वल्लरी की कोंपलें भी खाते हैं। हरे आवलें हरड़े आदि इनका प्रतिदिन का खाना है। हस्त शिल्प में इन्हें प्रवीणता प्राप्त है। बढ़ई और लुहार का काम भी ये हमारी तुलना में बहुत जल्दी तथा बहुत ही साफ---सुथरा करते हैं।

चीनी कला अधिकांश चीनियों द्वारा उकेरे पत्थरों की मूर्तियों में मिलती है। काष्ठशिल्प घरों तथा मन्दिरों में बहुत अधिक है। कई बार जहां हम ईंट या पत्थर लगाते हैं, ये काठ लगाते हैं। चीनी मूर्तियों में धर्म, प्रौढ़ता, आचार-जनित बुद्धिमता आदि के मिश्रित लक्षण दिखाई देते हैं। यह आम धारणा है कि चीनी मूर्तियों में जो पूरी निष्ठा और परिश्रम से बनाई जाती हैं, आध्यात्मिक प्रभावशीलता होती है चाहे वह शुभ हो या अशुभ। चीनियों को नाटकों का बड़ा शौक है। कहीं भी इनकी छोटी सी भी बस्ती हो ये नाटक खेलने का प्रबन्ध अवश्य कर लेते हैं पर इसमें खर्च कुछ भी नहीं होता, एक मंच तथा कुछ बाघ वाले (बस) इनके नाटकों में चमत्कार की अपेक्षा विचार और मन्तव्य पर अधिक बल होता है। यदि मंच पर किसी की मृत्यु दिखानी हो तो वह गिर जाता है तथा क्षणों बाद ही, सभी के सामने, उठकर चला जाता है।

चीनियों का महान धार्मिक गुरु कनफ्यूशियस ईसा से पांच सौ वर्ष पहले हुआ है। उसका सबसे बडा सिद्धांत और सबसे बडी पहली शिक्षा माता-पिता की सेवा, तथा बुजुर्गों की शिक्षाओं का पालन समझे जाते हैं। कानफ्यूशियस के पिता तो बचपन में ही चल बसे थे पर जब उनकी माता का देहान्त हुआ तो उन्होंने सताइस महीने का शोक मनाया। कनफ्यूशियस का दूसरा बड़ा सिद्धांत यह है 'दूसरो से वैसा ही व्यवहार करो जैसा आप अपने लिये उनसे चाहते हैं।' कनफ्यूशियस देश भर में घूमकर

ज्ञान, समझदारी तथा जीवन में गुण पैदा करने की शिक्षा देता रहा। उसकी मृत्यु के बाद से चीनी लोग उसे ब्रह्मरूप तथा देवता की तरह पूजते चले आ रहे हैं।

चीन और जापान के निवासियों के जातीय लक्षण बहुत सीमा तक एक जैसे हैं पर इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि चीनी सभ्यता, जापानी सभ्यता की अपेक्षा, बहुत पुरानी तथा गहरी है। जापानियों का यूरोप वालों से संपर्क होने के कारण, उन्होंने यूरोपीय शिक्षा प्रणाली तथा विज्ञान को जल्दी अपना लिया। वह व्यापार तथा भौतिक विज्ञान उन्नति के ढंग सीख कर प्रगति कर गये। चीनी अपने मौजी तथा दार्शनिक दृष्टिकोण के फलस्वरूप पीछे रह गये। जापान अपनी शक्ति के बल पर चीन तथा कोरिया आदि देशों से लाभ प्राप्त करना चाहता है, इस बात से इनमें तनाव रहता है। सन् उन्नीस सौ में जब यूरोपीय शक्तियों ने मिलकर चीन को दबा लिया तथा पीकिंग में प्रवेश कर गये तो चीन वालों को थोड़ा होश आया क्योंकि तभी से चीन में राष्ट्रीय आन्दोलन चला था जिसका नेता सनयात सेन था। लगभग उन्हीं दिनों अधिकांश यूरोपीय लोग चीन को यूरोपीय सभ्यता के लिये एक खतरा समझा करते थे तथा इसे यैलों पैरिल (Yellow Peril) अर्थात् पीला विनाश कहा रहते थे। वह यह तर्क देते थे कि चीन की जनसंख्या इतनी अधिक है कि यदि चीन जाग उठे तो वह बढ़कर सारे यूरोप पर अधिकार कर सकता है। चीन और जापान को लड़ाकर यूरोप वालों ने चीन को आधी शताब्दी पीछे धकेल दिया तथा जापान को भी अब विनाश के कगार पर ला खड़ा किया है। अब चीनियों के एक कम्युनिस्ट झण्डे के नीचे आ जाने से शायद सचमुच ही यूरोप वालों के लिये खतरा बन जायेगा। यह कौन कह सकता है कि कम्युनिस्ट सिद्धांतों का चीन पर क्या प्रभाव पड़ेगा ? चीन और जापान का परस्पर विरोध रहेगा या मिट जायेगा। गंभीरता से सोचने पर प्रतीत होता है कि सुदूर पूर्व में कोरिया के इर्द गिर्द जो बड़े देशों की राजनीति घूम रही है वह एशिया की उन्नति के लिये बड़ी बाधा है और जब तक यह एशियाई राष्ट्र चीन जापान आदि को एक दूसरे का दुश्मन बनाये रखेंगे तब तक चीन और जापान दोनों के लिए सिर उठा सकना असंभव सा है। साथ ही यह भी दिखाई देता है कि यदि किसी ढंग से चीन और जापान की नीति एक हो जाये तो यह इतने शक्तिशाली हो सकते हैं कि यूरोप के लिये नहीं तो शेष एशिया के लिए यह बड़ा खतरा सिद्ध हो सकते हैं।

हांगकांग —उन दिनों में भी, जिन दिनों की बात कर रहा हूं, बड़ा अमीर तथा हमारे लिये काफी महंगा शहर था। हम दोनों का होटल का खर्च, बहुत संकोच करने पर भी बीस रूपये के लगभग आ जाता था जिस कारण यह चाहते थे कि जितना जल्दी हो सके यहां से चला जाये। हमें पता था कि यदि हम चीन की धरती पर जाकर किसी

छोटे शहर या कसबे में रहें बहुत सस्ते में गुज़ारा हो सकता था पर हमारा तो काम ही हांगकांग में था तथा चीन में हम प्रवेश नहीं कर सकते थे। हांगकांग में गुरुद्वारा भी है पर इतना वड़ा नहीं कि उसमें जितने भी यात्री आयें, रह सकें। वैसे हम ऐसे स्थान पर जाना भी नहीं चाहते थे जहां हमारे पीछे शिकारियों के लग जाने की संभावना हो। जापानी मुद्रा को भारतीय मुद्रा में बदलवा लेने में हमें कोई तकलीफ नहीं हुई, पर हमारी बड़ी कठिनाई फिर यही थी कि यहां से आगे किस प्रकार चला जाये।

इस चिन्ता में हमारा एक सप्ताह बीत गया पर कोई उपाय नहीं बन सका। एक दिन घूमते-घूमते मैं और शर्मा हांगकांग के उस द्वीप पर जा पहुंचे जिसे ऐबरडीन कहा जाता है। ऐबरडीन स्काटलैंड का एक बड़ा शहर है, चीनी स्थान का यह नाम किसी स्काट निवासी ने रखा प्रतीत होता है। हैरानी न रही जब हमने वहां नौकाओं का एक शहर देखा जिसमें चीनी ही चीनी थे। सुरक्षा के लिए हमने अपना रूपया, प्रसिद्ध अंग्रेजी कंपनी कुक के पास जमा करवा दिया जो यात्रियों के आने जाने का, प्रबन्ध करती है। अन्यथा ऐसे स्थान पर परदेसियों का आना खतरे से खाली नहीं था। जिस प्रकार अमीरी की कोई सीमा नहीं उसी प्रकार चीन में गरीबी की भी कोई सीमा नहीं, पास में कुछ न रहे और भिखारी बन जायें, यह गरीबी नहीं। गरीबी वह है—जब परिवार भी हो, बच्चे भी हों सबके लिए सबके खाने का प्रबन्ध करना है। पर पास न रूपये हो, न नौकरी, न ज़मीन। प्राप्त करने के प्रयासों को छोड़कर मस्त होकर बैठ जाना गरीबी नहीं। गरीबी वह है जब व्यक्ति जी जान से प्रयास कर रहा हो पर फिर भी पेट भर खाना या तन ढांपने को कपड़ा नहीं। इस प्रकार की गरीबी हांगकांग के इलाके एबरडीन में देखी। सैंकड़ों नौकाएं पानी में फंसी खड़ी थी। भ्रम होता था कि यह जल में है या स्थल पर भांति-भांति की कोई छोटी, कोई बड़ी, किसी किसी पर चटाइयों की गोल छत, किसी पर चौरस टपरी, किसी पर जैसे-तैसे ओट बनाई हुई, भाव यह है कि यह एक विचित्र बस्ती थी जो बारह महीने तीस दिन नौकाओं में ही निवास करती थी। नौकाओं में जन्म, नौकाओं में पालन पोषण और जीवन यापन तथा नौकाओं में ही मर जाते थे बृद्ध, बच्चे, युवक पुरुष स्त्रियां, कोई निठल्ले कोई काम में लगे हुए। स्त्रियों ने बच्चों को गठरी की तरह टांगे बाहर निकाल कर, झोली सी बनाकर पीठ पर बांधा हुआ। कई बच्चे नौकाओं के मसस्तूलों के साथ बांधे हुए। नौकाओं के चारों ओर तथा मध्य में आने जाने के लिए रास्ता छोड़ा हुआ था। मैं और शर्मा जी जाकर खड़े हुए थे कि चार पांच चीनी स्त्रियों ने घेर लिया। वह टूटी-फूटी अंग्रेज़ी में बात कर रही थीं। कोई कहती कि आइए, सैर के लिए नौका खाली है। 'कोई कहती थी आइये, आपको भोजन करवाने वाली नौका पर ले चलें। हम डर रहे थे और चिन्तित थे। ज्यों ज्यों हम संकोच करते थे त्यों त्यों और आ जा

रही थीं। आखिर साहस करके हमने एक भली सी प्रतीत होने वाली स्त्री को इशारा किया और इसके पीछे हो गये। उसने हमें एक छोटी नौका में जा बैठाया जिसको एक नवयुवक, जो उसका पुत्र प्रतीत होता था, संभाल बैठा था यह लड़का नौका में बिठाकर ले चला, पर हम इसके साथ भाषा की कठिनाई के कारण बातचीत नहीं कर सके। यह हमें एक बड़ी नौका के पास ले गया जहां हमें भीतर से ही पता लग गया कि यह नौका 'तैरता होटल' हैं जिसमें भांति भांति का, जैसा चाहो, भोजन उपलब्ध हैं। हमने लड़के को बिठाकर दिया तथा स्वयं 'होटल नौका' पर चढ़ गये। हमने देखा कि हमारे जैसे अन्य ग्राहक भी भोजन की प्रतीक्षा कर रहे थे? हम भी जाकर बैठने लगे तो दुकान के स्वामी ने संकेत किया कि अभी न बैठें पहले उसके पास जायें। नौका काफी बड़ी थी। एक ओर चूल्हा तप रहा था। बहुत से व्यंजन बन रहे थे। सुगन्ध से ही भूख चमक उठी थी। नौका के मध्य में पानी से भरा हुआ एक जलाशय सा था जिसमें टोकरियां तैर रही थीं। टोकरियों में मछलियां, केंकड़े झींगुर आदि भांति भांति के जल जन्तु थे। उसने हमें कहा 'जूंज' (चुन लो) हमें भला मछलियों की क्या पहचान थी। हमने हाथ हिला दिया, वह हंस पड़ा और हम बैंच पर जाकर बैठ गये। रसोई की चीनी स्त्री हमारे लिये मछली पकाने लगी तथा हमारे सामने प्लेट में कुछ भूख बढ़ाने वाली वस्तुएं ला रखीं। पत्ते, गोभी का अचार, मीठा अदरक, तरबूज़ के तले हुए बीज, मछली के साथ ही चावल तथा रसदार सेम और अरबी के पत्तों की सब्ज़ी। चीनियों को ऐसी सब्जियों की फुरणा मिलती है जो हमारी कल्पना में भी नहीं होती। इस नौका का चीनी स्वामी परिवार समेत नौका में ही रहता था। चीनी स्त्रियां सभी प्रकार के कामकाज करती थी। खाने वालों का तांता लगा रहता था। जब हम खा पीकर उठे तो हमारा बिल लगभग दो रुपये बना जबकि होटल में हम चार चार रुपये खर्च कर भी अघाते नहीं थे। हमें नहीं पता कि उन लोगों ने कौन से तेल का प्रयोग किया था पर हमें उसमें से किसी भी प्रकार की बुरी गन्ध नहीं आई और न ही स्वाद बुरा लगा। बड़ा सुन्दर स्वादिष्ट तथा भरपेट खाना था। उस दिन से हमने सलाह की कि जब भी समय हो होटल में दुगना खर्च करने की अपेक्षा यहां आकर खा लेना अच्छा है। हमें पता लगा कि इस तैरती हुई बस्ती में स्थल बस्ती की तरह सब कुछ उपलब्ध है। खाने की सभी वस्तुएं तथा पीने का पानी नौकाओं में ही बिकता फिरता है। एक नौका में पुजारियों ने विवाहों की भी व्यवस्था की हुई थी ताकि इस बस्ती के दुल्हा और दुलहिन को बाहर स्थल पर न जाना पड़े। कहते है कि लोग पूरी की पूरी आयु इन्हीं नौकाओं में बिता देते हैं। इनका घर-घाट, मुहल्ला तथा जमीन सभी कुछ पानी की सतह पर ही है जिसका कोई मालिक नहीं समझा जाता इन लोगों का निर्वाह अधिकांशतः मछलियां पकड़ने पर है। बड़ी नौकाओं में अकेले

या मिलकर जाते हैं तथा जाल फेंककर मछलियां पकड़ते हैं। अच्छी किस्म की मछलियां जल्दी बिक जाती हैं। बाकी की मछलियों को किनारे पर फैलाकर सुखा लिया जाता है। हांगकांग में मछली के अतिरिक्त खाने-पीने की कोई वस्तु पैदा नहीं होती। इसीलिये यहां मांस आस्ट्रेलिया से, फल फिलिपाइन से, चावल जापान से तथा सब्जियां चीन से आती हैं।

एबरडीन से होकर कई स्थानों पर घूमते हुए सायंकाल हमने अपने होटल की ओर मुंह किया हांगकांग से आगे चलने की हमें उत्सुकता थी पर तूफान के द्वारा कुछ इस प्रकार रौंदे हुए थे कि अब समुद्र का मुख देखने को मन नहीं मानता था हांगकांग से जहाजों के दो तीन मार्ग ही थे। या तो सिंघापुर से होकर के सीधे कलकत्ता को या रास्ते के सारे बन्दरगाहों का स्पर्श करते हुए अथवा हांगकांग से बैंकांक सिंघापुर से होकर सीधे कलकत्ता। यूरोप में भी युदध बीच में आकर चौमुहरी की तरह दोनों पक्षों के लिए एक जैसा रहता दीखता था। इन सभी बातों को सोचते हुए हम हांगकांग के एक ऊंचे से स्थान पर आ गये। जहां से नीचे समुद्र तथा बन्दरगाह में जहाज और एबरडीन के गरीबों की नौकाओं की बत्तियां तथा जलते हुए चूल्हे दिखाई दे रहे थे। ईश्वर ने व्यक्तियों के जीवन-निर्वाह के अजीब-अजीब ढंग तथा उपाय बनाये हुए हैं। दौलत तथा गरीबी धूप एवं छांव की तरह पास-पास ही होते हैं। जितनी धूप तेज, उतनी ही छाया गहरी। अजीब बात है कि जहां ज्यादा दौलत होती है वहीं गरीबी की खाइयां भी गहरी होती हैं। हांगकांग की अमीरी के चिन्ह जहां हम खड़े थे अच्छे दिखाई दे रहे थे। अमीरों के घरों में दिन का सा प्रकाश था। सिनेमा तथा नृत्यशालाओं के प्रकाश से आसमान रंगा हुआ था। इनकी रात भी इनके दिन से अधिक चहल पहल भरी आनन्द की थी। अंग्रेज और चीनी, पुरुष और स्त्रियां, सजे धजे अपनी-अपनी एय्याशी के स्थानों को, कोई क्लबों की ओर, कोई चीनी रंगशालाओं की ओर, कोई नृत्यशालाओं की ओर या अन्य टिकानों की ओर जा रहे थे। इनमें लखपति तो प्रत्येक दूसरा तीसरा व्यक्ति था पर कई करोड़पति भी थे। हांगकांग के व्यापार का अनुमान इस बात से लग सकता है कि यहां के बन्दरगाह के विभाग में काम करने वाले कर्मचारियों का मासिक वेतन चार लाख के करीब था तथा सिर्फ जहाजों के बन्दरगाह में आने तथा आकर ठहरने की फीस सारे पटियाला की वार्षिक आय के लगभग थी। क्या हैरानी की बात है कि इतनी अमीरी के पास ही ऐबरडीन जैसी गरीबी हो। जहां बड़े तथा अमीर शहर होते हैं, वहीं गरीबी की झोंपडपट्टी या अंधेरी कोठड़ियां होती हैं जहां निर्धनतम व्यक्ति निकृष्टतम स्थिति में रहते हैं।

आठवां अध्याय

सियाम

योकोहामा से चले हमें अभी दो सप्ताह भी नहीं बीते थे कि जो हम पर बीती थी, उससे ऐसा प्रतीत होता था मानो छह महीने बीत गए हैं। सब कुछ मन की, स्थिति पर निर्भर करता है। यदि मन में प्रकाश और उल्लास भरा हुआ है तो दुनिया समतल प्रतीत होती है यदि मन हार जाए तो समतल भी पहाड़ प्रतीत होता है। हांगकांग पहुंचकर जब सारे समाचार पत्र पढ़े तथा अंग्रेजों के चेहरे देखे तो हमारी वह आशायें और भरोसे कि अब अंग्रेजों के पैर पीछे की ओर हटेंगे, खोखले से प्रतीत हुए। न जर्मन वाले पैरिस ही पहुंचे और न वह बरतानिया पर ही बरसे। तुर्की में, जहां भारतीय सेनाएं लड़ रही थीं, अंग्रेजों को एक दो गहरे आघात लगे थे। जिस तरह के युद्ध के प्रारम्भ में अमेरिका में समाचार पढ़ते सुनते थे कि भारत विद्रोह कर देगा, उस तरह का अब कोई समाचार नहीं मिलता था। कामागाटा मारू के यात्रियों का नामोनिशान भी मिट गया लगता था। हांगकांग के पंजाबियों को एक दो बार मिले थे पर किसी ने भी अंग्रेजों के विरोध में डटकर कुछ भी आश्वासन नहीं दिया। सारी स्थिति अंग्रेजों के पक्ष में थी, विरोध में बहुत कम। अच्छी तरह पूछताछ करने पर पता चला कि हांगकांग से सिंघापुर ही जहाज़ जाते हैं। आगे वहां से पुन: व्यवस्था करनी होती है। शर्मा का विचार था कि चाहे कुछ हो जाये, चाहे बरस ही लग जाए आम प्रचलित चालू रास्ते से नहीं जाना। सिंघापुर अंग्रेजों के बेड़े का अड्डा था। मेरे साथी का विचार था कि वहां जा पहुंचना सीधे अंग्रेजों के मुख में जा गिरने के समान है। बुल्डाग के अनुभव से हम सावधान हो गए थे कि हमारी एक-एक हरकत का हमारे शत्रुओं को पता है। सभी ओर से सोचकर यह निर्णय लिया गया कि सियाम का कोई जहाज़ जाता हो तो उसे पकड़ा जाए नहीं तो हिन्दी चीन में होकर स्थल मार्ग से जाया जाए। सियाम को सीधा यात्री जहाज कोई नहीं जाता था। मेरे साथी ने सलाह दी कि एक दिन पूरा बन्दरगाह के मालवाही जहाज़ वालों को मिलने में लगाया जाए। शायद कोई सियाम को जाने वाला जहाज मिल जाए। पता चला कि सियाम से

चावल के आयात का मौसम शुरू हुआ है। दो जहाज़ जो बैंकाक से चावल लेकर आए थे, खाली हो चुके हैं, पर यात्री चढ़ाने से उन्होंने इनकार कर दिया है। हम आशंकित से कुछ कंपनी वालों के पास पहुंचे। शर्मा जी ने कंपनी के मैनेजर से बातचीत की तथा कहा कि यदि हमें बैंकाक पहुंचाने की व्यवस्था कर दी जाए तो हम बहुत आभारी होंगे।

मैनेजर :—आप सीधे सिंघापुर के मार्ग से भारत क्यों नहीं जाते ?

शर्मा :—असल बात यह है कि अमेरिका से तो हम खाली हाथ ही आए हैं। बस यही तीस पैंतीस हज़ार रुपया हम दोनों के पास है हम आपसे छिपाना नहीं चाहते। हमने अपना भाग्य परखना है। सियाम से रेशम खरीद कर सीधा स्थल मार्ग से, चुंगी से बचकर, बर्मा में जाकर बेचना है। शायद इस व्यापार में हमारा किराया निकल आए तथा फिर हम बर्मा से कलकता को सागवान ले जायेंगे। आपकी कृपा हो तो हमारा समय भी बच जाएगा और टेढ़े रास्ते से भी बचाव हो जाएगा। नहीं तो हमें सिंघापुर जाकर पुन: सियाम आना पड़ेगा।

अंग्रेज यदि एक बार रास आ जाए तो बांह पकड़ के नहीं छोड़ता। मैनेजर ने सिर खुजलाते हुए कहा कि परसों पता करना। तीसरे दिन उस ने एक बड़े अंग्रेज व्यापारी के पास हमें पत्र देकर भेज दिया और वहां से हमें एक अन्य पत्र एक फ्रांसीसी मालवाही जहाज़ के कप्तान के नाम मिला और हमारा काम बन गया।

कुक कंपनी से जब हम रुपया निकलवा कर निकले तो मैंने शर्मा को कहा कि वह अब स्वयं मुहूर्त और चलने का समय विचार ले, नहीं तो बाद में मुझे उलाहना न दें क्योंकि यह भी मालवाही जहाज़ है। शर्मा हंसकर कहने लगा कि मालवाही जहाज़ तो ठीकठाक था, तूफान आ गया, इसमें उसका क्या दोष। जहाज़ का नाम लकोलैट था तथा सियाम से चावल उतारकर कपड़े का सामान, जुराबें तथा अन्य विविध प्रकार का छोटा बड़ा मनियारी आदि का सामान वह सियाम को ले चला था। फ्रांसीसी जहाज़ में बड़ी मौज थी। वहां भी हमारा रसोइया चीनी ही था तथा हमें दस बारह दिन की यात्रा में बिल्कुल ही कोई तकलीफ नहीं हुई। नवम्बर की शायद इक्कीस या बाईस तारीख थी जब हम खुशी-खुशी बैंकाक के बाहर समुद्री खाड़ी में उतर पड़े तथा नौका लेकर बैंकाक शहर में जा उतरे।

हमारा विचार था कि बैंकाक जो कि राजधानी है वहाँ पंजाबी कहाँ होंगे। पर हम बड़े हैरान हुए कि जब हमने यह देखा कि वहाँ सौ डेढ़ सौ के लगभग पंजाबी

दुकानदार हैं । अधिकांश लोग कपड़े का काम करते हैं या दो चार यूरोपीय ठेकेदारों के कारिन्दे हैं । सयाम के शहरों के नाम सुनो, मन्दिरों को देखो, राजा के परिवार के लोगों के नाम सुनो, तो साफ पता चलता है कि यह सभी नाम संस्कृत से मिलते जुलते हैं । एक शहर का नाम अयूधिया बोला जाता है पर है अयोध्या से बिगड़ा हुआ । बैंकांक शहर का कुछ भाग पानी में ही बसा हुआ है जिस कारण बैंकांक को Venia of the East 'पूर्व का वीनस' कहा जाता है । पानी में काठ के स्तम्भ गाड़ कर ऊपर मकान बनाये हुए हैं तथा यातायात नौकाओं द्वारा होता है । यहां के पंजाबियों में बहुत से नामधारी हैं तथा अपने नियमों और संयम में पूर्ण हैं । बैंकांक पहुंच कर ऐसे प्रतीत होता था कि जैसे हम घर के समीप पहुंच गये हैं । इसके आगे बर्मा है जो भारत के बाहर वाले घर की तरह है । तीन चार दिन हम जहाज़ की थकावट उतारने के लिये बैंकांक में रहे । सुन्दर, खुला, शहर है । सियामी पुरुष और स्त्रियाँ कद काठ से बहुत साधारण हैं । चीनी अपेक्षाकृत हृष्ट पुष्ट हैं, बल्कि चीनी मजदूर तथा मल्लाह तो बड़े हृष्ट पुष्ट और सुदृढ़ शरीरों वाले हैं । साईकलों का बहुत अधिक रिवाज है । लड़कियां भी लड़कों की तरह साईकल दौड़ाती फिरती हैं सिआमियों के नकश विशेषत: स्त्रियों के भारत तथा मंगोलों के बीच की सी प्रतीत होते थे । नाक बहुत छोटे तथा आंखे माथे की सीधी रेखा में ।

सियाम तथा बर्मा की सीमा कई सौ मील तक मिलती है जिसमें बहुत सा इलाका जंगली है । इन दोनों के मध्य पहाड़ तथा नदियां हैं पर रुकावट डालने वाली नहीं । सियाम से वर्मा को जाने के दो रास्ते हैं । एक तो बैंकाक के समीप से ही पश्चिम की ओर होकर बर्मा के इलाके मीलमीन के पास जा निकलता है । हमें पता चला कि इस मार्ग पर बहुत यातायात है और सामान भी जाता है पर चोरी । तस्कर लोग सियाम से रेशम तथा बर्मा की ओर से छोटा मोटा पीतल लोहे आदि का सामान तथा मनियारी का माल खच्चरों पर लादकर सीमावर्ती गांवों के पास ला पहुंचाते हैं । सरहद के पास वाले सियामी तथा वर्मी तस्कर रात के समय उठाकर इधर का माल उधर और उधर का इधर पहुंचा देते हैं । यदि सीधे मार्ग द्वारा सियाम से बर्मा आना हो तो बड़ा दूर पड़ता है तथा माल पर चुंगी भी काफी लग जाती है । दूसरा मार्ग बर्मा को पहुंचने के लिये रेल का मार्ग है । बैंकांक से सीधे उत्तर की ओर सियामी रेल की लाईन चीगमई तक जाती है । चींग मई में पुनः पहाड़ी रास्ते पश्चिम की ओर होकर बर्मा के उत्तरी शान प्रदेश में जा पहुंचती है । शर्मा ने सलाह की कि यदि हो सके तो बैंकांक के जर्मन कौंसल को मिला जाये, साथ ही पासपोर्ट ठीक करवा लिये जायें । साथ ही कोई समाचार सूचना आदि मिल सके और यदि कोई अपना व्यक्ति मिल सके तो उसके साथ

सांठगांठ की जाये। जर्मनों का युद्ध से पहले सियाम में काफी संपर्क और प्रभाव था। रेलवे लाईन का अधिकांश भाग जर्मनों के प्रबन्ध में ही बना था, पर जबसे युद्ध प्रारम्भ हुआ था, अंग्रेज कौंसलेट के व्यक्ति भी बहुत चौकन्ने रहने लग पड़े थे। पता चला कि सियाम में जितने भी भारतीय बरतानिया के विरोधी हैं उनकी सूचियां बन चुकी हैं तथा इनके आने जाने पर तीव्र दृष्टि रखी जाती है। जर्मन कौंसलेट के कर्मचारियों को मिलना भी आसान नहीं था, और न ही हमारे पास उन्हें विश्वास में लेने के लिये कोई प्रमाण था और उन्हें शक था कि कहीं शर्मा अंग्रेजों का ही एजेण्ट न हो। मैं शर्मा के साथ थोड़ा इधर उधर रहता था। शर्मा अकेला उन्हें जाकर मिलता रहा। आखिर बहुंत देर बाद उसने हमें एक विश्वसनीय व्यक्ति का अता पता बताया, जोकि पंजाबी था और अंग्रेजों का कट्टर विरोधी भी था। उसका नाम बाबू कर्म सिंह था तथा वह चींगमई के समीप रेल का इंजिनीयर था। हमारे पासपोर्ट जर्मन कौंसल ने लेकर अपने व्यक्तियों के माध्यम से सियामी सरकार से ठीक करवा कर उन पर वर्मा का विवरण भी दे दिया। हमें यह भी पता चला कि संभव है किसी भी समय सियामी सरकार जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करदे, क्योंकि अंग्रेज़ों की ओर से अब युद्ध के लंबा हो जाने से सियाम पर दबाव पड़ने लगा है। लगभग तीसरे दिन हम बैंकांक से चींगमई जाने वाली रेलगाड़ी पर चढ़ गये तथा एक डिब्बे में एक दूसरे से दूरी पर बैठ गये ताकि यदि कोई विपत्ति एक को घेरे तो दूसरा बच जाये। स्टेशन पर हमें अतिरिक्त सूचना देने के लिये जर्मन कौंसल को एक सियामी कर्मचारी मिला, जिसने हमें सजग किया कि आज ही समाचार मिला हैं कि सियाम भी जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा आजकल ही में कर देगा। तथा उसने कुछ कागज़-पत्र आदि बंद लिफाफे में हमें दिये, जो कि हमने बाबू कर्म सिंह को देने थे और यदि कोई खतरा हो या बाबू कर्मसिंह से भेंट न हो सके तो इन्हें जला दिया जाना था। ठीक उसी वक्त जब गाड़ी सीटी बजा चुकी थी तथा चलने लगी थी, चार पांच व्यक्तियों की टोली में से, जिन में दो पगड़ी वाले थे, एक व्यक्ति भागकर हमारे डिब्बे में आ बैठा। हमने भी ताड़ लिया। गाड़ी में भीड़ नहीं थी और यह व्यक्ति, मंझोले कद का पतला, आकृति से हिन्दू तथा पगड़ी से पंजाबी प्रतीत होता था। मेरे पास आकर 'सत् श्री अकाल' कह कर बैठ गया। मैं फंसे हुए मृग की तरह इधर-उधर देखने लगा। मैं चकित था कि इसने कैसे पहचान लिया कि मैं सिख हूं तथा मेरे पास आने का इसका क्या प्रयोजन है। आखिर शीघ्रता से संभल कर मैंने भी 'सत् श्री अकाल' का उत्तर दिया तथा कहा कि 'आइये जी मैंने आपको पहचाना नहीं।' पास आकर कहने लगा 'कोई सेवा बताइये, हम यहीं के है। आप दूर से आये हैं।'

मैंने कहा 'आपको कैसे पता चला कि मैं दूर से आया हूं।' कहने लगा, गुस्सा न करना। मैंने आपको दो चार बातें कहनी हैं। मेरा नाम जीत सिंह तथा 'सोढी' कह कर पुकारा जाता हूं। सरकारी आदमी हूं, पर हमें बड़ा दुख होता है जब हमारे भाई सीधे बाघ के मुख में जा पड़ते हैं। आप जो इतनी दूर से आयें हैं—!

यह वाक्य अभी अधूरा ही था जब मैंने थोड़ा सा चिढ़ कर कहा, 'तुम्हें कैसे पता है कि मैं दूर से आया हूं।'

सोढ़ी—'देखो भोली बातें न करो। मैंनें आपसे कुछ नहीं लेना। मैं तो बल्कि सहानुभूति के रूप में, आपके अपने बचाव के लिए दो चार बातें आपको बताने के लिए आपके पास आ बैठा हूं। यदि आप नाराज़ होते हैं। तो मैं परे हटकर बैठ जाता हूं। हम भी सभी दिल में आपके साथ हमदर्दी रखते हैं। पर काम वही करना चाहिए जिसके सफल होने की आशा हो। आप पूछते हैं कि मुझे कैसे पता चला आपके दूर से आने का। देखो यह पहली बात तो यह कि आप दोनों की टोपियाँ चीन की बनी हुई है। आपके पैरों में वह बूट हैं जिस प्रकार के यहां सारे सियाम में उपलब्ध नहीं, यह बूट अमरीका से इधर कहीं हैं ही नहीं। यह देखो क्या है।

यह कहकर उसने जेब में से एक समाचार पत्र का टुकड़ा निकाला और कहा कि यह पहचानों कि यह कहां था। मेरे रोंगटे खड़े हो गए। स्टेशन पर बैग के कागज पत्र देखते हुए मैंने सिपाही की बोतल पूखी देखकर यह कागज़ जिस में यह लपेटी हुई थी, फेंक दिए थे। अखबार के कागज पर साफ पढ़ा जाता था। 'कैलोफोर्निया बुलेटिन,' तारीख भी थी तथा कुछ खबरें थीं। मैं अपनी गलती से बड़ा खिन्न हुआ तथा कुछ गुस्से में और कुछ खिसियाते हुए उसे कहा कि 'न जाने क्या गप्प हांक रहे हो, क्या कह रहे हो।'

सोढ़ी —'सरदार जी, देखो। यह लो अपना कागज़। मैं आपको सावधान करने आया हूं। पहला पाठ यह है कि सर्वप्रथम अपनी वेश भूषा बदलो। टोपियां आवश्यक नहीं हैं। निःशंक होकर दाढ़ी रख लो और पगड़ियां बांध ले। आपके तो कपड़ों से अमेरिका टपक रहा है और आप समझ रहे हैं कि आप छिपे फिरते हैं। निकालें अपनी बनियान। अभी आपको उस पर अमेरिका की मोहर दिखा देता हूं। जो गर्म बनियान आप पहने फिरते हैं, वैसी यहाँ बीस रुपए में भी नहीं मिलती। क्या भोली बातें करते हो। आपका साथी अपने आपको बड़ा चतुर समझता है जो जो बातें इसने जर्मन कौंसल के पास की हैं, अक्षर अक्षर उसकी रिपोर्ट हमारे पास है। जर्मन कौंसिलों जैसा

उल्लू दुनिया के तख्ते पर कोई नहीं। उस के आधे कर्मचारी हमसे वेतन लेते हैं। मैं तो आपको यह समझाने आया हूं कि सावधानी से चलो। यह अमरीकनों वाला पहरावा बदल लो। कहीं आराम वाली जगह पर महीना बीस दिन बिताओ ताकि आपको इस देश की और भारत की हवा का पता चल जाये। फिर अपना भविष्य सोचकर जो मन में आए करो। आपने कौन सा हमारे कहने पर चलना है। पर अकारण ही तो न मरो। नहीं तो हम जैसे किसी के माथे दोष मढ़ा जाएगा। बातें बहुत करनी हैं, पर आप बुरा महसूस करते हैं अच्छा मौज करो मेरी डयूटी आप पर लगी हुई है। मैंने आपको आकर साफ बता दिया है ताकि आप अपना बचाव कर सकें। मैं भी तो किसी का नमक खाता हूं। पर मैं यह नहीं चाहता कि अमेरिकन भाई सारे ही जेलो में भर दिए जायें, मैं भी आपका पंजाबी भाई हूं। दोनों डरो मत, बैठकर सलाह कर लो, यदि किसी चीज़ की आवश्यकता है या कोई बात पूछनी हो तो पास बुला लेना।'

मेरे तो पैरों तले से जैसे जमीन निकल जाती है, हक्का बक्का तथा परेशानी से पसीना-पसीना हो गया। बातें भी सच थीं तथा सोढी की बातों में खरापन तथा हमदर्दी का अंश भी था। सोढ़ी अगले स्टेशन पर उतर कर साथ वाले डिब्बे में बैठ गया। मैंने शर्मा जी को एकान्त में सारी बात सुनाई। हम दोनों अपनी समझ में बड़े समझदार तथा सूझबूझ वाले देश भक्त बने फिरते थे। ऐसा प्रतीत होता था जैसे हम एक दम उल्लू हैं तथा इस देश में आने और रहने की हम में सूझ ही नहीं है। घण्टा डेढ़ हम चिन्ता में डूबे रहे। बड़ा प्रश्न यह था कि क्या इस सोढी को हमारे रुपये का भी पता है ? पर रुपये का पता कैसे हो सकता है, हांगकांग से यह रुपया बंद डिब्बे की तरह था। पर क्या पता है।

रात उतर आई। हम बिस्तर बिछा कर लेट गए, पर नींद कैसे आए। बड़ी रात गए सोढी आया तथा उच्च स्वर में कहने लगा, 'बेशक लम्बी तानकर सो जाओ, यहां चोरी का बिल्कुल ही डर नहीं है। मै आपको सवेरे मिलूंगा।' ऐसा प्रतीत होता था कि इस व्यक्ति ने हमारे गले में लोहे की जंजीर डाल ली है तथा हम इसकी दया पर आश्रित हैं। मुझे कभी अपने पर गुस्सा आता था कभी सोढी पर। शर्मा तो बिल्कुल ही चुप था। आखिर मैंने शर्मा को कहा कि यह भेड़ों वाला जीवन मुझसे नहीं हो सकेगा।

शर्मा :- क्या मतलब ?

मै —मेरे लिए दिन निकलते ही किसी पिस्तौल आदि की व्यवस्था कर दो। नहीं तो मै किसी सोढी जैसे के सिर चढ़कर वैसे ही मर जाऊंगा यह कोई आदमियों

वाला जीवन है। न हमारे पास कोई शस्त्रास्त्र न लेना देना। कमर के साथ मौत बांधे घूम रहे है। मैं तो भला दसवीं फेल हूं। तुम इतने पढ़ लिखे, समझदार तुम्हें नहीं सूझी कि हमारे पास कोई हथियार होना चाहिए। यहां जंगलों में चाहे हम दोनों को कोई एक आदमी आकर मारके फैंक दे और यह रुपया जो बांधे फिरते हैं, छीन कर ले जाए।

शर्मा :—ब्राह्मणों का हथियार तो बातें होती हैं, जितनी चाहे, सुन लो। अब सोचने वाली बात यह है कि इस भड़ुए से किस तरह पिण्ड छुडाया जाए। अब तो कहीं, जंगलों के सिवाय, छिपने के लिए भी कोई स्थान नहीं है।

मैं :—तुम मेरे लिए किसी हथियार का प्रबन्ध कर दो, फिर सब कुछ हो जाएगा।

शर्मा :—बात तो यह है कि हम एक पराये देश में हैं। जंगल ही हैं, यदि राह छोड़ कर कुराह पर चलते है मारे जायेंगे और यदि राह पर ही चलते हैं तो सोढी ने पीछा नहीं छोड़ना। किसी ऐसी घड़ी में चले हैं कि मुसीबत पर मुसीबत पड़ी चली आ रही है।

मैं :—तुम्हें मैंने सौ बातों की एक बात कह दी है कि हथियार का प्रबन्ध करो। नहीं तो न यह रुपया ठीक स्थान पर पहुंचेगा और न हमारी जिन्दगियां।

शर्मा :—अच्छा यह तो बताओ कि बाबू कर्म सिंह को ढूंढना है कि नहीं।

मैं :—उस गरीब को सोढी के चक्कर में क्यूं डालें।

सबेरा होने पर सोढी आया और आकर शर्मा के साथ बातचीत करने लग पड़ा। पर शर्मा के रात से ही ऐसे दांत भिचे थे कि यदि सोढी तीन बातें करता था तो शर्मा एक 'हूं' कर छोड़ता था। सोढी भी समझ गया। इधर-उधर की हांक कर फिर कहीं जा बैठा। शाम के लगभग चार बजे गाड़ी चींगमई पहुंच गई। अभी उतर कर खड़े थे कि एक पतला, लम्बा सा सिख, दाढ़ी में कोई-कोई सफेद बाल, कोट पैंट तथा पगड़ी बांधे हुए उसके पीछे-पीछे दो सियामी, प्लेटफार्म पर हमारी ओर आकर हमारे समीप से जाने लगे। मन को मन की बात का पता चल जाता है। हम उसकी ओर उसने हमारी ओर कुछ इस प्रकार से देखा कि बिना बात किये निकल जाना संभव न हो सका। परदेश में व्यक्ति बड़ी जल्दी मिलते तथा जल्दी मित्र बनते हैं। जब उसने अपने सियामी साथियों को नक्शों के से कागज पकड़ा कर इशारा किया, 'तुम चलो मैं आता हूं' तो हम समझ गये कि यही बाबू कर्म सिंह, रेल का इंजिनीयर है। हम अभी 'नमस्कार', 'सत श्री अकाल' ही कह रहे थे कि

सोढी आ गया और बाबू कर्मसिंह 'आइये सोढ़ी साहिब' कहकर हाथ मिलाकर हंसने लग पड़ा।

सोढी :—हंसते क्या हो। मैंने कभी किसी से धोखा नहीं किया। पूछ लें गाड़ी पर सवार होते ही इन सरदारों को बता दिया था कि मैं कौन हूं।

कर्म सिंह :—नहीं, सोढी बड़ा भला आदमी है।

एक दो बातें करके सोढी चला गया और हमें बाबू कर्म सिंह ने एक मजदूर बुलाकर अपने बंगले में भेज दिया।

कहां अमेरिका और कहां सियाम। बंगले में चुप्पी, शांति, शीतलता तथा चैन फैले हुआ था। चारों ओर लम्बे-लम्बे बांस हवा चलने से सिर हिला रहे थे। ऊपर की पहाड़ियां हरी भरी थीं। लकड़ी के स्तम्भ, सीमेंट के चबूतरों पर खड़े करके, ऊपर पहियों की दीवारें बनाई हुई थीं। धरती से पांच फुट ऊपर तथा उस पर दोनों की छत थी। कभी-कभी बांसों की रगड़, कभी-कभी पक्षियों का कलरव या कभी-कभी बाबू जी के सियामी रसोइये के बर्तनों की खड़खडाहट के अतिरिक्त कोई आवाज़ नहीं थी। बर्मा और सियाम के जंगलों की चहल-पहल तथा शोभा देखते ही बनती है। जबानी बताते हुए तो 'लेखे होय विनाश' करने वाली बात है। कुदरती तौर पर ही हमें ऐसे प्रतीत होता था कि किसी और ही दुनिया में पहुंच गये हैं। कहां अमेरिका, अमेरिका के दिन रात के धन्धे, कभी न धीमा पड़ने वाला शोर न बुझने वाली बत्तियां, मोटरें, ट्रामें, बसें तथा जहाज। दिन समाप्त हुआ तो रात के धन्धे, सिनेमा, शोर नृत्य, कार्यरत कारखाने और रात समाप्त हुई तो दिन के सदा गतिशील पहिये, धन्धे मानो दुनिया रेलगाड़ी पर सवार हो और यात्रा कभी न समाप्त होने वाली हो तथा कहां यह बंगला जिसके चारों ओर वनस्पतियां, मस्ती में मतवाली, नर्तकों की तरह झूम रही हैं। हवा भी यहां आकर पल भर आराम करने लगती है। सागवान का बड़ा चौड़ा पत्ता जब नीचे गिरता है तो उसकी 'खड़ाक' सुनती है। आसमान नीले परिधान में निखर कर इतना स्वच्छ और सुन्दर लगता है। हम बैग रखकर खाटों पर बैठे ही थे कि टेढ़े हो गये और हम दोनों को नींद आ गई। नौकर ने झटपट हमें भोजन खिला कर सुलाने की की। उसे पता था कि हम रात भर के उनींदे हैं।

दूसरी सवेर हमने बाबू कर्म सिंह से बातचीत की तथा मित्रता बनाई। बाबू उन लोगों में था जिसे देख लेना ही उसका मित्र बन जाना था। जर्मनों द्वारा कृतार्थ किया हुआ, ओवरसीयर से इंजीनियर बना हुआ, देश भक्त भी और राम

भक्त भी, हीर और सुखमणी साहिब समान सम्मान से पढ़ने वाला, फारसी के शेडरों शेखसादी की कहावतों, मौलाना रुमी की मसनवी का प्रवक्ता यह व्यक्ति जिसके रोम रोम से शराफत, सच्चाई तथा माधुर्य बरसता था केवल एक ही लौ लगाये हुए था कि किसी प्रकार अंग्रेजों को भारत से निकाला जाये। हम दोनों उसके सामने मूढ़ बालक प्रतीत होते थे। वह सियामी बोली को पंजाबी की तरह बोलता था तथा अंग्रेजी का बड़ा अध्येता नहीं था। मैं और शर्मा चाहे अपनी बातें बड़ी दृढ़ता से छिपाये फिरते थे, पर पहले ही दिन रात के दस बजे से पहले ही अपने सारे भेद खोलकर बाबू कर्म सिंह के चरणों में रख चुके थे।

बाबू कर्मसिह ज़िला लुधियाना का निवासी था। वर्मा होता हुआ छोटे ओवरसीयरों की टाईमकीपरी करता करता ओवरसीयर बन गया तथा यहां सियाम में आने पर जर्मन इंजिनीयरों ने उसे असिस्टैंट इंजिनीयर बना दिया। अकेला, कुंवारा, बड़ा मेहनती, मजदूरों को प्यार करने वाला तथा इस प्रकार उनसे डेढ़ गुणा काम लेने वाला, तरक्की पा गया था पर जीवन एक और इस प्रकार अर्पण कर बैठा था कि नौकरी को केवल एक शगुल समझे बैठा। हमारी तरह वह भी युद्ध के झमेले में से भारत के लिये भलाई तथा स्वतंत्रता के अवसर मिलने की प्रतीक्षा में था। पर दो साल युद्ध बीते भी अभी कोई ऐसे असार नहीं दिखाई दे रहे थे, जिससे बेचारे भारत की स्वतंत्रता का कोई उपाय बनता दिखाई दे। उसने हमारे साथ इस बात की सहमति प्रकट नहीं की कि हम इन जंगलों में भटकते फिरें। बाबू का विचार था कि यदि हम बैंकांक से सीधे पश्चिम की ओर होकर ऊपर रंगून जा पहुंचते तो अच्छा था। पर खैर अब तो हमारा यही रास्ता था और अब पीछे लौटने वाली बात ही कोई नहीं थी। आगे ही आगे की तीव्र इच्छा थी। सोढ़ी की बातों की चर्चा करके बाबू कर्म सिंह ने कहा कि यह व्यक्ति बुरा नहीं है और जो कुछ इसने आपको कहा है, ठीक ही कहा है। पर आप लोग अपना बचाव स्वयं करें। यह तो सरकार का खरीदा हुआ व्यक्ति है। सोढी की बातें ही कर रहे थे कि वह आ गया। अतिथि सत्कार आदि हो चुका तो वह पूछने लगा 'बाबू जी आपका क्या प्रोग्राम है ? आपने तो कहीं नहीं जाना ?'

बाबू : नहीं मैं तो कहीं नहीं जा रहा, पर मेरे मित्र कुछ दिन ठहर कर आगे को जायेंगे।

सोढ़ी : देखों बाबू जी। मैं आपको पहले भी कई बार सावधान कर चुका हूं। अब फिर कर रहा हूं। युद्ध के दिन हैं, अंग्रेजों को अपनी जान की बनी हुई है। इनका टेंटुआ शत्रुओं ने दबाया है और आगे इन्होंने भी किसी का

लिहाज नहीं करना। आप स्वयं समझदार हैं, समय समय की बात होती है, अत्यन्त चतुराई तथा समझदारी से चलने की आवश्यकता है। बाद में ऐसे ही सारा जीवन पछतावा सा रह जाता है। यही बात मैं इन्हें, अपने मित्रों को कहूंगा। युद्ध के समय थोड़ी सी भी ग़लती फांसी लगने का कारण बन सकती है। और आप जानते ही हैं कि शासकों का कोई विश्वास नहीं होता, आज इधर, कल उधर।

बाबू : तो सोढी जी, कोई काम की बात कीजिये न स्पष्ट बताइये, क्या चाहते हैं?

सोढी : मैं क्या चाहता हूं, यही चाहता हूं कि मेरे भाई, आप जैसे साधु तथा ईश्वर के प्रिय भक्त, इन मित्रों जैसे सज्जन, भोले, आनन्द लूटें, जीवित रहें, ऐश करें, मैं क्या चाहता हूं। मेरे स्थान पर कोई और होता तो अब तक न जाने आप कहां होते।

बाबू : पर इधर मार्ग में कोई ख़तरा तो नहीं?

सोढी : ख़तरा सियामियों से नहीं, ख़तरा चीनियों से बहुत है। आप जानते हैं कि चीनियों को नमटू से लेकर कोचीन की सीमा तक चप्पे-चप्पे का पता है। चीनी लोग सियामियों को और शानों को 'टिच' समझते हैं। मैंने सुना है कि दो चार दिन हुए मोंगनाई के पास जो चाँदी की खान थी, जो अब बन्द थी, वहां चीनियों का एक गिरोह (सीमा) पार से आया तथा खान में जो भी काम की चीज़ थी खच्चरों पर लाद कर ले गया है। सुना है कि वहां कच्ची चाँदी के ढेर थे, कुछ कडाहे तथा लोहे का सामान था, कोयला तक सब कुछ उठाकर ले गये है। यदि किसी ने यहां से लोइलम की ओर जाना हो तो ख़तरा ही ख़तरा है। आज कल तो शानियां को भी पता लग चुका है कि युद्ध छिड़ा हुआ है, शायद अंग्रेज़ी राज्य रहे या न रहे।

बाबू : फिर आप इनके लिए क्या सलाह देते हैं, उन्होंने जाना आवश्यक है।

सोढी : मैं तो यह सलाह दूंगा कि या तो मन मार कर दिन बितायें तथा यदि जरूर कहीं सींग तुडवाने हों तो पीछे लौट कर समुद्र के रास्ते या स्थल के मोलमिन वाले रास्ते बर्मा पहुंचने की कोशिश करें। आज कल तो यह जो सामने वाला पत्ता हिल रहा है, इस पर भी अंग्रेज़ की नज़र है।

नौवां अध्याय

बर्मा

अपने प्राणों की चिन्ता होती है। पर प्राण रहते यदि कोई जिम्मेवारी का काम बिगड़ जाये तो बड़ी भारी निराशा और अवमानता होती है। प्राण तो आखिर किसी न किसी प्रकार जाने ही, हैं, पर यदि प्राण रहते हुए भी किसी की अमानत चली जाये और जहां पहुंचानी है वहां न पहुंचे तो इन प्राणों का क्या लाभ। प्रश्न यह था कि रूपया हम साथ लेकर चल पड़े या यदि साथ न ले जाना हो तो कैसे करें। मेरा मन करता था कि यह जो सोढी है, इसके पास पिस्तौल अवश्य होगा। इससे छीन लें। पर शर्मा कहता था कि व्यर्थ ही दुश्मनी क्यों पैदा करनी है। इसका पिस्तौल यदि छीन लिया तो एक तो बाबू जी की ओर से उलाहना मिलेगा दूसरा यह हमारा पीछा करेगा और बर्मा में पहुंचकर भी कहीं गिरफ्तार करवा देगा। बाबू कर्म सिंह ने भी यह सलाह ठीक न मानी। उसने विचार प्रकट किया कि इन जंगलों में कोई ढंग का हथियार नहीं मिलेगा। हां, इसी तरह कोई सरकारी व्यक्ति सेना या अधिकारी काबू आ जाये तो काम बन सकता है। पर इसमें भी खतरा है क्योंकि जब तक आगे भाग निकालने का तथा पकड़े न जाने का उपाय न हो तो हथियार-वथियार के पकड़े जाने का डर है और साथ ही असली काम बीच में ही रह जाने का।

अभिप्राय यह है कि हम निहत्थे ही जंगलों में फंसे बैठे थे और (यहां से) चलना भी जरूर था तथा वह भी तब जब सोढी को हमारा पता न चलें। सोढी लगभग एक सप्ताह चींगमई में रहकर चला गया। पता नहीं उसने क्या रिपोर्ट दी होगी कि वह जो हमें छोड़कर लौट गया था, तो क्यों लौटा। पर हम किसी ओर निकल गये हैं। बाबू कर्म सिंह हमारे काम को बड़ा महत्व देता था। हमसे भी अधिक चिन्ता थी कि यह काम किस प्रकार सफल हो। कम से कम वह इतना चाहता था कि हमें बर्मा- की सीमा में पहुंचा कर किसे अच्छे व्यक्ति को हमारी बांह थमा देवे।

आखिर एक दिन उसने स्वयं यह प्रस्ताव रखा कि यदि हम तीनों व्यक्ति दल सा

बना कर चलते है तो मार्ग में अकारण ही डाकुओं को पीछे लगा लेने वाली बात है और यदि अकेले दुकेले चलते हैं तो उससे भी बढ़कर ख़तरा है। बाबू ने प्रस्ताव रखा कि हम यहीं रहें और वह बर्मा से दो चार अच्छे शक्तिशाली देश-हितैषी ले आयेगा और फिर हमारा भेद भी किसी को नहीं पता चलेगा और साथ ही उधर से शायद हथियारों का प्रबन्ध हो जाये। यह तज़वीज़ चाहे देर लगाने वाली थी, पर थी पक्की पर हमारा मन नहीं मानता था कि हम बैठे रहें तथा बाबू बेचारा हमारी खातिर ख़तरे में पड़ता फिरे। बहुत कुछ सोचने विचारने के बाद यही उपाय ठीक बैठता प्रतीत होता था। बाबू कर्म सिंह इस ओर से परिचित था, बड़ा साहसी था। वह कहता था कि कुछ दिन मन मार कर रहें वह हमें बर्मा म से निकाल कर सीधे मनीपुर के मार्ग से बंगाल पहुंचा देगा। बाबू जी ने अपनी छुट्टी का पत्र लिख दिया, न भी लिखता तो चल सकता था। इतनी दूर के स्थानों में उपस्थिति की इतनी पूछताछ नहीं होती, न हो सकती थी। आखिर एक दिन हमें उसी स्थान पर छोड़ कर कर्म सिंह दो-एक कपड़े साथ ले कर पहाड़ी मार्ग को, जो बर्मा के शान राज्य की ओर जाता है, हो लिया और हम दोनों भी उसके साथ चलकर, उदास से पुनः बंगले में आ पहुंचे।

———

दसवां अध्याय

एक दिन

बाबू कर्म सिह को अपने स्वार्थ के लिए भेज कर हमारे मन बड़े खिन्न हुए। हम दोनों उससे छोटे थे, दोनों जवान थे तथा काम भी हमारा था न कि उसका मजबूरी में अपनी भावनाओं पर काबू पाकर चींगमई उसके बंगले में बैठे रहे। चींगामई एक छोटा सा शहर है, पर रेल का स्टेशन तथा बर्मा एवं चीन के समीप होने के फलस्वरूप व्यापार का भी केन्द्र है, जो इन देशों में होता है। सियाम देश अन्न की उपज, अपनी आवश्यकता से अधिक करता है। वर्षा बहुत होती है तथा जंगल खूब वृक्षों से भरे हुए हैं। चींगमई में देखने के लिए कुछ भी नहीं था। इसके दो स्थान थे जहां थोड़ी बहुत चहल पहल होती है। बैंकांक से एक गाड़ी प्रतिदिन आती है और एक यहां से जाती है। बस इन दो गाड़ियों के आने जाने के समय यदि किसी को ढूंढना हो तो स्टेशन पर ढूंढना चाहिए। दूसरा स्थान इसका बाज़ार है जहां चीनी तथा पहाड़ी लोग अपनी चीज़ें लाकर बेचते हैं।

एक दिन हमने सलाह की कि आज बाहर जंगल की सैर करें तथा ग्रामीण इलाके देखें। जिधर मन किया पगडंडी के रास्ते चल पड़े। चार पांच मील के फासले पर नदी मिली जो नीचे बैंकांक की ओर जाती है। सर्दियों का मौसम शुरू हो रहा था। धानों की फसल काट कर रखी हुई थीं। किनारे पांच-पांच छह-छह फुट चौड़े तथा खेत डाकर। धान की वल्लियाँ (फलियां) ऊपर से काट कर उठने (के गठ्ठर) को खड़ा रहने देते हैं। यह इनके किसी काम नही आती। दूसरी फसल के समय या तो इसे खेत में ही जला दिया जाता है या यह स्वयं ही गल जाती है। दुधारु पशु रखने का बिल्कुल ही रिवाज नहीं है और न ही यह दूध पीते हैं। अब शहरों में चाय-काफी के प्रचलन से कही-कहीं दूध के लिए गऊएं पालते हैं। यहां का भैंसा और भैंस इनके लिए एक समान जुताई के लिए होते हैं। भैंसे दूध देती हैं और वह दूध इतना चिकना होता है कि

दुहते-दुहते ही मलाई आ जाती है। बैल छोटे कद के सुन्दर पले हुए तथा सुगठित होते हैं। इन देशों की खेती एक बड़ा आसान सा धंधा है। जेठ और आषाढ़ के महीने में वर्षा होने लगती है तो घुटनों, टखनों पानी में कंधे जैसा हल जोत दिया जाता है। दो तीन बार इस तरह हल चला कर धान गाड़ दिए जाते हैं। वर्षा होती रहती है और धान कमर तक ऊंचा हो जाता है। जायें और जाकर वल्लियां काट लाए और धीरे-धीरे आवश्यकतानुसार चावल निकाल कर खाते रहें। बाकी छह महीने इनके कई कामों में निकल जाते हैं। एकाध एकड़ सब्जी बाज़ार में बेचने के लिए, खीरे, साग आदि वो लेते हैं, जंगल के वृक्षों से भांति-भांति के फल तोड़ लाते हैं। मछलियां पकड़ीं, कुछ खा लीं, कुछ सुखा कर रख छोड़ीं, इस प्रकार के काम काज बहुत हैं। पहला दिन तो हमारा धान के खेतों में घूमते हुए बीत गया दूसरे दिन हमने दो साईकल लिए और पहाड़ियों की ओर नदी पर पहुंचे तो देखा कि जंगल की गोलियां (मोटी लकड़ी के खण्ड) बैंकांक को, तैरा कर, बेड़ा बना कर, ले जा रहे हैं। नदी पार होकर शीघ्र ही, पहाड़ी ढलान की ओर जा पहुंचे तथा एक सियामी घर में जा पहुंचे। घर के चारों ओर बांसों की कुदरती बाड़ (ओट-सुरक्षा का घेराबन्दी) थी। घर जमीन से लगभग तीन फुट ऊंचा खंभों पर खड़ा था। फर्श और दीवारें तख्तों के थे। आवश्यकता पड़े तो बड़े मोटे बांसों को चीर कर (खपच्चियों को) ग्रंथ लेते हैं तथा अच्छी कामचलाऊ दीवार बन जाती है। घर की छत खजूर की जाति के पत्तों की ढलान वाली बनाई जाती है। वर्षा हो तो पानी बह जाता है, धूप हो तो गर्मी नहीं लगती। घर के छह सात पुरुष अपने अपने काम में लगे हुए थे। दो युवतियां रेशम बुन रही थीं, जो बड़ी मुश्किल से दो बालिश्त चौड़ा था। बुढ़िया रोटी पका रही थी तथा तीसरी युवती एक अन्य ओर धान छांटने की पनचक्की को संभाल रही थी। पानी की धारा ऊपर से लाकर घर के समीप से बहाई हुई थी। एक लगभग छह फुट की काठ की लठ थी जिसका एक सिरा काठ की एक गोल धुरी पर चलता था, पर धुरी में एक (cam) मक्खी लगाई हुई थी। धुरी पानी के ज़ोर से चलती थी। (रुकावटी गोल मक्खी) लट के सिरे को दबाकर दूसरा सिरा उठा देती थी, जिसके नीचे एक गोला लगा हुआ था। जब वह कल मक्खी गुजर जाती थी तो लट्ठ स्वयमेव गिर पड़ता था और ओखली में पड़े धान को छांटा जाता था। पानी से यह काम लिया जाता देखकर हम बड़े चकित हुए। रेशम अधिकांश लोग बुनते हैं। तथा पहनने के लिए उसकी धोतियां बनाते है। यह बहुत मजबूत होता है और झोले भी रेशम के बनाए जाते हैं। भाषा के व्यवधान के कारण हमने हाथ के संकेतों से ही काम चला लिया। हमें देखकर घर वाले प्रसन्न हुए। हमारे लिए तख्तों पर एक चटाई बिछा दी तथा हमें रोटी भी पूछी। एक युवती विवाहिता प्रतीत होती थी। बण्डी के ऊपर से सुन्दर, वायल की घुण्डियों वाली तथा

खुली बाहों वाली कमीज़ (सी) सिर के बाल बना संवार कर शिखर पर मोटा सा जूड़ा किया हुआ, गले में फंदनो वाली रेशमी धागे की काली डोरी, जिसके साथ एक छोटा सा तावीज़ सा लटक रहा था तथा निम्न भाग में टखनों तक लम्बी रेशम की धोती सी पहनी हुई थी। वह जब चलती थी रेशम फर्ट फर्ट करता था। सुन्दर पिण्डलियां घुटनों से नीचे धूल सी उड़ाती प्रतीत होती थी मुख पर चन्दन आदि लगाना आमसी बात है। चाहे यह घर जंगल में था पर इनकी सफाई तथा सलीके का रहन-सहन घर पर एक दृष्टि डालते ही दिखाई देता था। जूते सीढ़ियां चढ़ते ही एक ओर को रखे हुए, प्रति-दिन पहनने के कपड़े टंगनी पर (टंगे हुए) पानी के मटके घडौजी पर रखे हुए, रसोई अलग कुछ नीचे तथा उसका धुआं बाहर की ओर, पशु शाला घर से थोड़ा दूर हटकर। हमने उन से कहा कि वह हमारे साईकल संभाल रखें। हम ऊपर पहाड़ियों की सैर कर आएं। उन्होंने साईकल पकड़ लिए तथा हमारे खाली हाथ देखकर, कन्धे पर बन्दूक रख कर निशाने का इशारा किया पर हमारे पास तो कुछ भी नहीं था, उन्होंने कुछ हैरानी सी प्रकट की तथा वे चुप रहे।

अभी दोपहर नहीं हुई थी जब हम पहाड़ों की ओर चल पड़े। एक टीले के ऊपर जा चढ़े और देखा कि शिखर पर एक छोटा सा ईंटों का पगोड़ा सा बनाया हुआ है। पगोड़ा बौद्ध मत में मन्दिर का रूप समझा जाता है। निचला भाग गोल तथा ऊपर का पतला होता जाता है। शिखर की नोक तीखी होती है। सियामी भी, वर्मा निवासियों की तरह, स्थान-स्थान पर पगोड़े बनाना पुण्य और धर्म का काम समझते हैं। बुद्ध की मूर्तियां आसन लगाये हुए या टेढे लेटे हुए आम हैं। बातें करते हुए हम जंगल में दूर निकल गये। एक डंडा सा हमने सियामी घर से उठा लिया था। आगे जाकर नाला आया जिसमें थोड़ा सा पानी बह रहा था और किनारों पर घनी वनस्पति थीं। हर प्रकार के वृक्ष, आम, कटहल, सेमल, सागवान तथा अन्य लकड़ी के काम आने वाले वृक्ष सिर उठाये खड़े थे। हम नाला पार करके उधर को चले जिधर घनी बनस्पति थी। सहज स्वाभाविक ढंग से चले जा रहे थे कि ऐसे प्रतीत हुआ जैसे जंगल में वात्याचक्र सा चल पड़ा हो। आँखे उठाकर देखा तो-हाथी। हम हाथी से बचने के लिये ज्यों हो भागे, हम नहीं जान सके कि हम किस दिशा में दौड़े हैं। हाथी वास्तव में नाले में से पानी पीकर झाड़ियों में स्थिर खड़ा था, जिस कारण हमें उसका बिल्कुल ही ध्यान नहीं आया। हमारी आहट सुनकर वह चल पड़ा। हमने सुख की सांस ली कि उसने हमारा पीछा नहीं किया। हम चुपचाप बैठकर स्थिर चित होने लगे। यह भी चिन्ता थी कि शायद इस (हाथी) के साथ के और भी हों। थोड़ी देर बैठ कर हम उठे। बड़ी सावधानी से चले कि लौट चलें। अपनी समझ में लौटकर नाले की ओर आ रहे थे, पर डेढ़ घण्टा गुज़र गया पर नाला नहीं आया। एक दूसरे के मुख की ओर देखने लगे,

नाला किधर था, किधर से दौड़े थे, जंगल में न कोई निशानी थी, न पगडण्डी। जिस पगडण्डी को हमने व्यक्तियों का रास्ता समझा था वह शायद हाथियों का नाले की ओर आने का रास्ता था। दिन छोटे हो गये थे, हम अपने अन्दाज़े से नाला ही ढूंढ़ रहे थे। पर आश्चर्य की बात यह है कि नाला हमें नहीं मिला। सांझ उतर आई थी और हम बड़े घबरा गये। पहले जंगल में चल तो सकते थे पर अब तो बड़ा बड़ा कांटों वाला घास था असंख्य जोंके थीं, थोड़ा सा भी रुकें तो शरीर पर चढ़ने लगती थीं। जैसे-जैसे समय बीतता जाता था, हमारा साहस छूटता जाता था। भगदड़ सी मच गई। हारकर शर्मा कहने लगा कि हम रास्ता भूल गये हैं और जंगल में भटक गये हैं। न हमारे पास आग (जलाने) का सामान है, न कुछ खाने पीने का। यदि जोकों और जंगली जानवरों से जान बचानी है तो हमें हर हालत में एक घण्टे या अधिक से अधिक डेढ़ घण्टे में इस भयानक जंगल से बाहर निकलना चहिये। बड़े घबराये कि प्रकृति ने मृत्यु किस प्रकार हर स्थान पर पास ही रखी हुई है। एक ऊंचा और लम्बा सा वृक्ष देखकर हम उस ओर को चले। शर्मा कहने लगा इस पर चढ़ो। मैं कोट और बूट उतार कर चढ़ने लगा। भला अमेरिका के पले हुए तथा घबराये हुए व्यक्ति का वृक्ष पर चढ़ना आसान नहीं है। मैं दो एक बार ज़ोर मारकर वृक्ष पर चढ़ता था, फिर रुक जाता था तो थोड़ा सा नीचे खिसक जाता था। घण्टा तो मुझे डालियों तक पहुंचने में लग गया। आगे चढ़ाई आसान हो गई तो मैं चोटी तक जा पहुंचा। शर्मा नीचे से प्रश्न करता था और मैं ऊपर से उत्तर देता था। सूरज किधर है? कहीं धुआ या आबादी का निशान है? और वह दुर्भाग्य पूर्ण नाला कहीं दिखाई देता है कि नहीं? सूर्य के डूबने से पूर्व और पश्चिम का तो पता चल गया जो शर्मा जी ने वृक्ष के तने पर निशान लगा लिया। मुझे और कुछ दिखाई नहीं दिया, न कहीं धुंआ, न नाला और आबादी का (कोई) निशान। सूर्य अब शीघ्रता से डूब रहा था और हमारे हाथ पांव फूल रहे थे। कुछ सूझता ही न था कि क्या करें क्या न करें। शर्मा बैठकर रेल (स्टेशन) का और चींगमई का ठिकाना ज़मीन पर चिह्न बना कर सोचने लगा कि हम किधर से आये हैं। यदि मन स्थिर हो और ऊपर से रात न उतर रही हो तो इंजीनियर साहिब स्थिति समझ लेता, पर भगदड़ की स्थिति में कुछ भी न बन सका। शर्मा ने फिर मुझे कहा कि सूर्य डूबने लगा है, भोजन तैयार करने का समय है, ज़रा ध्यान से देखूं कि किसी ओर से धुआ निकल रहा है।

हमने अब समझ लिया था कि प्रकाश रहते कहीं पहुंचना असंभव है। सूर्य डूबने लगा था जब मुझे दिखाई दिया कि दूर डूबते सूर्य की दिशा में थोड़ा सा धुआ उठ रहा हैं। मैंने शर्मा को इस धुंए की दिशा हाथ से बता दी और कुछ दिखाई नहीं

दिया। धूम हट गई तथा वृक्ष को जड़ों के पास शर्मा-अंधेरे में खड़ा प्रतीत होता था। अब हमें निश्चय हो गया कि आज की रात हमें यहीं कहीं ही बितानी पड़ेगी, यदि जान बची रही तो। भूखे, न पानी, न अन्न, ऊपर से जंगल की रात। बंगले को याद करके मैं कह रहा था कि क्यों सैर का जंजाल ले बैठे। शर्मा ने एक और आवाज़ दी तथा कहा कि एक बार फिर गर्दन उठाकर ध्यान से देखूं और बताऊं कि कुछ दिखाई देता है कि नहीं ? ज़रा ध्यान से धीरे-धीरे वृक्षों में से शिखरों की ओर से देखूं कि कहीं कोई पगौड़ा ही दिखाई देता हो। मैं फिर आँखें फाड़ कर देखने लगा। जंगल के ऊपर अभी प्रकाश काफी था क्योंकि सूर्य अभी डूबा ही था। मैंने बड़े प्रयास से थोड़ा-थोड़ा वृक्षोंके शिखरों में से खोजने की कोशिश की तो एक स्थान पर पगौंड़े की सफेद चोटी दिखाई दी। यह बहुत समीप और ऊंची सी जगह प्रतीत होता था। शर्मा ने जब यह नोट कर लिया तो मैं उतरने की तैयारियां करने लगा। शर्मा ने कहा नीचे आ जाओ पर अभी उतरो नहीं। मैं निचली टहनियों के पास आकर रुक गया। अब अंधेरा हो चला था तथा दिखाई देता था कि इस वृक्ष से परे कहां जा सकते है ? शर्मा कहने लगा अब मुझे भी ऊपर ही चढ़ाओ अन्य कहीं जाने योग्य नहीं है। पर मैं उसे ऊपर कैसे चढ़ाऊं ? आज मुझे याद आया कि पगड़ी में कितने गुण होते हैं ? (कितने लाभ होते हैं) मैंने कहा शर्मा ऊपर बाद में चढ़ना। पहले इन दोनों टोपियों को, जला नहीं सकता, तो, परे फेंक दे, । प्रण किया कि यदि हमें जीवित रहते ही सवेर हो जाती है तो पानी बाद में पियेंगे पहले पगड़ियां खरीद कर सिर पर बांधेगे । मैंने अपना कमीज़ उतारा और शर्मा ने अपना । दोनों को जोड़ा तथा कुछ शर्मा ने ज़ोर लगाया तथा कुछ मैंने उसे ऊपर की ओर खेंचा और रात पड़ने पर हम बुरी हालत में, उस वृक्ष को ही बसेरा बना कर बैठ गये।

प्रकाश ही अन्तिम झलके धुंधली पड़ रही थीं तथा वन में एक संगीत सा शुरू हो गया। जंगल के जीव-जन्तु भी संध्या मनाते हैं। झींगुरों तथा अन्य जन्तुओं ने इस तरह का मध्यम स्वर का अलाप किया कि यदि हमारे अपने मन बेचैन तथा उदासी एवं थकावट से चूर न होते तो हम उस जंगल को ही मंगल कहते। ज्यों-त्यों करके, हम कभी गिरने के डर से कभी टहनियों को पकड़ते, कभी उसे टांगों में लेते, कभी तने से मामूली सा ढासना लगाते, कभी वैसे बैठ कर रात काटते रहे। रात का बीतना हमारे लिये पहाड़ बन गया था, पर और कर भी क्या सकते थे। प्रभु याद आया पर बड़ी विपदा में। मन मार कर बाकी अंधेरी रात के हवाले हो गये। वह रात जब भी याद आती है तो कहता हूं 'प्रभू' ऐसी मुसीबत में किसी को मत डालना । 'जंगल का राग बन्द हुआ' तो सियारों ने चीख चिघाड आरम्भ कर दी पर रात गहरी होने पर जंगल भी निद्रा की लपेट में आ

गया तथा सब ओर सुनसान हो गया।

जब लगभग आधी रात हुई तो वायु का झोंका आया तो वृक्ष भी झूमने लगा। वायु के साथ ही बादल की 'गड़गड़' भी शुरु हो गयी। हवा से वृक्ष झूमता था और हम (जान बचाने के लिये) संभलते थे। बिजली तड़तड़ाने लगी और बादल घिर आया। बिजली की चमक में सारा जंगल चमक उठता था। सर्दियों का बादल न जाने इन देशों में कैसा होगा। एक तो सर्दी से पहले ही मरे जाते थे ऊपर से वर्षा आ गई। हम अपनी निराश्रितता तथा मूर्खता पर, कि जंगल को हमने क्या समझ लिया कि एक माचिस की डिबिया भी साथ न ली, बहुत शर्मिंदा भी थे और खीझे हुए भी। इतने में बादल आ गया और मूसलाधार बरसने लगा। साथ ही कडकता भी और बरसता भी। सिर नीचा करके तथा मुंह बन्द करके हम 'अमरीकी साहिबों' ने सब कुछ झेल लिया। इतना शुक्र था कि मेघ कुल पांच मिनट ही बरसा पर पानी का बहना और वृक्षों से पानी टपकना घण्टा-घण्टा भर सुनता रहा। हवा भी बन्द हो गई। सर्दियों की ऋतु थी नहीं तो हमें वहां उस रात मच्छर ही खा जाता। शुक्र किया कि आसमान फिर साफ हो गया। अभी टिक-टिका होने ही लगा था कि वृक्ष की ओर पत्तों में से एक मोटी सी लकीर धीरे-धीरे आती दिखाई दी। अंधेरे में जुगनू तो साफ चमकता है। यह धुंधली सी चमक, लम्बी लकीर सी, आधी घास में आधी घास से बाहर, (देखकर) हमारे तो सांस सूख गये कि यह नयी बला क्या है? चलती प्रतीत नहीं होती थी पर वृक्ष की जड़ों की ओर बढ़ रही थी। पहले हमने समझा कि यह चींटियों का झुण्ड चल रहा है, पर शीघ्र ही समझ आ गया कि यह तो बड़ा मोटा सांप है। ऊपर बैठो तो इस चमक की चौड़ाई लगभग एक बालिश्त लगती थी और जहां घेरा सा पड़ जाता था वहां चमकदार तवा सा बन जाता था। चमक पता नहीं उसके शरीर की अपनी थी या आसमानी प्रकाश का परावर्तन (reflction)। हमारी जान पर बन आई कि अब क्या करेंगे। इसका मुकाबला कैसे करेंगे। एक बात हमारे लिये आश्वासन वाली थी कि यह बला बहुत धीरे-धीरे हिल रही थी। संभव है कि वृक्ष पर न हीं चढे, लांघ जाये। जड़ों में प्रकाश का ढेर सा लग गया और हमें विश्वास हो गया कि यह ऊपर अवश्य चढ़ेगा। शर्मा कहने लगा कि इसे गन्ध ही हमारे शरीर की, वर्षा के पानी से हमारे शरीरों पर से बहकर जाने वाले पानी के साथ मिलने से, आई है। हमारी, एक ही, मांग कर लाई हुई लाठी नीचे रह गई थी। हम अपने बचाव की बात सोच रहे थे। इतना मोटा सांप फुर्तीला तो हो ही नहीं सकता कि झटपट वृक्ष पर चढ़ आवे और हमें खा जावे। तो हमने यही सोचा कि यदि (यह) समीप आता दिखाई दिया तो छलांग लगा देंगे। इस उद्देश्य के लिये हमारा निचली टहनियों के नजदीक आकर धरती के

समीप पहुंचना आवश्यक था। मैं इधर-उधर होकर हल्की टहनियां, छू छू कर देखने लगा कि हो सके तो दो छोटी लाठियां ही, तोड़-तोड़ कर, बना लें। मोटी-मोटी टहनियां टूटती नहीं थीं तथा पतली किसी काम की नहीं थी, फिर भी एक अच्छी सी टहनी तोड़ ली और सतर्क होकर बैठ गये। सांप अब वृक्ष के चारों ओर घेरा डालने लगा (लिपटने लगा) तथा हमें निश्चय हो गया कि (यह) हमारी ओर आयेगा। हमारे पास घड़ियां थीं पर अंधेरे में कुछ दिखाई नहीं देता था। बिजली की चमक में देखा था तब डेढ़ बजा था। हमने अनुमान लगाया कि अभी ब्रह्म मुहूर्त होगा और समय तीन और चार के बीच का होगा। मुसीबत में शायद समय भी धीरे-धीरे बीतता है। हमारा अनुमान था कि सांप यदि बहुत जल्दी भी चढ़ा तो घंटा डेढ़ घंटा तो लगा ही देगा। हम उसके भूतों की तरह चमक रहे शरीर के मध्य भाग की ओर ध्यान केन्द्रित किये बैठे थे। ध्यान से देखा तो हमें उसकी आंखें भी चमकती हुई दिखाई दीं। वैसे भी सांप अर्ध सुप्त सा (लग रहा था) जैसे कभी उपर आने की सोच रहा हो और कभी रुक जाता हो। विशेष हिलता डुलता सा प्रतीत नहीं होता था, पर यह बात पक्की थी कि धीरे-धीरे ऊपर को अवश्य आ रहा था। मैंने टहनियों के टुकड़े आदि उसकी ओर फेंकने की कोशिश की पर यह तो प्रतिक्रिया करता ही नहीं था। हम ज़मीन से लगभग बारह फुट ऊंचे बैठे थे तथा वह लगभग एक तिहाई हिस्सा ऊपर चढ़ आया था। पौह फटने लगी थी जब यह आधा हिस्सा ऊपर आ गया था और हम छलांगे लगाने के लिये तैयार होने लगे। शर्मा कहने लगा, उतावली मत करना। पहले तुम छलांग लगाना, फिर मैं एकाध मिनट ठहर कर छलांग मारुंगा। वृक्ष के टहने यदि वट वृक्ष की तरह बाहर ही को फैले होते तो हमारे लिये (छलांगे लगाना) आसान हो जाता था। अब तो हमारे लिये यही (उपाय) था कि जब इस अजगर का मुख हमसे तीन चार फुट (परें) रह जाये तब वृक्ष से टहने को धकेल कर 'जड़ो से' (दूर) बाहर की ओर छलांगे लगायें। हमें अब कुछ आशा सी हो ही गयी कि प्रकाश होने वाला है। आधा घंटा और इसी प्रकार बीत गया तथा प्रकाश की अपेक्षा उल्टे अंधेरा अधिक घना हो गया और हम डर गये कि कहीं हमें यह अचानक ही न आ दबोचे। मैंने छलांग लगाई और पीछे ही शर्मा ने, तथा हम सकुशल नीचे आ गये। कुछ घास के कारण तथा कुछ वर्षा से (धरती) नर्म होने के कारण हमें छलांगे लगाने से कोई चोट नहीं आई। हम अब नीचे थे और साँप ऊपर। मालूम होता है कि सांप को उतनी संज्ञा शून्यता नहीं थी। हमारे नीचे आ जाने पर वह थोड़ी देर को रुक गया, पर कुछ देर रुक कर ऊपर की ओर ही चढ़ने लगा। हमें अब साफ दिखाई देने लगा था। वह लगभग दस गज़ लम्बा तथा पतली

जंघा जैसे मोटा था, जिह्वा एक बालिश्त भर बाहर निकलती थी। शर्मा कहता था कि इस बला को छोड़ें तथा अपना रास्ता ढूंढे। पर मैंने कहा कि निशान तो इस वृक्ष के तने पर उसने ही लगाये हैं। हम दूर होकर देखने लग पड़े। हमारे लिये तो वह अचम्भा था। सांप जब पहली डाल के समीप पहुंच गया तो वृक्ष की लपेट छोड़ दी तथा सीधा डाल के ऊपर को हो लिया। डाल के इर्द-गिर्द वह लिपटा नहीं अपितु उस पर सीधा लम्बा होकर लेट गया तथा कुछ इस ओर तथा उस ओर लटकने लगा। हम बड़ा घास पार करके डरते-डरते छिप कर बैठ गये तथा हमने देखा एक चौपाया जानवर धीरे-धीरे आया। संभवत: गीदड़ था या और कुछ, पर यह स्पष्ट महसूस होता था कि वह भी हमारी गन्ध की टोह में तथा वृक्ष के चारों ओर सूंघता फिर रहा था कि लगभग एक मन भार उसकी पीठ पर ऊपर से आकर गिर गया। वह दौड़ने लगा तथा उसने सांप को लगभग दो फुट ही खेंचा था कि जीभ निकल आई और उसकी बस हो गई। सांप की जकड़ इतनी चढ़ी कि वह वहां से हिल ही नहीं सका। शर्मा का दिल इतना भयभीत और विचलित हुआ कि वह मुझे जबर्दस्ती इस भयानक तथा लहू जमा देने वाले दृश्य से खेंच कर ले चला।

चढ़ते सूर्य से कुछ अनुमान सा लगाकर हम तेज़ी से चल पड़े शरीर में शक्ति नहीं थी पर प्राण बड़े प्यारे होते हैं। दोपहर से पहले पहले ही हम रेलवे लाइन पर पहुंचे जो पता चला कि हमसे चींगमई पांच मील नीचे की ओर हैं जब तसल्ली हो गई कि अब घर पहुंच जायेंगे तो बैठकर दम लिया तथा कुछ बेफिक्री में तथा कुछ अपनी नासमझी पर दुःख महसूस करते हुए चींगमई के स्टेशन पर पहुंचे और वहाँ से बंगले (पर) पहुंच गये।

—0—

ग्यारहवां अध्याय

बाबू कर्म सिंह

बाबू कर्म सिंह के बारे में यहां पूरा हाल बताना जरूरी है। बाबू कर्म सिंह उन्नीस सौ चार पांच में बर्मा आ पहुंचा था। पढ़ाई आदि कुछ नहीं थी, पर समझ बहुत थी। सर्वप्रथम रंगून में ठेकेदारों के पास मुन्शी आदि का काम करता रहा तथा फिर काम सीखकर ओवरसीयर बन गया था। 1907-08 में जब लाला लाजपतराय जी जिमीदारी आन्दोलन के सिलसिले में पकड़कर मांडले लाए गए तब बाबू कर्म सिंह उन्हें देखने के लिए विशेष रूप से मांडला गए। वाकफीयत के कारण किले के अन्दर गए तथा लाला लाजपतराय को नमस्कार की। लाला लाजपतराय ने अपनी पुस्तक में इस बात की चर्चा भी की है। जिन्हें अंग्रेजों के उस ज़माने की होश है—जानते हैं कि अंग्रेजों का आतंक बहुत था। सामान्य व्यक्ति लाला लाजपतराय को नमस्कार तो क्या करना उसके समीप भी नहीं होना चाहते थे। अंग्रेजों का इतना भय था। तब एक सरकारी कर्मचारी की यह जानबूझ कर दिखाई गई साहसिकता बाबू कर्म सिंह जैसे व्यक्ति का ही काम था। तभी से बाबू कर्म सिंह बर्मा पुलिस की नज़रों में चढ़ा हुआ था। जब नौकरी छूट गई तो यह सियाम में जा पहुंचा तथा वहां जर्मन इंजीनियरों एवं जर्मन कौंसल का परिचित हो गया। ईश्वर जाने सत्य कितना था। जब युद्ध शुरू हुआ तब बर्मा पुलिस के पास कुछ-एक व्यक्तियों के नाम थे, जिनकी गिरफतारी युद्ध के सिलसिले में अंग्रेजों के लिए एक अनिवार्य काम था। बाबू कर्म सिंह अंग्रेजों के सामने था पर उनकी पकड़ से बाहर था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि बाबू ने सियामी कर्मचारी होते हुए बर्मा में अंग्रेजों की सेनाओं, सेना-शिविरों (छावनियों) के बारे में बहुत सी सूचनाएं जर्मनों को दी थीं तथा इस उद्देश्य से वह छिपछिपा कर कई बार सीमा-पार आता जाता रहता था। यही कारण था कि उसने हमारे काम को अपना बनाकर अपने आप को संकट में डाला तथा सीमा पार करके बर्मा गया। बाबू कर्म सिंह की जर्मनों से मित्रता तथा अंग्रेजों से शत्रुता कोई लुकी-छिपी बात न थी। उसका काम था कि जो देश भक्त बर्मा में से बाहर निकलना चाहते हों उन्होंने चीन की ओर निकाल

देना तथा जो कार्यकर्ता पूर्व की ओर से या अमेरिका से भारत जाना चाहें उन्हें सियाम के रास्ते, जो उन दिनों बड़ा सुरक्षित तथा आसान रास्ता था, बर्मा में पहुंचा देना। लोगों के मन में बाबू कर्म सिंह से बड़ा प्यार था, यही कारण था कि बाबू इतनी देर सुरक्षित रहा। जहां तक हो सके बर्मा तथा सियाम की गुप्तचर सेवा भी उस पर हाथ नहीं उठाना चाहती थी। लगभग उन्हीं दिनों बर्मा की गुप्तचर सेना में एक नया पोठीहारी नानक सिंह भर्ती हुआ था। वह बड़ा मूर्ख, प्रदर्शन प्रिय, बहुत कम पढ़ा हुआ था परन्तु वेशभूषा ऐसी जैसे विलायत से पढ़कर आया हो। उसको बाबू कर्म सिंह की प्रसिद्धि का अपने पुलिस भाईयों की ज़बानी ही पता चल गया था। नानक सिह हैड कांस्टेबल बनकर ही भर्ती हुआ था पर तरक्की के लिए इतना बेचैन था कि यदि उसे अपने पिता को पकड़वा कर भी तरक्की मिलने की सम्भावना हो तो वह यह भी कर देता। अतः उसने अपनी तरक्की के लिए रास्ता यही ढूंढा हुआ था कि बाबू कर्म सिंह जैसे व्यक्ति को गिरफतार करवा दे और अंग्रेजों को माई-बाप बना ले। यह भी याद रखना चाहिए कि युद्ध के समय अधिक प्रमाण और गवाहियों की आवश्यकता नहीं थी। किसी एक पुलिस के अधिकारी का यह कह देना कि अमुक व्यक्ति सरकार का वफादार नहीं है या बिगड़ा हुआ है, पर्याप्त था कि उसे पकड़ लिया जावे। गवाही तो बाद में स्वयमेव बन जाती थी। कितने भुक्खड़ थे वह जो नौकरियां ढूंढते फिरते थे, और कितने वड़े बड़े रुपए-पैसे वाले अधिकारी थे जो उपाधियों और पुरस्कारों के लिए ईमान बेच देते थे, अतः गवाही ढूंढना या बनाना पुलिस के बायें हाथ का खेल था।

चींगमई से चलकर बाबू कर्म सिंह शान राज्यों में से होता हुआ अपने मित्रों सोहनलाल तथा स्वर्गवासी देश भक्तों के पास मांडले जा पहुंचा। युद्ध के समाचार तो उन दिनों समाचारपत्रों में धड़ाधड़ आया करते थे। गुरद्वारा मांडले में कहीं समाचारपत्र पढ़ते हुए असावधानी में वह बोल उठा—'चाहे—करलें, अंग्रेज नहीं रहेंगे।' समीप ही नानक सिंह का सामान्य वेश भूषा वाला सिपाही सुन रहा था। खोज पड़ताल करते हुए उसने पता लगा लिया कि यह कौन है ? व्यक्तियों का बन्दोबस्त हो गया था तथा यह व्यक्ति जिसने सूचना दी थी उन्हीं व्यक्तियों में भर्ती हो गया। सात व्यक्तियों ने निश्चित दिन टींजरे के गुरद्वारा में एकत्रित होना था। उधर बाबू कर्म सिंह को भी पता चल गया तो वह जल्दी-जल्दी सियामी सीमा पार करने के लिए दौड़ा परन्तु नानक सिंह ने उसे सीमा से बीस मील इधर ही पकड़ लिया। बाबू कर्म सिंह था बड़ा शांत स्वभाव,, मामूली बात पर क्रुद्ध नहीं होता था। एक बड़ी विशेषता उसमें यह थी कि लोग तो माला फेर फेर कर ईश्वर को याद करते हैं, वह मन से शुरू से ही ईश्वर का भक्त था। यही कारण था कि उसके विरोधी भी उसे नफरत नहीं करते थे, अपितु वश चलता तो सहायता करते थे। वह सामान्य लोगों को और सी. आई. डी. को अपना

शत्रु नहीं समझता था। यह एक आम प्रचलित बात है कि एक अंग्रेज अधिकारी ने प्रमाण होते हुए भी बाबू के विरुद्ध कुछ कहने से इन्कार कर दिया था। नानक सिंह यदि चाहता तो उस समय दो अतिरिक्त शिकार भी कर लेता, परन्तु उसे बिल्कुल ही पता नहीं था कि हम दो व्यक्ति चींगमई बैठे हुए हैं तथा किस काम में लगे हुए हैं। नानक सिंह ने बाबू कर्म सिंह को उसके पुराने कारनामों के सिलसिले में पकड़ा था। बाबू जी ने नानक सिंह को अपनी उसी शान्ति, प्रेम तथा सहज मधुर भावना से कहा— 'ऐ मेरे सिक्ख भाई। मुझे तो तुमने पकड़ लिया, बड़ा अच्छा किया, धन्यवाद। पर हमारे घर वालों के प्रति तो तुम्हारा कोई रोष नहीं। उन्हें सन्देश पहुंचाना तुम्हारा कर्तव्य है, तुम मुझे कोई आदमी दो तो सन्देश मैं दे दूंगा' नानक सिंह अकड़ में भी था और बच्चा भी था। अतः इनकार नहीं कर सकता था। उसने एक आदमी को बुलाया, अपने पास से कुछ खर्च दिया तथा कहा कि बाबू जी का सन्देश लो तथा स्वयं सियाम जाकर यह सन्देश पहुंचा कर आओ। अतः बाबू जी का संक्षिप्त सन्देश, 'मैं लम्बी कैद पर चला हूं, घर कोई न रहे, अपनी अपनी व्यवस्था कर लें, हमें उन के जाने के बारहवें दिन के पश्चात यह समाचार मिला। हम झटपट तैयार हो गए तथा हम एक छिपी सी जगह पर जाकर सलाह करने लगे कि यह सब क्या हुआ? हमें अब कितना खतरा है? तथा हम किधर को जाएं और किस प्रकार जाएं?

ज्यों ज्यों हम अपने देश के समीप पहुंच रहे थे त्यों त्यों हमारी मानवीय स्वतंत्रता कम होती जा रही थी तथा हमारी गर्दनों में अंग्रेज़ी साम्राज्य का फंदा कसता जा रहा था। पहली चिन्ता हमें यह भी थी कि बाबू कर्म सिंह किस बात के कारण पकड़ा गया? क्या पुलिस हमारे लिए भी तैयार बैठी है? क्या बर्मा की पुलिस को हमारे काम का पता लग गया है? यदि नहीं लगा तो कब तक लग जाने की आशंका है? क्या बाबू कर्म सिंह की गिरफ्तारी में बुलडाग का हाथ है? यदि है तो हमारा बर्मा में पहुंचना किस प्रकार हो सकता है? यह सारी बातें हमारे सामने थीं। सब बातों पर सब दृष्टियों से विचार करने पर यह निष्कर्ष निकाला कि अब पीछे लौटना कठिन भी है तथा उससे भी अधिक गुप्तचर पुलिस के मुख में जा गिरने के समान है। निश्चय किया कि जो हो, सो हो, आगे ही चला जाए। यह बात स्पष्ट थी कि अब हमें बर्मा में छिप छिपाकर ही प्रवेश करना होगा तथा इस तरह से विचरना तथा रहना होगा कि जैसे हम बर्मा के ही निवासी हैं। अमेरिकन टोपियां तथा जूते हमने उतार कर फेंक दिए। जो मिला सो धारण कर लिया। कपड़ों पर जो चिन्ह आदि थे, वे भी उतार दिए या मिटा दिए तथा प्रभु का स्मरण करके हम ऊपर की ओर बर्मा के शान राज्यों को लक्ष्य करके चल पड़े। मार्ग में जो कुछ मिलता, खा पी लेते तथा जहां स्थान

मिलता, विश्राम कर लेते। एक कठिन सप्ताह इस प्रकार तथा बर्मा की सीमा पर जा पहुंचे। यहाँ हमने रास्ते और पगडंडियां छोड़कर एक दिन जंगल का अवगाहन किया तथा दूसरे दिन बर्मा की सीमा पार कर शान राज्य में जा पहुंचे। बड़ा सुन्दर, आकर्षक तथा आनन्ददायक इलाका था। कहीं कहीं लोग पशु चराते मिलते थे, नहीं तो सारे घरों में ही छोटा-मोटा काम करते मिलते थे। दोपहर के समय तो पत्तों की झोंपड़ियों में बैठे चौपड़ खेलते ही दिखाई देते हैं। एक चीनी की कटोरी में छनन छनन होती रहती। जिस प्रकार हम कौडियों को ज़मीन पर फेंकते हैं, ये पासे को कटोरी में फेंकते थे और खेले जाते थे। थोड़ी थोड़ी देर बाद, बिना दूध के नमकीन चाय पीने के लिए मंगवा लेते थे। छोटी छोटी कटोरियों में, जिनमें बड़ी कठिनाई से तीन घूंट आती थी, मंगवाते थे। कुदरत ने इनका जीवन बड़ा आसान सा बना छोड़ा था। जब तक जंगल हैं, ईंधन, पशुओं के लिए चारा तथा घर बनाने के लिए लकड़ी की कोई कमी नहीं। कुछ परिश्रम करके बरसातों से मछलियां पकड़ ली तथा सुखाकर बड़े मटकों में रख छोड़ीं, कुछ शिकार मार लिया, थोड़ा बहुत कपड़ा बुन लिया तथा एक छोटा सा खेत मक्की या सब्जियों के लिए तैयार कर छोड़ा। वर्षा की कमी नहीं। यदि रुपया कमाना हुआ तो दुकान कर ली या एकाध एकड़ ज़मीन पर आलू बो लिए। ज़मीनें तो खाली पड़ी है, जितना मन करे, कृषि कर लें। जंगल में से कत्था इकट्ठा कर लिया वह बेच छोड़ा। जंगली लाख इकट्ठी कर ली, वह बेच दी। न यहां चोरी है, न डाका। ज़िन्दगी एक मौज जैसी है। अमीरी तो नहीं है, पर गरीबी भी नहीं है। न कभी किसी ने अकाल देखा है कि यह क्या होता है।

शान लोग, आराम-पसन्द, सहज भाव से बिचरने वाले सरल तथा आनन्द प्रिय होते हैं। एक बड़ी बात यह भी थी कि इनमें सियासी जागृति नहीं आई थी। यह जागृति भी, दुनिया में जन्म लेने की तरह, दुख और कलेशों का स्रोत होती है। बड़े सुखी हैं शान लोग, जिन्हें न तो यह पता है कि देश क्या है और न ही यह कि देश-भक्ति में कितने दुख होते हैं। इन्हें अभी यह भी नहीं सूझा था कि यह उनका देश है, अन्य किसी का नही। जब यह सूझता है तभी सारी कठिनाइयां शुरू होती हैं। एक दूसरे से उलझना शुरू कर देते है। इन लोगों के रंग गोरे होते हैं। ग्रामवासियों के थोड़ा संबलाये से तथा कस्बों में रहने वालों के थोड़ा कच्चे पीले से। नाक छोटे ही होते हैं। हर प्रकार का मांस, चावलों से तैयार की गई मदिरा तथा अन्न के विविध प्रकारों में चावल इनका भोजन है। बरतानवी सरकार ने इन्हें बर्मियों से अलग रखने के लिए तथा इन्हें इनकी प्रवृत्ति के अनुरूप जीवन बिताने का अवसर देने के लिए, इनके इलाके को अलग रखा है। कहीं-कहीं छोटे रजवाड़े को देकर देश का नाम शान राज्य रख

दिया है। रजवाड़े के स्वामियों को सोबुआ कहते हैं तथा इनका रहन-सहन पंजाब के आठ दस मुरब्बों के स्वामी की तरह का होता है।

हम शान राज्य के शहर लोइलम जा पहुंचे जो कि केन्द्र टौंजो से लगभग सौ मील उत्तर की ओर है। लोइलम में उन दिनों थोड़े से सेना के सिपाही थे, डाक्टर तथा एक अमेरिका वासी पादरी एवं शेष निवासियों की संख्या लगभग तीन सौ थी। हमने यहां आकर अपना सारा हुलिया बदल लिया। मैं दाढ़ी रखकर सिख बन गया और शर्मा पंजाबी लालाओं की तरह धोती कुर्ता पहन कर दुकानदार बन गया। एक गठरी कपड़ों की खरीदी थी और हमने मांडले की दिशा में चलना शुरू कर लिया। पर हम किसी प्रकार की उतावली में नहीं थे। मैं गठरी उठा लेता था और शर्मा लोहे का गज़ पकड़ लेता था। इस देश में एक बड़ा सुन्दर रिवाज़ है। प्रत्येक बड़े गांव या कस्बे में एक दिन बाज़ार होता है जिसे बाज़ार का दिन कहते हैं। आम तौर पर बाजार का दिन पांचवे दिन आता है। लोइलम से बीस पच्चीस मील तक सबको पता है कि किस-किस जगह किस दिन बाज़ार लगता है यह बाज़ार के दिन इस तरीके से रखे होते हैं कि प्रत्येक स्थान पर पाँचवें दिन का बाज़ार लग जावे। चाहे रविवार चाहे कोई छुट्टी बाज़ार के दिन में अन्तर नहीं आया। बाज़ार एक मेला होता है जिसका उद्देश्य यह होता है कि समीप के गांवों और बस्तियों के लोग अपनी उपज को बेच सकें तथा अपनी आवश्यकता की वस्तुएं खरीद कर ले जा सकें। बाज़ार के लिये स्थान निश्चित होता है। किसी अच्छी जगह मैदान खाली किया होता है तथा कहीं-कहीं (यह) बस्ती में ही लग जाता है। सवेरे से ही लोग, कोई सिर पर, कोई खच्चरों घोड़ियों पर तथा कोई बैलगाड़ियों पर अपना-अपना सामान लेकर पहुंचने लग पड़ते हैं। लगभग दस बजे तक बाज़ार भर जाता है, दो तीन बजे तक वस्तुओं का लेना देना (विनिमय) होता रहता है। तीन बजे के करीब भीड़ हो जाती है, तथा पांच बजे (तक) सभी अपने-अपने रास्ते चले जाते हैं। इन बाज़ारों में पर्याप्त संख्या पंजाबियों की होती है जो सामान्यतः शाहपुर के इलाके से सम्बद्ध होती हैं। इन पंजाबियों ने एकाध जगह अपना अड्डा बनाया होता है और दुकान खोली होता है। वहां से निकट के सभी बाज़ारों में यह लोग माल लेकर जाते हैं तथा बेचबाच कर अपने अड्डे पर वापिस आ जाते हैं। यदि प्रतिदिन न आ सकें तो दूसर तीसरे दिन पंजाबियों की दुकानदारी सामान्यतः बजाजी की या मनियारों की होती है या कभी-कभी कोई और काम बढ़िया निर्वाह करते हैं और आनन्द लूटते हैं। इन बाज़ारों में लगभग प्रत्येक वस्तु बिकती है तथा बेची जा सकती हैं। सब्ज़ी तथा फल तो उसी क्षेत्र के होते हैं—आलू, मटर, सेम आदि।

बजाजी तथा रेशम प्रत्येक तरह का (मिलता है) एक ओर शराबियों के लिये शराब भी होती है। मांस अनाज आदि सभी तरह के आभूषण बेचने वाले सुनार, कपड़े सीने वाले दर्जी, मिट्टी तथा धातु के बर्तन, जूते तथा अन्य छोटी मोटी चीजें सभी मिलती हैं। इन मेलों में मात्र मेला देखने वाले तमाशबीनों की काफी संख्या होती है। जिनके लिये इस प्रकार के मेले जंगल में मंगल का प्रतीक होते हैं। इन लोगों के प्रसन्न चित्त एवं शान्त स्वभाव होने का प्रमाण इस एक बात में ही मिल जाता है कि बाजारों में सैकड़ों की संख्या में पुरुषों और स्त्रियों की भीड़ होने पर भी कभी कोई झगड़ा लड़ाई आदि होती नहीं दिखाई देती। एक दो सिपाहियों का नाम मात्र प्रबन्ध होता है और वह भी वर्दी पहने नहीं होते। इन लोगों का नियम अंग्रेजों की (Live and Let live) कहावत के अनुरूप 'जिओं और जीने दो' प्रतीत होता है। पंजाबियों ने शान स्त्रियों के साथ विवाह किये हुए हैं। उनमें से कोई गाड़ी हांकता है, कोई खेती करता है तो कोई मिली जुली (वस्तुओं की) दुकानदारी।

मैं तथा शर्मा इन बाजारों में जाते थे, कुछ न कुछ कमा लाते थे तथा साथ ही धीरे-धीरे नीचे की ओर बढ़ते जाते थे। अब हमने टौंजी पहुंच कर छोटी सी दुकान किराये पर ले ली तथा महीना भर यहां रह कर हालात से परिचित होने तथा बाबू कर्म सिंह के बारे सूचना प्राप्त करने की सलाह की।

टौंजी शान राज्यों की राजधानी अर्थात् केन्द्र कहलाता है। एक बड़े ऊंचे टीले को छाया वाले मैदान में यह छोटा सा शहर बसा हुआ है, जहां से ऊंचे पहाड़ शुरू होते हैं। सेना की बटालियन है, एक स्कूल है तथा यूरोपियन भी यहाँ रहते हैं। टौंजी से नीचे की ओर चालीस मील की दूरी पर शान राज्य का ठण्डा पहाड़ी शहर कल्लो है जो कि रेल का स्टेशन भी है। कल्लो में टौंजी तक का इर्द-गिर्द का इलाका शानियों का गढ़ है। सारा इलाका दर्शनीय है तथा सैलानियों का आकर्षण स्थल है। पंजाबी बहुत हैं तथा हैं भी अच्छा निर्वाह करने वाले, इंजीनियर, डाक्टर, ठेकेदार तथा व्यापारी। इस इलाके के इतिहास पर दृष्टि डालें तो पता चलेगा कि असल में भारतीयों के परिश्रम से (पंजाबी ओवसीयर तथा ठेकेदार एवं उड़ीसा के कुली), यह इलाका इस प्रकार का बना है, जैसा कि यह है। मांडले से आने वाली पक्की सड़क कल्लों में से होकर हो हो के रेलवे स्टेशन तथा हवाई अड्डे होकर टौंजी से ऊपर सियामी सीमा तक चली जाती है। कल्लो एक सुन्दर शीतल शहर है, जैसे पंजाब में कसौली या सोलन (अब ये स्थान हिमांचल प्रदेश में है।) जब अंग्रेज आये तब साथ ही पंजाबी सैनिक पंजाबी श्रमिक तथा

पंजाबी ठेकेदार आये। जिस समय एक देश बन जाता है, रेलें पहुंच जाती हैं, सड़कें बन जाती है, डाकघर तथा अस्पताल खुल जाते हैं, तब बनी बनाई वस्तु को 'हमारी' कहने वाले तथा 'स्वामित्व, जतलाने वाले बहुतेरे आ जाते हैं। पर पहला काम मेहनत, कठिन श्रम, कठिनाईयां झेलना, कष्ट कारक स्थिति को संभालना आदि काम, जिसे आधार भूत कार्य कहा जाता है, पंजाबी संभालते हैं। अनछुए जंगलों में जा पहुंचना, अपरचित अजीब अजीव लोगों में जाकर रहने लग पड़ना उनसे काम लेना तथा स्वयं काम करना ये सब साधारण व्यक्तियों का काम नहीं। शान राज्य इसी प्रकार के जंगल थे। अब पर्यटन तथा व्यापार के लिये आकर्षक बने हुए हैं। साथ ही उत्तर पूर्व की ओर चीनी सीमा लगती है। अंग्रेज़ों के अधिकार से पहले शान राज्य चीनियों द्वारा लूटखसूट करने का मैदान बना हुआ था। अब भी जब मौका मिले चीनी लोग सीमा पार से आकर छीना झपटी करके चले जाते हैं पर अब बहुत कम। बर्मा का यह सारा इलाका, नागा इलाके समेत, जो कि आसाम से लगता है, एक प्रकार से पंजाबियों के परिश्रम और बल पर ही सभ्य दुनिया में शामिल हुआ है। नागा पहाड़ियों में दास प्रथा प्रचलित थी जो कि अंग्रेज़ों के आने पर बन्द हुई। यहाँ के कई कबीले अब तक मानव भक्षी हैं। पर ज्यों-ज्यों बाहर का प्रभाव पड़ रहा है, सुधार हो रहा है तथा सभ्यता के फलने-फूलने के लिये मैदान बन रहा है। राजनैतिक पार्टियां आती रहेंगी और आ आ कर अपना-अपना राग आलापती रहेंगी। शासन एवं प्रशासन के भूखे बन-बन कर मिटते रहेंगे। पर यह हाथों द्वारा किये हुए काम, रेलों की पटरियों पर बिछाये हुए पत्थर, कन्धे तुड़वा-तुड़वा कर लाई हुई लोहे की पटरियां, जंगलों को साफ करके बनाये हुए समतल मैदान, जंगली जानवरों तथा बीमारियों से किये गये मुकाबले, इन कृत्यों को कोई नहीं मिटा सकता। ये कृत्य किसी एक के लिये नहीं, मित्रों शत्रुओं सभी के लिये हैं। अवश्यमेव इन कृत्यों का फल उन्हें ही जाना चाहिये जिन्होंने ये किये हैं।

बारहवां अध्याय

शान देश

ईश्वर की धरती पर क्या क्या विचित्र रंग हैं, गिने नहीं जाते। प्रत्येक देश के अपने रंग हैं, अपने रिवाज हैं। कितना विचित्र कि ईश्वर की सृष्टि करोड़ों की संख्या में है पर एक की आकृति दूसरों से नहीं मिलती। दुनियां के पटल पर मनुष्यों का रहन-सहन भी इसी प्रकार विविध भांतियों का है। जहां जायें नये प्रकार के लोग हैं, नये ढंग का रहन-सहन। कुदरत केवल मिट्टी और पानी दो चीजों की बनी है पर इन दो चीजों से ही वह इतने रंग पैदा करती है कि गिने नहीं जा सकते।

टौंजी का बाजार बहुत बड़ा होता है क्योंकि यह बड़ा शहर है। इस (बाजार) से तीसरे दिन झील 'इनले' के किनारे एक बाजार लगना था जहां हमने पहुंचने का संकल्प कर लिया। इस स्थान का नाम मैं अब भूल गया हूं पर उसकी तसवीर तथा वहां भी कुछ मैंने देखा वह मेरे दिल में उकेरा हुआ पड़ा है। एक खच्चर किराये पर लेकर पहले हम टौंजी की पहाड़ी से उतरे। 'कल्लों' वाली सड़क से बायीं ओर को एक पक्की सड़क मांगस्वे को जाती है जो कि शहर कहलवाता है। मांगस्वे शहर पहाड़ों की दून (बीच की नीची जगह) में नीची सी जगह पर है। यहां से इन्ले झील शुरू हो कर लगभग पन्द्रह मील तक चली जाती है। वास्तव में दो पहाड़ों के मध्य यह एक नीची दलदल वाली जगह है जहां ऊपर से पानी आकर यह झील बन गई है। झील गहरी नहीं है, श्री नगर की 'डल' झील की तरह बूटियां पानी में खड़ी दिखाई देती हैं। मांगस्वे एक प्रकार से झील का ऊपरी (सिरा) अग्र, भाग है। यहां एक शानी राजा है जो बहुत अच्छा है तथा धनी कहलवाता है। पंजाबी दुकानदार काफी हैं। पानी के कारण यहां मलेरिया बहुत फैला रहता है। एक डाक्टर ने हमें बताया कि यहां अस्पताल में प्रति दिन रोगियों की संख्या छह सात सौ की है। लोगों को आदत है कि वैसे ही चाहे छिगुनी पर मामूली फुन्सी हो जाये तो डाक्टर के पास जाते हैं तथा दवाई चाहे मिले चाहे न मिले रजिस्टर में नाम दर्ज करवाना ही अच्छा समझते हैं। मांगस्वे से

नौकाओं में एक अन्य छोटे से कस्बे फोर्टस्टैडमैन जाना पड़ता है। फोर्टस्टैडमैन झील के पूर्वी किनारे पर बसा हुआ एक पुराना गांव सा है जहां की आबादी अधिकतर पंजाबियों, गुजरातियों तथा सिन्धियों की है जो कि दुकानदार हैं। झील में ठेली हुई छोटी नौकाओं से डर लगता है, पर यहां के निवासी कहेंगे कि डर की कोई बात नहीं इस झील में मछलियों का शिकार बड़े अजीब तरीके से किया जाता है। नौका में बैठकर शिकारी पानी की ओर ताक लगाये रखते हैं। जब उन्हें बुलबुला उठता हुआ नज़र आता है तो एक तीखा तीर, ऐसा अन्दाज़े से, ताक कर मारते हैं कि बिंधी हुई मछली ऊपर आ जाती है। झील के दोनों ओर ऊंचे पहाड़ है तथा झील में किनारों पर स्थान स्थान पर बस्तियां है जिनका निर्वाह मुख्यतः मछलियां पकड़ने से होता है। हमने फोर्ट-स्टैडमैन में रात बिताई तथा पौह फटने से पहले ही नौका में जा बैठे, क्योंकि जहां बाज़ार लगना था वह स्थान पन्द्रह मील नीचे झील के निचले तट के समीप था। प्रातः काल पानी में नौका विहार सी एक अनूठी आनन्दमयी सैर है। टिका हुआ दर्पण जैसा जल तथा नौका जब किनारे से चली तो पानी में तैरती बूटियों के साथ रगड़ खाकर 'घिसरन' की आवाज़ देती थी ? हमारे साथ कुछ अन्य दुकानदार भी थे। फोर्ट-स्टैडमैन के व्यापारियों ने पूरी नौकायें किराये पर ली होती हैं, साथ ही वह दूसरे व्यक्तियों को भी बिठा लेते हैं। झील के मध्य में जाकर नौका का रूख सीधा दक्षिण की ओर झील के निचले सिरे की ओर कर लिया गया। नौका चालक चार पांच नव-युवक थे। पौह फटने से पहले गति सामान्य रही जब प्रकाश होने लगा तो उन्होंने गति तेज़ कर दी। उन के चप्पू चलाने का तरीका हमने कभी कहीं अन्यत्र नहीं देखा। नौका के किनारे थोड़ा सा चौड़े होते हैं जहां आदमी का पैर अच्छी तरह टिक जाये। चप्पू चलाने का आम प्रचलित तरीका तो यह होता है कि मल्लाह नौका के एक ओर बैठे जाये तथा चप्पू को दोनों हाथों से पकड़ कर पानी को पीछे धकेले। यह मल्लाह जब इस प्रकार कुछ देर चप्पू चला हटते थे तो चप्पुओं के गिर्द एक टांग को लपेट लेते तथा चप्पू का ऊपर वाला सिरा हाथ में पकड़ लेते। दाईं ओर वाले मल्लाह दायां पैर तथा दायां हाथ प्रयोग करते थे तथा बाईं ओर वाले बायां पैर तथा बायां हाथ। एक पैर के बल पर अपना सन्तुलन बनाकर यह दूसरे पैर और हाथ के साथ इतना जोर से चप्पू चलाते थे कि नौका की गति दुगुनी हो जाती थी हम इस करतब को देखकर चकित होते थे। हमें बताया गया कि इस प्रकार चप्पू चलाने वाले यह लोग किसी अन्य कबीले में से आकर यहां बसे हुए व्यक्ति हैं। हमने देखा कि उनके कद शानियों से ऊंचे तथा रंग काले थे। नाक छोटे नहीं थे जो कि आम मंगोल कौम का बड़ा चिह्न है। उनके शरीर गठीले तथा वह वहीं की बोली बोलते थे। झील के पानी में बूटियां भी है तथा कई स्थानों पर ऊंचा, लम्बा, सुदृढ़ तथा चारे की किस्म का घास भी है जो पानी से

ऊंचा खड़ा है। नौकाएं खड़ी करने के लिए स्थान-स्थान पर बांस गाड़े हुए थे। कहीं कहीं मोटे लकड़ी के स्तम्भ गाड़ कर ऊपर लकड़ी के घर बनाये हुए थे। हम बाज़ार वाले स्थान पर सात बजे के करीब पहुंच गये तथा अपनी दुकान सजाने लगे। दुकान पांच मिनट में बन जाती है। बांस गाड़कर चारों ओर चटाईयां इतनी ऊंचे बांधी जाती हैं जिससे धूप से बचाव हो सके बस दुकान तैयार हो गयी। दस बजने तक पंक्तियों में दुकानें लग गई तथा मेला भर गया। यह बाज़ार केवल आज के क्रय-विक्रय के लिए नहीं । गांव के दुकानदार थोकमाल कई बार इकरार पर ले जाते हैं। वह अपना लेन-देन, ज़बानी, मामूली याददाशत के सहारे लेते हैं। इस बाज़ार में देखोगे कि पंजाबी भी हैं। गुजराती भी है, सिन्धी भी हैं, मूट्ठी भर मुसलमान तथा कोई मदरासी भी (हैं) बाज़ार का काम अलग श्रेणियों में चलता हैं एक है सबसे छोटा दुकानदार तो सब्ज़ी फल आदि सब कुछ बेच बटोर मुक्त हो जायेगा तथा अपने काम के पैसे कमाकर घर के लिए कुछ कपड़ा, मिठाई तथा अपने व्यवसाय के लिए एकाध औज़ार खरीदेगा। यह असल में दुकानदार नहीं, यह तो शिल्पकार है जो अपनी बनाई चीज़ें बेचने आया है। इससे बड़ा दुकानदार शानी है जो भारतीय व्यापारियों से माल खरीदकर अपने गांव को ले जायेगा तथा सबसे बड़े हैं भारतीय दुकानदार जो थोक तथा परचून माल बेचते हैं।

बाज़ार व्यापारिक भी है तथा मेला भी। इस छोटे से स्थान में लगभग एक हज़ार व्यक्ति इकट्ठा हो गए हैं, जो सांझ से पहले-पहले हज़ारों रूपयों के माल का क्रय-विक्रय कर लेते हैं। शानी आदमी तथा स्त्रियां दुकानों में बैठते हैं। बोली अधिकतर शानी बोली जाती है या कुछ थोड़ी बर्मी। बाज़ार के एक चौथाई लोग तो पहले दो घण्टों में ही (सब कुछ बेच कर) निपट चुके हैं। एक स्थान पर एक शानी एक दोतारा (वाद्य) सा लेकर गाने लग गया है तथा भीड़ चारों ओर घिर आई है। शानी स्त्रियों की सुन्दरता उनके गोरे रंग या शरीर में नही, अपितु उनकी सादगी और भोलेपन में होती है। वह देखो एक प्रौढ़ा गरीब, शानी रूखे काले कपड़े पहने, हाथ में चावलों की शराब का गिलास लिए जाती है। वह कौन जाने बेचती है या किसी अपने व्यक्ति के लिए ले जा रही है। चेहरा बताता है कि स्वयं भी रंगी गई है। वह जो गुजराती युवक कोट पहने निरुद्देश्य घूमता नज़र आ रहा है वह बेकार नहीं, उसकी जेब में आठ दस तोले पत्ते का सोना तथा दूसरा सोना है। वह घूमकर सोना बेच रहा है। दुकान की उसे आवश्यकता ही नहीं। यह शानी ग्रामीणों की टोली आ रही है। इनके सिर पर पगड़ियां हैं, मुर्झाई सी परन्तु रेशमी टसरी के रंग की। दूर से भ्रम हो सकता है कि छपार के मेले में जाट चले आ रहे हैं। एक ने हाथ में बिजली का नया

टार्च पकड़ा हुआ है। दूसरा दो सेर के लगभग लाल सूर्ख मांस बांस की छड़ी के साथ लटकाये आ रहा है। तीसरा अपने बैलों के लिए घंटियां लिए आ रहा है। पर सबसे अच्छी बात इन प्रभु के प्यारे व्यक्तियों में यह है कि क्या मजाल कोई उपद्रव या ऊंचा बोले, लड़ने भिड़ने की बात तो दूर रही : कहीं हों पंजाब के जाट जो तरनतारन माथा टेकने जाकर भी शान्त नहीं रहते हैं। शानियों का घर का बुना रेशम बड़ा सुन्दर तथा मज़बूत होता है। काले, लाल रेशम के थैले तीन-तीन चार-चार रूपयों में मिलते हैं। झील का सीलन भरा जलवायु रेशम के लिए विशेष रूप से सहायक है। यह जो लड़की रेशम बेचती हैं, मांगस्वें की रहने वाली है। इसका सफेद रेशम विशेष रूप से प्रसिद्ध है, इसकी नीचे की धोती चालीस रूपये से कम नहीं, पर मज़े की बात यह है कि ऐसा रेशम आधी उमर तक साथ देता है। एक दुकान डाक्टर ने भी आ लगाई है तथा दवाइयां भी खूब बिक रही हैं। पंजाब के छतरी वाले बाबा जी की तरह जो शेर का मुख सामने रखकर भीड़ इकट्ठी कर लेता है तथा दवाइयाँ विशेष रूप से हिमालय की चोटी से लेकर आता है, यहां भी शानी वैद्य बैठे हैं, जो शानियों की बीमारियां सबसे अच्छी तरह समझ सकते हैं। बात क्या बाज़ार क्या है 'एक पंथ, दो काज वाली बात है।' बाज़ार भी है और मेला भी है।

तीसरे पहर मेला छंटने लगता है। गठरियों को काले मद्रासी मज़दूर उठाकर नौकाओं में रखने लग पड़ते हैं। थके और काम से निवृत्त हुए दुकानदारों के लिए चाय का दौर चल पड़ता है तथा दुकानें खाली होने लगती हैं। चार बजे सब चलने लग पड़ते हैं। किसी किसी का हिसाब-किताब अभी नहीं बैठा होता। शाम के समय जब सूर्य अस्त होने वाला होता है, बाज़ार स्थल बांसों, चटाइयों के खाली ढेरों के इलावा कुछ भी नहीं होता।

शर्मा जी ने भी आज लगभग आधी गठरी बेच दी है तथा हल्के से हो गए। कितनी सुन्दर ज़िन्दगी है। प्रतिदिन नये स्थान पर जाना, नए ग्राहकों से मिलना तथा रूपए को गोलमोल घुमाए जाना। शाम को फोर्टस्टैंडमैन होते हुए माँगस्वे पहुंचे तथा एक दुकानदार भाई के घर ठहर गए। कुछ दिन की थकावट के फलस्वरूप तथा कुछ इस दोहरी सी नकली ज़िन्दगी से तंग आकर दोनों चुप्पी धारण करके सो गए। सुबह जल्दी ही जाग आ गई तथा दोनों जब बाहर निकल कर चले तो इधर उधर की बातें करते हुए शर्मा कहने लगा :

शर्मा :—हरनाम सिंह। क्या कोई ऐसी व्यवस्था नहीं हो सकती कि यह रूपया जिसको बच्चे की तरह पेट पर बांधे फिरते हैं किसी ठीक तरह के व्यक्ति को यहाँ दे दें तथा उसके घर से पंजाब जाकर ले लें?

मै :—कोई ठीक तरह का और विश्वासपात्र हो तभी है न।

शर्मा :—वह व्यक्ति अपने हिसाब में यहां जमा करवा दे तथा हमें किसी पंजाब के बैंक का ड्राफ्ट लेकर दे देवे। पर समस्या तो यह है कि सरकार इसे गदर-पार्टी का रूपया कहकर जब्त न कर ले तथा हम खाली के खाली रह जायें। व्यक्ति कोई बाबू कर्म सिंह जैसा हो जो यहां लेकर पंजाब में दे देवे।

मैं : चलो अब तो थोड़ी सी कसर रह गई है। ईश्वर ने चाहा तो जा ही पहुंचेगे पंजाब।

शर्मा :—पंजाब पहुंचने से पहले अभी कई रुकावटें पड़ेंगी। यदि कोई छिपाना चाहे तो छिप भी बड़े शहर में सकता है, जंगलों में इतना छिपाव नहीं हो सकता जितना शहरों में। पर शहर में अन्य मुसीबतें बहुत हैं।

मैं : अब हम कब तक इधर उधर भटकते फिरेंगे।

शर्मा :—मेरा अनुमान है कि शायद रंगून में हमें कोई ऐसा व्यक्ति मिल जाए जो विश्वसनीय भला तथा प्रसिद्ध हो तथा वह हमें पंजाब में रूपया देने का प्रबन्ध कर देवे।

मैं :—तो हम सीधे रंगून (ही) पहुंचे यहां क्या करते फिरते हैं ?

शर्मा :—एक तो बाबू कर्म सिंह के केस का पता करना है तथा यदि हो सके तो सहायता करनी है तथा दूसरे रंगून भी हमने लुकछिप कर ही जाना है। कौन सा छाती ठोक कर स्वच्छंद पहुंचना है। कदम कदम पर होशियारी तथा सावधानी की आवश्यकता है। इस सरकार का जाल बहुत बड़ा तथा बहुत बारीक है। बीच में से निकल जाना तकदीरों के सौदे हैं।

तेरहवां अध्याय

बर्मा

तीन चार सप्ताह शान देश में रहकर हमने मांडले पहुंचने के लिए तैयारी कर ली। बाबू कर्म सिंह के समाचार हमें मिलते रहते थे। बाबू जी के साथ लाला सोहनलाल तथा दो अन्य देश भक्तों के विरुद्ध मुकादमा मांडले में ही चलना था। हम चाहते थे कि किसी न किसी प्रकार बाबू जी से सम्पर्क स्थापित करें तथा जो सहायता हो सके, करें, परन्तु कोई ऐसा उपाय मिलता दिखाई नहीं देता था, बल्कि हमें तो नये सिर से अपने लिए ख़तरा उत्पन्न होने का भय था। अब जब से हम शान देश में आये हुए थे, प्रतीत होता था कि कोई हमारा पीछा नहीं कर रहा। टौंजी से यह कह कर कि हम बजाजी खरीदने के लिए मांडले जा रहे हैं, हम चल पड़े तथा हेरों के रेलवे स्टेशन पर आकर रेलगाड़ी पर चढ़ गए काल्टो से रेल नीचे को उतरने लगी। थाजी जंकशन के पास रेल का पहाड़ियों से उतरना हमने बड़े विचित्र ढंग से देखा। दो तीन मील गाड़ी एक ढलान की ओर चलती जाती तथा किनारे पर आकर रुक जाती। उस स्थान से पिछली ओर का कांटा बदलकर दूसरी ढलान पर हो जाती तथा उस किनारे से फिर और नीचे को। इसी तरह दो तीन मील जाती। उस स्थान से फिर और नीचे को जाती। गोल, गोल धीरे-धीरे ऊपर चढ़ने की बजाये रेल अंग्रेजी के अक्षर 'जैड' बना बना कर चढ़ती हैं और इसी प्रकार नीचे उतर आती है। थाजी की यह पहाड़ी लाइन जो कि छोटी है, रंगून से मांडले को आने वाली लाइन से आ मिलती है। रंगून-से मांडला लाइन भी भारत की चौड़ी पटरी की अपेक्षा छोटी लाइन है। थाजी से मांडला नज़दीक ही है तथा टौंजी से चलकर दूसरे दिन मांडले पहुंच गए। कहने को यह बर्मा देश की राजधानी है, हमें ख्याल था कि यहाँ बर्मा निवासी ही अधिक दिखाई देगें, पर यह बात गलत निकली। बल्कि कहीं-कहीं तो भारतीय अधिक प्रतीत होते थे।

असल में बर्मा देश एक कम जनसंख्या वाला देश होता था। बर्मा के शासकों ने

विदेशियों को प्रवेश न देने का नियम सा बनाया हुआ था, न यह स्वयं ही बाहर के देशों से व्यापार के इच्छुक थे। बर्मा देश के दो प्राकृतिक भाग हैं, एक निचला बर्मा तथा दूसरा ऊपर का बर्मा। निचले बर्मा में वह सारा दक्षिणी इलाका है जो समुद्र के समीप समतल मैदान का है तथा जहां नदियों का जाल सा बिछा हुआ है। इस इलाके में वर्षा अधिक होती है, धान की खेती बहुत होती है तथा आसानी के साथ ही होती है। जंगलों में से खाने, पीने, रहने तथा निर्वाह के अनेकों पदार्थ आसपास ही मिल जाते हैं और लोगों को मेहनत की कम ही आवश्यकता पड़ती है, ऊपर बर्मा (ऊपर वाला बर्मा) आसाम से लेकर चीनी सीमा के साथ-साथ नागा देश के इलाके के पूर्व की ओर शान देश तक तथा नीचे टांगू शहर की लाइन तक सारा ऊपर बर्मा है। बीच के नागा इलाके में उस समय जंगली कबीलों का भी आवास था तथा जनसंख्या बहुत कम थी। बर्मा में जनसंख्या कम होने के कारण लोगों की आवश्यकतायें कम हैं। नागा इलाके में अभी तक कहीं-कहीं मानव भक्षण तथा शत्रुओं को दास बनाकर रखने की प्रथा थी। बर्मा की एक अन्य बड़ी विशेषता है कि इसकी नदियों के दूर तक छोटी नौकायें तथा कोयले से चलने वाली नौकायें आ जा सकती है।

रंगून से पांच छह सौ मील ऊपर यात्री तथा मालवाही नौकायें चलती हैं, जिससे यातायात तथा व्यापार में बड़ी आसानी होती है। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि बादशाह अकबर के समय में बर्मा देश भारत का 'कालापानी' था। उस समय के भारतीय दण्ड की दृष्टि से यहां भेजे गए थे आज भी उनके वंशज मिल जाते हैं। रंगून से लगभग दो सौ मील ऊपर एक हिन्दू जमींदार निवास करता था, जिसे राजा भी कहा जाता था। गन्ने की खेती द्वारा वह छोटे मोटे राजा के समान निर्वाह करने योग्य हो गया था, इस कस्बे का नाम 'जीआबाड़ी' है। जब भारत में बुद्ध मत का प्रसार हुआ तब बर्मा भी उसके प्रभाव में आ गया था पर बर्मा के निवासी संस्कृति एवं दर्शन की दृष्टि से चीनियों से बहुत पीछे हैं। इनका धर्म बौद्ध है तथा ग्रन्थ पाली भाषा में हैं, जो संस्कृत में से निकली है, परन्तु बर्मा निवासियों के जीवन में धर्म या विद्या या अध्यात्म का प्रभाव बहुत कम देखा जाता था। बर्मा के पुरुषों में केश रखने की अब तक प्रथा है दाढ़ी और मूंछे प्रकृति की ओर से ही इनके नहीं होती, या बहुत कम होती हैं। यह सर्वभक्षी हैं। इनकी बनावट स्पष्टत: मंगोलों सी है, कद सामान्य से भी कम तथा रंग प्राय: गोरा होता है पर ग्रामीण या पानी में रहने वाले लोगों का रंग कुछ संवलाया सा होता है। खाने पीने तथा घर बनाने में इन्हें अधिक परिश्रम नहीं करना पड़ता इसलिए इनका जीवन सुखमय है। यह आम प्रचलन था कि जब धान की फसल कटने का समय आता था तब उड़ीसा तथा मद्रास से मजदूर जहाजों में सवार होकर रंगून आ पहुंचते थे। वहां से रेल द्वारा भिन्न-भिन्न स्थानों

पर जाकर, धान की कटाई से रुपया कमाकर पुनः भारत पहुंच जाते थे। सामान्य बर्मा निवासी का जीवन बड़ा सुखी सा है। वर्षा की ऋतु आने पर धान बीज देना तथा फिर खेतों की ओर कभी ही जाना तथा सारी बरसात में घर में ही बैठे रहना। जब पौष माघ आया तब धान कटवा लेने, दो तीन महीने राग रंग तथा नाच, कठपुतलियों के तमाशों में बिता देने। सूखे मौसम में लकड़ी और टिम्बर काटना पशुओं का पालन, जंगल के फल तोड़ लाने, जहां नदी झील या नाला समीप हो वहां मछलियां जा पकड़ना तथा गुज़ारा कर लेना, यह आसान सा कार्यक्रम है बर्मी लोगों के जीवन का। नृत्य रंग आदि का इन लोगों को बड़ा शौक है। जब सुना कि अमुक बस्ती में आज 'पुए' (नाच गाने का तमाशा) है तो बैलगाड़ी जोड़कर सारा परिवार उसमें बैठ जाता है। रात को तमाशा देखकर वहीं सो रहते हैं। प्रातः होने पर बैलगाड़ी जोड़कर घर आ पहुंचते हैं। सहज जीवन, मौजी शरीर को कष्ट न देने वाले, जैसे मिले खाकर पड़े रहना, यह बर्मियों के मोटे लक्षण हैं। बर्मी स्त्रियां, पुरुषों की अपेक्षा अधिक चुस्त और चालाक होती हैं। खेती में भी सहायता करती हैं पर अधिक लाभदायक यह व्यापार में होती है। चाहे बाजार में बैठकर शाक बेचना हो, चाहे शहर में बैठकर लाल (Ruby) बेचना हो क्या मजाल कि यह भाव गिरने दे या बाज़ार में सुस्ती आने दें।

बर्मा के सामाजिक जीवन में स्त्रियों का स्थान काफी ऊंचा है, न तो यह हमारी तरह सारा दिन चूल्हे से बंधी रहती हैं और न ही यूरोप की स्त्रियों की तरह पति के सामने ही पराये पुरुषों के साथ नाचती फिरती हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि घर में बर्मी स्त्री की प्रधानता होती है। बाहर जाकर पुरुष के कामकाज में यह हाथ बंटाती है और सलाह मशविरा भी देती हैं। दुकानदारी तो बर्मी स्त्री के लिये खेल है। हीरे जवाहरात, रेशम, चांदी, सोने आदि की दुकानें सामान्यतः बर्मी स्त्री ही करती हैं। कारोबार के क्षेत्र में विवाहिता और अविवाहिता का कोई भेद नहीं, न कोई अलग पहचान है तथा न ही विधवा शब्द का बर्मी भाषा में कोई प्रयोग ही होता है। जब दिल किया, जिसके साथ दिल किया विवाह कर लिया, बिना किसी रस्म के, बिना बारात के, बिना ब्राह्मण या मौलवी के और जब दिल किया अलग हो गये। स्त्री चाहे अन्य किसी के साथ विवाह कर ले और पुरुष किसी भी अन्य से। बच्चे हो तो बांट लिये जाते हैं न हों तो और भी अच्छा बर्मियों में एक यह भी प्रशंसनीय बात देखी कि यदि लड़का हुआ तब भी खुशी मनाते हैं और यदि लड़की हो तब भी। लड़की पैदा होने पर कोई शोक नहीं होता। रेशम पहनने का बर्मा में बड़ा शौक है, स्त्रियों को (पुरुषों की अपेक्षा) अधिक बर्मी स्त्री बन ठन के रहना अधिक पसन्द करती है। केशों का पालन तथा इन्हें

लम्बे करना शृंगार का मुख्य अंग है। यहाँ तक कि जूड़े को बड़ा बनाने के लिये उसमें अतिरिक्त बाल जोड़ लिये जाते हैं। माथे पर चाँद लगाना तथा अन्य शृंगार के प्रसाधनों का प्रयोग हर रोज़ का काम है। नाचने और गाने का प्रचलन है कि छोटी-छोटी बालिकायें, घरों में, माँ बाप के सामने बड़े शौक तथा उत्साह के साथ शरीर को नृत्य की विभिन्न मुद्राओं में ढालकर प्रसन्न होती हैं। बर्मा में सबसे बड़ा नर्तक फोखेन था, जिसकी आयु उस समय तीस वर्ष के करीब थी। बर्मी स्त्रियां विवाह कराने के मामले में किसी कठोर बन्धन को नहीं मानतीं। उन्हें केवल इस बात का ख्याल होता है कि निर्वाह अच्छा मिलेगा या नहीं। अंग्रेजों करेडियों, मुस्लमानों, पंजाबियों, यहाँ तक कि काले मद्रासियों के साथ भी विवाह किये घूमती हैं। पर स्वभाव की बड़ी तेज़ होती हैं। कई अंग्रेज़ पतियों की दुर्गति इनके हाथों होती देखी गई है। बर्मी-स्त्री, कोई भी अवसर हो, सजधज कर ही बाहर निकलती हैं, चाहे विवाह 'फरा' (बौद्ध मन्दिर) माथा टेकने जाना हो और चाहे कोई मृत्यु हुई हो, पूरी सजावट से निकलती हैं।

बर्मियों का एक सुन्दर रिवाज यह भी है कि यदि मृत्यु हुई हो तो रिश्तेदार एवं नज़दीकी दोस्त मृत्यु वाले (के) घर आ जाते हैं, खाते-पीते हैं, चौपड़ खेलते हैं तथा जब अर्थी (शव) को ले जाना हो तो नाचते, गाते, साथ जाते हैं। बर्मियों में भी शव को अधिक देर रखने तथा सजाकर बचाये रखने का रिवाज़ है। बौद्ध धर्म के अनुसार मनुष्य जीवन के तीन लक्षण है 'अनिस्सा, डोखा, अनाद्य।' 'अनिस्सा' से अभिप्राय है कि मनुष्य जीवन अनित्य एवं मिथ्या है, 'डोखा' अर्थात् जीवन में दुख अवश्य रहता है तथा अनाटा अर्थात् जीवन अनादि है। बर्मियों में धार्मिक जीवन एक रस्म या रिवाज़ का पालना मात्र है, इससे अधिक कुछ नहीं। जब लड़का होश सम्भालता है जिस प्रकार हिन्दुओं में मुण्डन या यज्ञोसवीन धारण की रस्म करते हैं पैसे वाले बौद्ध लोग संस्कार करना पुण्य समझते हैं, यदि अपना पुत्र न हो तो किसी के पुत्र का करते हैं। बर्मी लोग साधुओं को भोजन करवा कर पुण्यदान आदि करते हैं तथा फिर लड़के को साधुओं के साथ ही भेज देते हैं। लड़का प्रतिदिन साधुओं के साथ, प्रात: काल भिक्षा माँगने जाता है उसी वेशभूषा में, उसी तरह चुपचाप। रिवाज़ है कि यदि लड़का चाहे तो तभी से वह साधुओं के साथ रहकर साधुत्व ग्रहण कर ले तथा लौटकर घर न आये।

बर्मा में साधुओं की संख्या काफी है। पीले रंग के वस्त्र पहनते हैं सिर साफ मुंडा हुआ, तथा बाहर साधुओं के डेरे में रहते हैं। सवेरे पंक्ति बाँधकर हाथों में कमण्डलु लेकर भिक्षा मांगते हैं तथा अपने डेरे में आ विराजते हैं भिक्षा में मिला

हुआ अन्न आदि बांट कर खा लेते हैं। इन्हें 'पुंगी' कहा जाता है। पुंगियों को आदेश है कि एक जून भोजन करें, रुपये पैसे को न छुंए, जमीन पर सोये तथा ज्ञान का प्रसार करें। पर बहुत से साधु इस प्रकार के जीवनयापन में असमर्थ होने से विकारों एवं व्यभिचारों में पड़ जाते हैं।

बर्मा देश प्राकृतिक संपदा से भरपूर है। बर्मा की लकड़ी विशेषत: सागवान है। जो सफाई तथा शिल्प कला बर्मा के सागवान में आ सकती है वह अन्य किसी लकड़ी में नहीं आ सकती। ऐसी-ऐसी लकड़ियाँ हैं जो मज़बूती, टिकाऊपन तथा दीमक आदि से बचे रहने में अद्वितीय हैं एक लकड़ी ऐसी है जो धरती में गाड़ देने से गलना तो क्या, बल्कि उसके विपरीत समय बीतने पर पत्थर ही बन जाती है। बर्मा के जंगलों की उपज से सरकार को बड़ी आमदन (आय) है। बर्मा की (Ruby) रुबी साइन दुनिया भर में प्रसिद्ध है। यहां के लालों का रंग धरती पर अन्य किसी जगह उपलब्ध नहीं तथा बर्मा का लाल हमेशा सवाए मूल्य पर बिकता है। चांदी तथा सिक्के की खानें चीन की सीमा के साथ हैं। टीन की तथा लोहे को पान चढ़ाने वाली बुलफ्रम की खानें दक्षिणी बर्मा में हैं। पट्रोल आदि तेल के स्रोत ऊपर (ऊपरी) बर्मा में है तथा वहाँ से तेल निकाल कर पाइपों द्वारा रंगून को भेजा जाता है जहाँ साफ होकर बाहर को भेजा जाता है। कोयले की अच्छी खान बर्मा में कोई नहीं। इस कमी के इलावा बर्मा धातुओं की दृष्टि से बहुत समृद्ध है। बर्मा में रबड़ (Rubber) के वृक्षों की खेती बहुत होती है। बर्मी लोग स्वयं परिश्रम करने से कतराते हैं, इसलिये सभी प्रकार के मज़दूर, अकुशल और कुशल भारत से जाते हैं तथा बर्मा के कारोबार को चलाते हैं। अब तक बर्मा अपनी आवश्यकता अनुसार पूरे डाक्टर, इंजीनियर तथा कुशल मज़दूर पैदा नहीं कर सका। बर्मा का विदेशी व्यापार अधिकतर अंग्रेज़ों के तथा कुछ सीमा तक भारतीयों के अधिकार में हैं। देश की भीतरी तिजारत अधिकांश में चीनियों तथा भारतीयों के हाथ में हैं। छोटी दुकानदारी में मद्रास के चूलिये इतने प्रवीण हैं कि बर्मा के दूर से दूर जंगलों में धंसे बैठे है। जहाँ चाय पान आदि की दुकानें हों वहां आँख बन्द करके निश्शंक समझ लो कि दस इस प्रकार की दुकानों में आठ चूलिये दुकानदारों की होंगी। रेल पर यात्रा करते हुए देखो तो स्टेशन मास्टर शायद ही कहीं-कहीं बर्मी होगा, नहीं तो रेल के सारे कर्मचारी/अधिकारी करंट, अंग्रेज़ तथा भारतीय होंगे। अब जबकि बर्मियों को स्वतंत्रता मिल गई है बर्मा के कैरिन जाग उठे हैं तथा (वह) बर्मियों को सांस नहीं लेने देते। बर्मा में कैरिन कौम एक अलग संप्रदाय है।

कैरिनों का रहन-सहन बर्मियों से मिलता जुलता है पर यह बौद्ध नहीं है और न ही कभी बौद्ध रहे हैं इनकी कहानी अजीब सी है। इनके पूर्वजों की एक कहावत है कि पश्चिम की ओर से गोरे आयेंगे तथा वह कैरिनों को सीधे मार्ग पर चलायेंगे। अत: जब अंग्रेज़ आये, साथ पादरी भी आ गये, जिनमें से अधिकांश अमेरिका निवासी थे। इन पादरियों को कैरनों की इस पुरानी गाथा का पता चल गया तथा उन्होंने इससे असीम लाभ उठाया। जहाँ कैरिन बस्तियाँ थीं वहाँ वहाँ लाकर मिशन स्कूल खोल दिये, चर्च बना दिये, बाइबल को कैरिन भाषा में (उपलब्ध) कर दिया तथा इतना काम किया कि आज सारे के सारे कैरिन ईसाई बने फिरते हैं। बर्मी बहुत ईसाई बने हैं। इस एक बात के फलस्वरूप बर्मी की स्वतन्त्रता गृहयुद्ध बदल गई है।

बर्मा देश आधा से अधिक भारतीय बन गया था। सेना भारतीय, पुलिस भारतीय, बड़े बड़े अफसर अंग्रेज। शुद्ध बर्मी आबादी वाले शहर बहुत थोड़े रह गए थे। यही कारण था कि जब भारत में स्वतंत्रता आन्दोलन चला तो बर्मा में भी इस का प्रभाव हुआ। परन्तु अंग्रेजों ने चालाकी से इस आन्दोलन को भारतीय-विरोधी मोड़ दे दिया। परिणाम यह हुआ कि बर्मा में बर्मी भारतीय प्रश्न उठ खड़ा हुआ। बर्मा की राजनीति में बर्मियों की दो तीन पार्टियां बनीं। सभी इस एक बात पर सहमत थीं कि भारतीयों को यहां से निकाला जाए, 'बर्मा बर्मियों के लिए है। अंग्रेजी साम्राज्य को इस घोषणा से कुछ और समय मिल गया। बर्मा वालों का सारा क्रोध भारतीयों के विरुद्ध अभिव्यक्त होने लगा।

जब हम मांडले पहुंचे तब बर्मा की यही स्थिति थी। सिवाय थोड़े से टूटे फूटे घरों के, जहां शुद्ध बर्मी निवास करते थे, मांडले शहर भारतीयों तथा चीनियों से भरा पड़ा था। मांडले पर अग्रेजों ने अठारह सौ बानवें में अधिकार किया था। बर्मा के राजा थीबा को क़ैद करके भारत भेज दिया था। माँडले का किला एक पुराने ढंग का किला है, जहां बर्मा के राजाओं की निशानियां अभी तक मौजूद हैं। किले के इर्द-गिर्द खाई है, जिस प्रकार पुराने किलों में हुआ करती थी। माँडले के बाज़ार खुले तथा दूर तक फैले हुए थे। पास ही एक बड़ा पगोड़ा है जोकि इतना ऊंचा कि जिसकी सीढ़ियां कोई हृष्ट पुष्ट व्यक्ति भी एक सांस में नहीं चढ़ सकेगा।

बर्मी शब्द 'फिआ' के अर्थ 'हज़ूर' के समान है, जिससे यह शब्द 'प्रभु' का अर्थ भी रखता है तथा जब कभी किसी बड़े अधिकारी या उच्च व्यक्ति को संबोधन करना हो तब भी 'फिआ' का प्रयोग किया जाता है। इसलिए बर्मी पगोडों को सामान्य बर्मी 'फिआ' कहते हैं। बर्मी लोग 'फिआ' बनाने को धर्म समझते हैं चाहे छोटा सा चार

पांच फुट का ही हो। जिस बर्मी ने अपनी कमाई को सफल करना है वह किसी ऊंचे स्थान पर ईटों या पत्थरों का 'फिआ' बना देता है। पर बड़े मन्दिर जो ऐतिहासिक हैं या अब बहुत सा धन खर्च करके बनाए गए हैं, दर्शनीय स्थान होते हैं, मांडले के 'फिआ' की सीढ़ियाँ जब हम चढ़ने लगे तो हमें कहा गया कि जूते उतार दो। जूते उतार देने का आदेश है पर जूतों के रखने का कोई प्रबन्ध नहीं। जूते उतारकर हाथ में पकड़ लिए तथा ऊपर को चढ़ने लग पड़े। 'फिआ' पहाड़ी के ऊपर तथा ऊपर चढ़ना अच्छे स्वस्थ व्यक्ति का काम है। पहाड़ी के ऊपर के मैदान से फिर 'फिआ' की सीढ़ियां प्रारम्भ होती है। 'फिओ' के पास पहुंचने पर सीढ़ियों के दोनों ओर दुकाने हैं जहां फूल और मोम बत्तियां चढ़ाने के लिए बिकती हैं। हमने कुछ पैसे खर्च के फूल ले लिए पर हमारा असली उद्देश्य तो जूतियाँ रखने का था। शिखर पर पहुंच कर मालूम हुआ कि एक समतल गोल चबूतरा है जिसके ऊपर गोलाईदार इमारत शुरू होकर ऊपर की ओर पतली होती जाती है तथा शिखर पर जाकर नोक बन जाती है, जिस के इर्दगिर्द छतरी की तरह घण्टियां लटक रही हैं। 'फिआ' की इमारत नीचे से सारी ठोस है पर गोल परिक्रमा के दोनों ओर मूर्तियां हैं। बुद्ध की भांति भांति की मूर्तियां हैं, कोई चौकडी वाले आसन में, कोई निर्वाण प्राप्त करने वाले आसन में कोई टेढ़े लम्ब पड़े की, कोई बड़ी, कोई छोटी, कोई सादा ईटें चूने की कोई सोने की परतों वाली, ऊपर से सुरक्षा के लिए ढकी हुई तथा हाथों की पहुंच से परे। 'फिआ' में प्रवेश करते ही इक खुली छत वाला स्थान है जहां जाकर सभी मस्तक नवाते हैं तथा बत्तियां चढ़ाते हैं। बर्मी स्त्री पुरुषों का माथा नवाने का ढंग कुछ अपने जैसा ही है, गले में रुमाला डाल लेना, घुटनों के बल पैरों के भार होकर पैरों पर बैठ जाना, हाथ जोड़ कर सिर निवाना तथा मन्त्र पढ़ने 'फिआ' की परिक्रमा एक शान्त तथा मौल पर पुंगी अपनी मौज में बैठे होते हैं तथा व्यापारी भी अपना पैसा कमाने का धन्धा चलाये जाते हैं। कोई पुस्तक खोलकर ज्योतिष द्वारा भाग्य बता रहा है, कोई मूर्तियों को नहलाने के लिए पानी के टीन बेच रहा है, कोई सूरदास अकेला ही तार साज बजा कर गा रहा है, एक एक दोनों हाथों से, एक पैर के साथ नारियल की ठूठियों की ताली, दूसरे पैर के साथ ताल रखने वाली घण्टी।

मैं तथा शर्मा एक साफ सा स्थान देखकर बैठ गये। यहां से मांडले शहर की ऐरावती नदी दूर से दिखाई दे रही थी। पूर्व दिशा की ओर पहाड़ियां थीं जहां बर्मा सरकार की गर्मियों के मौसम की राजधानी मैम्यू है। हमारी तरह अनेकों अन्य भारतीय यात्री आ जा रहे थे, सेना के सिपाही, मद्रास के कुली, गोरखे आदि। हमें मांडल पहुंचकर बाबू कर्म सिंह के बारे में कुछ विशेष पता नहीं चला। बाबू जी के बारे में, युद्ध के दिनों, राजनैतिक बात चीत करने से सभी डरते थे। हम स्वयं भी

किसी से कुछ पूछ नहीं सकते थे। फारसी कहावत हैं कि दीवारों के भी कान होते हैं हमारे दिल में घर किए बैठी थी। न तो वहां कोई हमारा परिचित ही था और न ही किसी ने खुलकर हमसे बातचीत की। इतना भर पता चला कि बाबू कर्म सिह तथा उसके साथी अंग्रेजों के विरुद्ध साज़िश करने के दोष में पकड़े गए हैं। गवाहियां तैयार की जा रही हैं तथा बर्मा की गुप्त पुलिस पंजाब, रंगून तथा मांडले में भागी दौड़ी फिर रही है। बाबू कर्म सिंह तथा उसके साथी किले में रखे गये हैं जहां कि उनके समीप कोई फटक भी नहीं सकता।

मांडले में हमारा रहना बड़ा कठिन था। अपरिचित व्यक्ति या तो गुरद्वारा में रहते थे या अपने मित्रों के पास। गुरुद्वारा (में रहने) से हम डरते थे तथा मित्र हमारा कोई था ही नहीं। परिचय प्राप्त करने की कोशिश करते तो कहीं परिचय मिल जाता था पर इसमें अपेक्षाकृत अधिक खतरा था। शर्मा जी कहने लगे कि मैं बड़ी देर से सुन रहा हूं कि बर्मा में एक रेल का पुल है जिसे दुनिया में सब से ऊंचा पुल बताया जाता है, उसका पता करें कि वह कहां पर है, और यदि वह निकट हो तो उसे देख आयें। हमारी सलाह, रंगून पहुंचने की पक्की हो चुकी थी पर इस लालच में कि शायद कहीं संयोग वश बाबू कर्म सिंह मिल सके तथा उसकी सहायता कर सकें तो अवश्य करें, हम मांडले को छोड़कर रंगून की ओर जल्दी नहीं जाना चाहते थे। पताने चला कि इस पुल को अपने लोग 'खण्डे का पुल' कहते हैं। इसका वास्तविक नाम (gobteik viabuet) गाटेक है। यह उस प्रकार का पुल नहीं है जिस प्रकार के अन्य नदियों पर पुल होते हैं। पहाड़ों के बीच में एक सकरी सी राह है जहाँ से रेल निकाल के लिये यह इंजीनियरी का कोतूहल निर्मित किया गया है।

'खण्डे का पुल' राजधानी मेम्यू से समीप ही है तथा मांडले से मेम्यू चार पांच घण्टे का रास्ता है। शर्मा जी ने तैयारी का आदेश दे दिया तथा हम मांडले के आर्य समाज की कोठरी को खाली करके रेलगाड़ी पर चढ़ने के लिए स्टेशन जा पहुंचे। बर्मा के पहाड़ों की यह एक अच्छाई ही समझो कि यह बहुत ऊंचे नहीं। अंग्रेजों को ठण्डी जगह ढूंढने के लिए शिमला जितना ऊंचा तथा दूरस्थ स्थान ढूंढने की आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई। रेलगाड़ी की छह घण्टे की यात्रा के पश्चात् हम मेम्यू पहुंच गये। शहर मेम्यू भी शानराज्य का हिस्सा कहलाता है। यहां मेम्यू वाले शान-राज्यों को उत्तरी शानराज्य कहते हैं तथा कल्लो एवं टौंजी वालों को दक्षिणी शानराज्य कहते हैं, परन्तु वास्तव में दोनों एक ही हैं। यदि पहाड़ों में से होकर मेम्यू टौंजी जाना चाहते तो चक्कर काटकर वहां जा सकते थे। मेम्यू शहर एक मैदान में बना हुआ है। इसकी यह विशेषता है कि यहां दस बारह मील का समतल चक्कर काटा जा सकता

है। इसके अतिरिक्त मेम्यू में अन्य कोई विशेष बात नहीं है। यह राजधानी है, इस कारण, यहां सरकारी दफ्तरों की दमारतें हैं, कुछ पोलो खेलने के मैदान है तथा शहर की आवादी काफी हैं। यहां एक बाग है जिसमें, मुगल वादशाहों की तरह अंग्रेज़ गवर्नर सर हारकोर्ट बाटलर ने जेलों के दो तीन हज़ार कैदियों को लगा कर कृत्रिम झील बनवाने का प्रयास किया था, पर युद्ध शुरू हो जाने से यह काम बीच में ही रह गया। मेम्यू का बाजार बड़ा गहमागहमी वाला होता है पर अब तो सर्दी का मौसम था, इसलिये न शहर ही में रौनक थी न प्रकृति ही अपने में पूर्ण थी। सर्दी मामूली थी जिन्होंने अमेरिका की सर्दी देखी हो उन्हें बर्मा की सर्दी क्या कह सकती है ?

मेम्यू से ऊपर नामटू आदि शहरों के जहां चाँदी की खाने हैं, रेल जाती थी। हमने पहली गाड़ी जो प्रात: चलती है, जा पकड़ी। खाने के लिए सब्ज़ी तथा परौंठे साथ ले लिये। मेम्यू से देसरा स्टेशन है, जहां हमने जाना था। जब गाड़ी चली गई तब हम उस पुल की ओर गये। पुल लोहे का था जो कि एक अमेरिकन कम्पनी ने कुछ वर्ष पूर्व बनाया था। स्टेशन तथा सामने की पहाड़ी के मध्य लगभग आधा मील लम्बाई वाली एक खड्ड खाई थी जिसमें नीचे रेल नहीं जा सकती थी। सामने ऊंचा पहाड़ था । इस (खाई) खड्ड को पार करने के लिये इस पुल की आवश्यता थी। पर एक और बात भी थी जो इस पुल को अद्‌भुत तथा दर्शनीय बनाती थी। पुल तो पहाड़ों के निम्न स्थल की ओर बना हुआ था, पर इस निम्न स्थल से दूर नीचे एक पहाड़ी नाला बहता था जो कि ऊपर पुल पर से खड़े होकर देखने से एक धागा सा प्रतीत होता था। पुल के लोहे की कारीगरी निस्सन्देह अद्‌भुत थी। लोहे के ऐंगल जोड़ जोड़ कर स्तम्भ बनाये हुए थे। उसी लोहे का सारा ढांचा था देखने वाले दूर दूर से आया करते थे सामान्य तरीका यह था कि पुल देखकर नीचे खड्ड की ओर उतर जाना, वहां जाकर स्नान आदि करना, खाना पीना, फिर आराम करके ऊपर की ओर चढ़ आना। इसमें सारा दिन बीत जाता था। मैं तथा शर्मा नीचे का रास्ता पूछकर चल पड़े जब आधा रास्ता उतर चुके ता ख्याल आया उतराई ज्यादा है लौटकर ऊपर आना काफी मेहनत का काम है। पर अब पीछे भी नहीं लौटा जा सकता। पहुंच तो हम तुरंत ही गये तथा नीचे जाकर बैठ गये। पानी का प्रवाह बड़ा तेज़ था जिसमें साधारण आदमी केवल अपनी टांगों तथा बाहों के बल पर खड़ा नहीं रह सकता था। यह पानी की धारा एक अंधेरी गुफा में जा प्रवेश होती थी जहां से पानी गिरने की आवाज़ आती थी पर यह पता नहीं चलता था कि पानी कहां जा प्रवेश करता है। यह गुफा उस घास द्वारा ढके पहाड़ के तलवें हिस्से में भी थीं जिनकी चोटी पर पुल का निर्माण किया हुआ है। नीचे से देखने पर पुल लोहे की जाली के सामान प्रतीत होता था। जब गाड़ी ऊपर से गुज़री तो ऐसा प्रतीत होता था कि माचिस की डिबियां ऊपर से लुढकती जा रही हैं।

पुल पर से गुज़रता हुआ आदमी मक्खी जैसा प्रतीत होता था। अनुमान है कि हम पुल की लाइन से हजार डेढ़ हजार फुट नीचे होंगे । आदमी तथा प्रकृति की मिली-जुली सी इस कारीगिरी को देखते रहे तथा जब भूख लगी तब भोजन कर लिया। पानी वाली गुफा में पानी ने एक गोल डाट (मेहराब) बनाई हुई थी जिसमें चमगादड़ों के झुण्ड निकलते और प्रवेश करते थे तथा समीप जाने पर इनकी विष्ठा की अजीब सी गन्ध आती थी। पानी पहाड़ी में ही जाता था तथा लुप्त हो जाता था। हमें नीचे पहुंचते दस बज गये थे। जब दोपहर हुई तो हम वापस हो पड़े। शुरू में ही पता चल गया कि पुनः शिखर पर पहुंचना आसान नहीं है। रास्ते में बैंचे रखी हुई हैं तथा नोटिस भी लगा हुआ है कि कमज़ोर व्यक्ति विशेषतः कमज़ोर दिल वाले व्यक्ति नीचे जाने का प्रयास न करें। परन्तु हमने यह नोटिस लौटती बार पढ़ा। जब हम लगभग सौ गज़ चढ़ाई चढ़ते तो हमारे दिल ढोल की की तरह धक् धक् करने लगते थे सांस फूल जाता था। जब सांस के लिए रूकते थे तो ख्याल आता था कि हमने तीन बजे वाली गाड़ी से पुनः मेम्फ़ू को लौटना है और यदि गाड़ी छूट गई तो रात यहीं बितानी पड़ेगी। भाव यह है कि हम बड़ी कठिनाई से तोबा करते हुए समतल धरती पर पहुंचे तथा गाड़ी पकड़ी।

—0—

चौदहवां अध्याय

रंगून

मैम्यू वापस पहुंचते-पहुंचते सांझ हो गयी थी तथा सर्दी उतर रही थी। हमारी मनः स्थिति के मुताबिक उन दिनों का मैम्यू हमें अच्छा लगा, न वहां राजधानी वाला शोर शराबा था, न अधिक लोग ही थे। आधा शहर तो सर्दियों के मौसम की वजह से खाली पड़ा था, बाकी का आधा शहर चुप तथा सीलन भरा सा था। जिस तरह पहाड़ी शहर सर्दियों के मौसम में हुआ करते हैं। हमने एक बंगाली दुकानदार से सांठगांठ कर ली थी, वह हमें सोने के लिए एक कमरा देने की बात मान गया था। दूसरे दिन पता लगा कि आज बाज़ार लगना है। रौनक देखने के लिए हम भी चले गए। चाहे मैम्यू सूना सा था, पर बाजार में रौनक थी। हम वैसे ही समय बिताने के लिए घूम रहे थे कि किसी ने शर्मा जी के कन्धे पर ज़ोर से हाथ रखा तथा कहा---'आइए लाला जी। बड़ी दूर आ निकले हो, यहां भी कोई कारोबार है?' शर्मा हक्का बक्का सा रह गया तथा मैं भी डर गया कि यह कहाँ से हमारा मित्र निकल आया। देखा तो याद आ गया कि यह तथा इसके दो साथी 'इनले' झील में फोर्ट स्टैडमैन तक हमारे साथ नौका में आये थे। उन्होंने हमें बताया था कि वह सैर करते घूम रहे हैं। वह हमें दुकानदार समझते थे। जब हमारा भय एवं आशंका समाप्त हुई तो हम भी हंस पड़े तथा बातें होने लगीं। जिस व्यक्ति ने शर्मा जी को पहचाना था, वह लगभग चालीस वर्ष का पंजाबी मुसलमान अयूब खाँ था तथा उसके साथ के दोनों बड़े ताकतवर पिशौरी (पेशावर के) हिन्दू प्रतीत होते थे। सामान्य व्यक्तियों को इनकी पहचान नहीं हो सकती, पर हमसे पंजाबी किस प्रकार छिपे रह सकते थे। परदेश में और विशेषतः हम जैसों को यदि कोई बातचीत करने के लिए मिल जाए, मुंह खोलने के लिए अपना प्यार सा जताने को बहुत मन करता है। अतः हमने अयूब तथा उसके साथियों को अलग ले जाकर उनसे खुली बातें कीं। वह कहते थे कि अब यहाँ रौनक बहुत कम है। रंगून में इस मौसम में खूब मौज तथा मेले होते हैं। हमने कहा—'जाना हमने भी

रंगून है पर धीरे-धीरे जायेंगे वह भी यदि मांडले में बजाजी खरीदने का काम न बना तो। 'इस प्रकार हम पांच (व्यक्ति) हो गए। पता चला कि अयूब के साथी तो उसी दिन शाम को मोटर के रास्ते मांडले जा रहे हैं। शर्मा कहने लगा 'चलो हम भी चलें।' सोच-विचार कर हमने भी उन्हीं के साथ मोटर में जाने का निर्णय कर लिया। अयूब खां को हमारे साथ चलने की कोई अधिक चाह नहीं प्रतीत होती थी पर उसने ना भी नहीं की। हम पाँच सवारियों ने माडले तक मोटर किराये पर ले ली। शाम को अयूब आदि ने देर लगा दी। पांच की अपेक्षा सात बजा दिए हमें पता नहीं था कि किस प्रकार का मार्ग है पर जब पहाड़ उतरने लगे बड़ा घना जंगल था और रास्ते में हमें कोई इक्का दुक्का कार ही मिली। मांडले से इधर एक नहर का पुल है। यहां पहुंचते-पहुंचते रात के ग्यारह बज गए थे तथा हम दोनों अपनी इस गलती पर बड़ा पछता रहे थे कि हमने सोच-विचार से काम क्यों नहीं लिया। इस प्रकार के कुसमय में अपरिचितों के साथ मिलकर अपने आपको तथा अपने रुपये को खतरे में डाला। इसी सोच एवं चिन्ता में थे कि अयूब खां शर्मा जी को कहने लगा 'लाला जी, यहाँ हमें लगभग आधा घण्टा लगेगा।' हम पहले ही डर और चिन्ता से घुले जा रहे थे, जब अयूब खां ने यह बात कही। शर्मा कहने लगा— 'खान क्या बात है। इस समय यहां रुकने की क्या आवश्यकता है, आधी रात—' अयूब खां कहने लगा 'लाला जी, घबराओ नहीं। आप निश्चिन्त होकर बैठे रहो।' यह कह कर तीनों वह तथा चौथा मोटर वाला चारों एक ओर को चल पड़े। हमें अकेले मोटर में बैठा छोड़ गए। यह देखकर हम बड़ा घबराये। मैंने शर्मा को कहा कि 'उठो बाहर निकलो तथा संभलो।' हम भी मोटर से उतरकर एक ओर होकर छिपकर बैठ गए कि कहीं हमारे साथ कोई धोखा न हो जाये। इस अवसर पर मुझे पुनः याद आया कि हम निहत्थे हैं, हथियार अवश्य पास होना चाहिए। लगभग आधा घण्टा बाद अयूब खाँ आदि आ गये पर चार की जगह अब सात व्यक्ति थे। मोटर में बैठे और लगे हमें पुकारने लाला जी, लाला जी। 'हम डरते थे कि यह सात जन हैं और हम दो। आखिर हम साहस करके मोटर के पास पहुंचे तथा दूर से ही अयूब से पूछा— 'कुशल तो है? यह नए मित्र कौन हैं?' अयूब समझ गया तथा हंस पड़ा। कुछ बातचीत हुई तथा तीनों फालतू आदमी चले गए। हम मोटर में जा बैठे तो अयूब कहने लगा 'डरो नहीं। कुछ पता नहीं चला। न हमें यह बात स्फुरित हुई कि आधी रात के समय, ऐसी जगह आदमियों से मिलने का क्या काम था। हम और कर भी क्या सकते थे, चुप हो रहे। मोटर एक बजे मांडले पहुंच गई तथा हम उतर कर दिन निकलने की प्रतीक्षा करने लग पड़े। पिछला डर तो हमारा निर्मूल सिद्ध हो गया तथा आगे से चौकन्ना रहने का हमने दृढ़ निश्चय कर लिया। न अयूब खां हम से चिपके रहने का इच्छुक था और न ही हम उससे। कुवेला में शहर में भटकने की बजाये हम एक स्थान पर बैठ गए तथा

रंगून को चलने की बातें होने लगीं। अयूब तथा उसके साथी रंगून से पर्याप्त परिचित प्रतीत होते थे, तथा हम पूरी तरह से अपरिचित। रंगून की बातें सुनकर शर्मा कहने लगा कि डर तो कोई प्रतीत नहीं होता। क्यों न हम भी उन्हीं के साथ गाड़ी चढ़ चलें। मैं डरा हुआ था मैंने कहा 'शर्माजी आप स्वयं तसल्ली कर लें मैं तो आपके साथ ही हूं। जब शर्मा ने कहा—अयूब खां' जाना तो हमने भी रंगून ही है।'—तो उसने कोई उत्साहजनक उत्तर नहीं दिया। जब शर्मा ने पूछा—'अयूब खां यदि आपने रंगून को जाना हुआ, किस समय चलोगे।' तो अयूब खां टालमटोल सा कर गया। इन बातों से शर्मा को तसल्ली सी हो गयी। अयूब खां तो चुप हो गया पर उसका एक साथी कहने लगा 'रंगून को एक ही गाड़ी ठीक है, जो सुबह सात बजे रंगून पहुंचती है। उसमें चढेंगे, आज या कल।' हम दूसरे दिन दो बजे जब रंगून की गाड़ी में बैठने लगे तो आगे अयूब तथा उसका एक साथी बैठे थे। हम भी उन्हें देखकर उसी डिब्बे में जा बैठे। हमने पूछा कि अयूब का दूसरा साथी कहां है तो पता लगा कि वह पहले दिन ही रंगून चला गया हैं।

बर्मा की रेलगाड़ी में भी चिड़िया घर की तरह भांति-भांति के व्यक्ति होते हैं बर्मी, भारतीय, पंजाबी, मद्रासी आदि पर बोलते सभी घटिया सी हिन्दुस्तानी बोली हैं। मैं तथा शर्मा बैठकर सोचने लगे कि रंगून कहां जाकर रहेंगे, क्या करेंगे। बेचारे बाबू कर्म सिंह का तो हमने ख्याल ही छोड़ दिया, क्योंकि न तो हम कुछ कर सकते थे और न ही अधिक देर ठहर ही सकते थे। जब दूसरे दिन सवेरे ही रंगून स्टेशन पर पहुंचे गाड़ी की आवभगत करने वालों की पर्याप्त भीड़ थी। अभी हमारे डिब्बे वालों ने अपने आपको संभाला ही नहीं था कि डिब्बे को वर्दी वाले बाबुओं तथा कुछ पगड़ी वाले पुलिस के सिपाहियों ने घेर लिया। कहने लगे कि उस डिब्बे के यात्रियों की तलाशी लेनी है। हमें तो पिस्सू पड़ गए। उधर अयूब खां भी ऐंढने लगा। मैं तथा शर्मा ने समझा कि अब यहां हमारा रुपया पकड़ा जाना है। चाहे रुपया कोई ऐसी वस्तु नहीं जो कानून के विरुद्ध हो पर हमने समझा कि यह हमारे रुपये के ही पीछे पड़े हुए हैं। हमने झटपट सलाह की। रुपया मेरी कमर के साथ (बंधा) था। मैंने पक्का निश्चय कर लिया कि यहां से निकल जाना है, चाहे कुछ भी हो। मालूम होता है कि अयूब के साथी को लेने के लिए कई आदमी आये हुये थे। उनका पुलिस के सिपाहियों तथा आबकारी वालों के साथ झगड़ा हो गया। मैंने भी इस झगड़े से लाभ उठाने का अवसर देखा। इधर गाड़ी के दूसरी ओर मैं झपट कर बाहर निकलने लगा तो मेरे पीछे दो पुलिस वाले तथा अन्य दो बाबू से थे। मैंने देखा कि अयूब आदि के साथ हाथापाई होने लगी है तो मैंने बजती हुई सीटियों में से (उनकी उपेक्षा करके) ज्यों दौड़ लगाई, रेल के उल्टी ओर उतर के लाइनों तथा खड़ी

माल गाड़ियों के ऊपर नीचे से होता हुआ, मालगोदाम को बोरियों आदि के ढेरों से होता हुआ स्टेशन की सीमा पर आ पहुंचा, जहां ऊंचा-ऊंचा जंगला थ। तथा उसके पार शहर की सड़क थी। जंगला बड़ा मजबूत था। मैं साथ-साथ दौड़ता रहा, आगे स्लीपरों का ढेर पड़ा था। मैंने एक स्लीपर उठाकर उसका सिरा जंगले के ऊपर रखा तथा उस पर से छलांग लगाकर बाहर आ गया। मेरा पीछा करने वालों में दो आदमी निकट थे जिन्होंने मुझे छलाँग लगाते देखा पर जब मैं उनके देखते-देखते बाजार की सड़क पार करके यात्रियों में शामिल हो गया तब वह ढीले पड़ गए तथा पीछे रह गए। रंगून शहर में उस समय खूब गहमा गहमी थी। सवेरे का समय था तथा लोग बहुत तेजी से अपने-अपने राह जा रहे थे। मैं उनकी भीड़ में उसी प्रकार मिल गया जिस प्रकार पानी के प्रवाह में अतिरिक्त पानी मिलकर एक हो जाता है।

शर्मा के साथ क्या बीती, कुछ पता नहीं लग सका, न मेरा इस उद्देश्य से स्टेशन के समीप जाना उचित था। मेरी पहली चिंता यह थी कि मैं इस रुपये को कहीं संभाल कर रखूं। मैं शहर से पूरी तरह अपरिचित था तथा सवेर की भागदौड़ में मेरा हुलिया ही बिगड़ा हुआ था। बहुत देक तक मैं निरुद्देश्य सा होकर शहर में घूमता रहा। अन्ततः उस 'फिआ' (बौद्ध मन्दिर) के पास आकर बैठ गया जो शहर के मध्य में है। वहां बैठे को समीप ही जहाजों के ऊंचे मस्तूल गुज़रते हुए दिखाई दिए। मैं समझ गया कि नदी इधर है। नदी के किनारे जाकर देखा तो वहां भी अन-जान यात्री के लिए ठहरने का स्थान कहां था। स्थान-स्थान पर नौकायें खड़ी थीं तथा जहाजों एवं मोटरवोटों के लिए पुल, जहां नौकर चाकर खड़े थे। घूमते फिरते वह स्थान मिल गया जहां कलकत्ता वाले जहाज में यात्री उतर रहे थे तथा मुसाफिर खानों में आकर यात्री जमा हो रहे थे, अपना अपना सामान संभाल रहे थे। बाहर मज़दूर, ठेले, घोड़ा-गाड़ियां आदि यात्रियों (तथा उनके सामान) को उठाकर ले जाने के लिए खड़े थे। मैं अन्दर जाकर यात्रियों में मिल गया तथा उसी टूंटी पर हाथ मुंह धोये तथा अपनी शकल संवारी।

पूछताछ करके मैं रंगून की कारोबार वाली सड़क, 'मरचैंट स्ट्रीट' गए तथा बैंकों में जाकर अपना रुपया रखने की कोशिश की पर कोई भी परिचय के बिना खाता नहीं खोलना चाहता था। आखिर कुक कम्पनी का पता पूछ कर वहां पहुचा। मैंने अंग्रेज मैनेजर को कहा कि मैं यात्री हूं तथा भीड़ में मेरा साथी बिछुड़ गया है। मैंने उसे ढूंढना है, कुछ दिन लगेंगे। मैंने हांगकांग वाले कुक कम्पनी के मैनेजर का भी उसे हवाला दिया। बहुत देर सोचकर तथा अपने मद्रासी क्लर्कों के साथ सलाह करके उसने मेरा रुपया (Current Account) चालू लेखे में रख लिया और मैं अपना फ़ोटो खिंचवा कर दे जाऊं ताकि रुपया निकलवाते समय कोई कष्ट न हो

क्योंकि गवाह तो मिलना ही नहीं है। मैंने बहुत आभार प्रकट करके सारा रुपया कुक कम्पनी के हवाले कर दिया। रसीद लेकर, हल्का पुल्का होकर मैं निश्चिन्तता की स्थिति में बाहर निकल आया। दिन भर मैं एक बाग में पड़ा रहा तथा शाम को एक दो आवश्यक चीजें तथा कपड़े लेकर मैं शर्मा जी को खोज करने चल पड़ा परन्तु रात को ठहरने की बड़ी चिन्ता थी कि कहां रात काटी जाए। पंजाबी बहुत थे पर प्रत्येक यही सलाह देता कि गुरद्वारे में जाया जाये। गुरद्वारा से मैं बड़ा डरता था क्योंकि जितनी भी गुप्तचर पुलिस (C.I.D.) होती है सारी गुरुद्वारा में सिक्खों के गिर्द होती है। हारकर तथा बंगालियों की कालीगबाडी का पता लेकर तथा पूछ कर कि क्या मुझे एक रात के लिए ठहरने देंगे मैं सूर्यास्त के समय स्टेशन की ओर गया। अन्दर जाने से पहले तो शाम के समाचार पत्र में यह खबर पढ़ी कि रंगून स्टेशन पर आबकारी के विभाग वालों ने कई हज़ार रुपये की अफीम पकड़ी है तथा तीन व्यक्ति गिरफ्तार हुए हैं। बस इतनी खबर थी। प्लेटफार्म पर घूमते-फिरते तथा इधर-उधर की बातें करते यह पता लगा कि पकड़े गए व्यक्ति 'मसीती' के व्यक्ति बताये जाते हैं। मुझे क्या पता कि 'मसीती' कौन है तथा जो तीन व्यक्ति पकड़े गए हैं उनमें शर्मा है कि या बच निकला है। पकड़े गए व्यक्ति कहाँ मिलेंगे, कैसे मिलेंगे, यह सारी बातें मन में विचारता हुआ मैं काली बाड़ी आ गया जहां मुझे एक पतले से बंगाली ने एक तख्त पोश दिया कि यहां बिस्तर बिछा लूं (लगा लूं) काली बाड़ी का बंगाली एक पतला सा बूढा बैठा चिलम के दम लगा रहा था। दो एक मीठी बातों से मस्त होकर मित्र बन गया।

मैं :—बाबू महाशय, यह 'मसीती' 'मसीती' कौन है ?

बंगाली :—तुम मसीती को नहीं जानता, अरे मसीती रंगून का राजा है।

मैं—राजा ? यहां कोई राजा भी है रंगून में ?

बंगाली—अरे राजा नहीं राजा की माफिक है। रंगून में बड़ा आदमी है, दो तीन बाज़ार का मालिक है, कितने (ही) आदमी नौकर रखता है, बड़ा रुपया पैसा वाला आदमी है।

मैं—क्या काम करता है ?

बंगाली—(हंसकर) काम ? काम बहुत करता है। चरस, भंग, अफीम मंगाता है, जुआ खेलता है, बड़ा और कितना काम करता है गिनती नहीं।

मैं—(आश्चर्य से) तो पकड़ा नहीं जाता ।

बंगाली—क्या पकड़ा जाएगा ? पुलिस उसकी जेब में है। कोई पकड़ा जाता है। पुलिस, मैजिस्ट्रेट, सिपाही सब उसका तलब खाता है।

मैं—वह किधर रहता है ?

बंगाली—अरे मसीती गली पूछो, उसको सब जानता है।

रंगून में जितना मैं घूमा था, मुझे यह प्रतीत होता था कि यह तो बर्मा का शहर नहीं। सभी बाजार, सारी दुकानें भारत के लोगों मद्रासी चूलीये गुजरातियों की (थीं)। मजदूरी करने वाले सभी या तो केनाडा की ओर के रहने वाले मद्रासी, जिन्हें कोरंगी कहते हैं और या पूर्व के भैय्ये। इक्का दुक्का दुकान किसी बर्मी की, बल्कि बर्मियों की अपेक्षा चीनी अधिक थे। मैंने अन्दाज़ा लगाया था कि यह तो भारतीय शहर है। प्रातः होते ही मैं मांडले वाली गाड़ी (आने) के समय फिर पहुंचा। शायद शर्मा इस समय इधर आ निकले, पर कुछ न मिला और शर्मा के बिना मैं वहां से हिल नहीं सकता था। समाचार पत्र से पकड़े हुए व्यक्तियों के सम्बन्ध में और कोई खबर न मिली। दो ही स्थान थे जहाँ से खबर मिलने की संभावना हो सकती थी, या तो मसीतों के व्यक्तियों से या कचहरी से। कचहरी जाकर देखा तो वहां भी यही हाल, सारे वकील तथा मुकद्दमों वाले भारतीय कोई कोई बर्मी था। छह सात मजिस्ट्रेट अलग अलग कचहरी लगाए बैठे थे। हथकड़ियों वाले तथा दूसरे दोषी आते थे, वकील पेश होकर भुगतते थे और तुरत फुरत तारीखें पड़ी जाती थी। एक वकील के मुंशी से पता चला कि तीन व्यक्ति जो परसों पकड़े गये थे तथा उनकी सुनवाई (तारीख) आज से छठे दिन है। डी. ग्लानविल के मुन्शी को जब मैंने मिलना चाहा तो मैंने देखा कि मुन्शी स्वयं वकील जैसा था ? बड़े प्रयास से पता चला कि तीन व्यक्ति जो गिरफतार हैं (उनमें) एक अयूब खां है दूसरा हरिकिशन है तथा तीसरा रामलाल है। जिसका रूपाकार तो शर्मा से मिलता-जुलता था पर नाम भिन्न था। तीनों की ओर से वकील ग्लानविल था। वकील के मुन्शी को न मैं अधिक बता सकता था न वह अधिक बातें करना चाहता था। उसने बताया कि अभी जमानत नहीं हो सकती और साथ ही जब तक मुझे यह विश्वास न हो कि शर्मा उनमें है मैं व्यर्थ ही क्यों कोशिश करूं तथा रुपया खर्चू।

पांच छह दिन जो मैं मुकद्दमें की सुनवाई में प्रतीक्षा करता रहा बड़ी मौज से बीत रहे थे तथा मुझे रंगून शहर की तथा रंगून के लोगों की काफी वाकफ़ीयत हो गई। चाय की दुकान पर जाकर एकाध ठाले सिपाही को या कचहरियों के समीप किसी ठाले से मुन्शी को बिठाकर दो प्याले चाय पिलाकर चाहे रंगून की सारी बातें पूछ लो। रंगून समुद्र से तीस चालीस मील दूर है तथा ऐरावत नदी के तट पर बसा

हुआ नया शहर है जो कि अंग्रेजों ने पिछले दस पन्द्रह सालों में आबाद किया है। बर्मी का सारा व्यापार रंगून में से होता है तो भारत से यातायात के लिए यही एक अच्छा बन्दरगाह है। सिंघापुर तथा कलकत्ता के रास्ते में यही बड़ा जहाजी अड्डा है। कलकत्ता की अपेक्षा वैसे भी जहाजों के लिए यह अधिक उपयुक्त है। कलकत्ता के दरिया की खाड़ी बहुत लम्बी तथा टेढ़ी मेढ़ी है जिस में जहाज का सारा दिन बीत जाता है पर रंगून पहुंचने के लिए समुद्र से कुल तीन घण्टे लगते हैं। ऐरावत नदी में हुगली की तरह रेतीलापन नहीं है जिसका जहाजों को डर होता है। रंगून में प्रवेश करते ही अंग्रेजों ने एक किला बनाया हुआ है जहां से तोपें भीतर प्रवेश करने वाले जहाजों को जब चाहें रोक सकती हैं। रंगून के पास ऐरावत नदी को 'रंगून रीवर' भी कहते हैं। (इसके) तट पर तीन चार मील तक जहाजों के लिए पुल कारखाने आराम-खाने तथा धान की मिलें हैं। नदी में यातायात बहुत है। बर्मा से यहां की लकड़ी, धान तथा तेल यहां से बाहर जाता है तथा विदेशों से दैनिक प्रयोगों की वस्तुएं तथा कपड़ा आदि आता है। रंगून नया शहर होने के कारण यहां की सड़कें चौड़ी हैं। एक सड़क जिसके मध्य में 'फिआ' (बौद्ध मन्दिर) है अनुमानतः अढ़ाई सौ फुट चौडी हैं, जिसमें दुकानों के आगे पैदल रास्ता तथा दो दो सड़के है। मध्य की बडी सड़क बहुत सुन्दर पत्थर तथा कोलतार से बनी हुई है। यहाँ के पुलिस वाले अधिकतर पंजाबी हैं क्योंकि और चीनी या बर्मी तीस चालीस रूपये की सिपाहीगीरी नहीं करता। शहर के समीप ही उत्तर की ओर पहाड़ियों की शृंखला समाप्त होती है जो उत्तर की ओर से आती है तथा यहाँ वह प्रसिद्ध 'फिआ खेडगों' है जो बर्मियों का सबसे बड़ा पूज्य स्थान है। सारा सोने से मढ़ा हुआ है। यह 'फिआ' मीलों तक नज़र आता है, बड़ा सुन्दर रमणीय एवं दर्शनीय स्थान है। अंग्रेजों और बर्मियों की लड़ाई यहां आकर समाप्त हुई थी। लड़ाई समाप्त होने के लिए बर्मी शब्द 'या को' हैं। 'या' तथा 'र' बर्मी भाषा में बदल बदल सकते हैं। इस प्रकार 'या को' से बिगड़ कर 'रा को' बन गया तथा अंग्रेजी में लिखने से 'रंगून' बन गया।

रंगून एक व्यापारिक शहर है और बर्मा की राजधानी होने के कारण इसकी महत्ता काफी बढ़ गई है। रेल का भी बड़ा जंक्शन है। रेल का कारखाना नौ मील दूर इनमिल में हैं। जहाज़ों की मुरम्मत करने के कारखाने नदी के तट पर बहुत हैं जहां साथ ही सिरीयम में बर्मा आयल कम्पनी का तेल साफ करने का कारखाना है। इन सब कारखानों में अधिकतर भारत के कारीगर ही काम करते हैं या लकड़ी का काम चीनी करते हैं। बर्मी लोग बहुत काम पर लगते हैं। रंगून को दो तीन व्यक्तियों का संक्षिप्त विवरण देने से पाठकों को रंगून में उन्नति करने के बड़े क्षेत्र पर अनुमान लग जायेगा। इन व्यक्तियों के बारे में जानकारी प्राप्त करने की प्रेरणा मुझे 'मसीती' के जीवन से

मिली । पहले व्यक्तियों से सन् उन्नीस सौ के लगभग या दस एक वर्ष पहले यहां एक व्यक्ति अब्दुल करीम आया था, भारत के शहर सूरत से । यह एक साधारण मजदूर पेशा व्यक्ति था जिसने छाबड़ी लगाने का काम शुरू किया । धीरे-धीरे दुकान खोल ली तथा दुकान अच्छी चल पड़ी । आज इसका नाम सर ए. के. एस. जमाल है बहुत थोड़ा पढ़ा हुआ, साधारण आदमी आज 'बर्मा मर्चैण्ट प्रिंस' कहलाता है । धान के कारखाने, कागज़ बनाने के कारखाने, बर्मा के दस बारह शहरों में इसके चलते हैं । अनुमान है कि बर्मा की सारी ज़मीन का पांचवा भाग इस अकेले के अधिकार में हैं तथा कभी किसी एक दिन इसकी सारी पूंजी का हिसाब लगाना कठिन होता है क्यों कि हिसाब लगाने में दो तीन दिन लगते हैं और इतने समय में अतिरिक्त आमदनी हो जाती है पर कुदरत के खेल हैं, व्यक्ति भी बड़े या छोटे, बादशाह तथा मज़दूर पानी के बुदबुदों की तरह बनते तथा बिगड़ते रहते हैं । आँखों के झपकने के समान बडप्पन के साल गुज़र जाते हैं और अन्ततः बड़े-बड़े छोटेपन की खाइयों में ही कहीं लुप्त हो जाते हैं । एक अन्य चीनी इसी प्रकार अपने देश चीन से एक मामूली आदमी की हैसीयत से आया था । इसका काम धान की ढुआई बन गया । बर्मा की नदियों में धान ढोता ढोता वह बड़े जहाज़ों का स्वामी बन गया, जो चीन को धान ढोने लग पड़े । इसने बड़ी दौलत पैदा की । रंगून से चार मील बाहर इसने बाग बनाकर बीच में चीनी स्थापत्य का एक महल तथा बुर्ज बनवाया, जिसका नाम उसके नाम पर 'धिनसौंग' महल पड़ा तथा इसे देखने के लिए दूर दूर से लोग आते थे । इसी प्रकार गुरदासपुरजिले का एक मुसलमान इब्राहीम बहुत मामूली आदमी था । एक प्रकार से बर्मा रेलवे उसने अपने हाथ से बनाई क्योंकि यहां के बड़े-बड़े ठेके सब इसी के थे तथा यहां बर्मा रेलवे के बड़े इन्जीनियर का मूंछ का बाल बन गया था । इसी प्रकार अनेकों और नाम बताये जा सकते हैं जो बर्मा में जाकर कुछ के कुछ बन गये थे । रंगून के एक बाज़ार का नाम मुगल स्ट्रीट है । नाम तो इसका स्ट्रीट है पर यदि कहा जाये कि रंगून की आधी तिजारत तो भारतीयों के हाथ में है, इस सड़क के व्यापारियों के माध्यम से होती है, तो ग़लत नहीं होगा । बड़े सेबनुमा बेरों जितने बड़े बड़े हीरे तथा आँखों को लाल कर देने वाले लाल (Ruby) सभी यहीं से गुजरते हैं । पहले पहल आने वालों के बारे में प्रसिद्ध है कि जो मज़दूर भी बर्मा की (Ruby Mine) लालों की खान में गुज़र गया है उसके पास एक पोटली छोटे बड़े लालों की अवश्य होगी । जिसमें रेत के बड़े कण से लेकर मक्की के दाने तक के पत्थर (लाल) होंगे । मुगल स्ट्रीट में ही मद्रास के वह बड़े बड़े साहूकारी बैठते हैं जिनका काम रुपया ब्याज पर देना है । काले धूत, सिर और पांव से नंगे, निम्नभाग में विलायती मलमल की कीमती धोती बस एक कपड़ा, मुंह में पान और चूना एक छोटी दुकान में अपनी सन्दूकची लेकर बैठे होते हैं । एक व्यक्ति शाम तक बीस

पच्चीस हज़ार का हेर फेर करके उठता हैं। व्यवहार में बड़े खरे, दिये हुए रुपये का ब्याज लेना तथा लिये हुए का ब्याज देना यह इनका काम है। बर्मा का कोई शहर नहीं जिसके घर या ज़मीन इनके पास गिरवी न हों, कोई व्यापारी या दुकानदार नहीं होगा जिसका इनके साथ लेन देन न हो, कोई ठेकेदार नहीं जो इनसे बातचीत किये बिना किसी ठेके को हाथ में ले । असल में बर्मा का सारा व्यापार ही उधार रुपये के सहारे होता हैं। मामूली कर्मचारी, पुलिस के सिपाही, डाक्टर तथा कम्पाउडर, जिन्हें रुपया ब्याज पर देने का चस्का पड़ गया है, वह बीस बीस तीस तीस हज़ार के मालदार बनकर यहां से निकले हैं। मुगल स्ट्रीट के एक ओर सूरत के मुस्लमानों की बड़ी आलीशान मस्जिद है जिसकी दुकानों का किराया ही डेढ़ दो हज़ार रुपया महीना था सब (प्रकार के धानों का व्यापार मुगल स्ट्रीट में होता है तथा यहां का एक कलाल, कोठियों, बगीचों तथा धान के खेतों का स्वामी है। धानों के नमूनों की मुटिठ्यों से ल यहां कबूतरों के झुण्ड के झुण्ड बैठे और पलते रहते हैं। पक्षियों को चोगा (अन्न कण) देना भारतीय सभ्यता तथा दया का प्रतीक है। यह मुगल स्ट्रीट में प्रत्यक्ष देखा जा सकता है कि किस प्रकार सैंकड़ों कबूतर पैदल चलने वाले रास्ते पर उड़ते फिरते दाना चुगते रहते हैं और तो और मुगल स्ट्रीट के भिक्षुक भी कम नहीं। पंजाब का एक चक्षुविहीन मिरासी, बड़ा सुन्दर गायक, साधारण सा एक गीत गाता हुआ लाठी लिये चलता फिरता एक चक्कर काटकर इतना कुछ ले जाता है कि घर वालों को पंजाब में हर दूसरे तीसरे महीने सौ पचास रुपया मनीआर्डर कर देता है। साथ ही यह भी बता दूं कि इस स्ट्रीट के भिक्षुक हर प्रकार के हैं। बर्मा के मुंगी स्वयं तो पैसे को हाथ नहीं लगाते पर साथ ही चेले रखे होते हैं। (उनमें से) कोई कहता है कि मैं 'फिआ' (मन्दिर) बनाना है, कोई कहता मैंने गांव में स्कूल खोलना है, सब कुछ ले जाते है। गान्धी भक्त गुजरातियों का तो यह गढ़ है, क्योंकि गुजराती बड़े धनवान हैं, राष्ट्रीय आन्दोलन के लिये, जब चाहो, इस मुगल स्ट्रीट में से, एकाध घण्टे पूर्व की सूचना से ही हजारों रुपये ले जाओ। सिक्खों का गुरुपर्व आये तो जितना सारे सिख मिलकर (इकट्ठा) करें उतना यहां इस अकेली स्ट्रीट से ले जाओ। मद्रासी साहूकार जिनकी ऊपर चर्चा की गई है चेट्टी कहलाते हैं। चेट्टी ने भारत के मण्डी वालों की तरह अलग 'पुण्य खाते' खोले हुए होते है। मारवाड़ी ठेकेदार नेतराम रामबख्श भी रंगून में प्रसिद्ध था तथा पंजाबियों का बड़ा प्रेमी था। अभिप्राय यह है कि मुगल स्ट्रीट, जिस प्रकार कलकत्ते का चौड़ा बाज़ार या बम्बई का कोलाबा देवी है, वही महानता रखती थी तथा भारतीयों का गढ़ थी।

'मसीती' की चर्चा में रंगून के बड़े आदमियों में करने की बात को मैंने अंत में रख छोड़ा है क्योंकि मसीती न साहूकार था न व्यापारी और न ही बड़ा अफसर। वैसे

वह एक प्रकार से 'रंगून का राजा' ही था।

इसका असली नाम 'मशीदी खां' था। ठिगना, चेहरा माता के दागों से भरा हुआ, हमेशा बढ़िया कपड़े पहनने वाला, यह पठान भी यहां सीमान्त प्रदेश से एक साधारण आजीविका अर्जित करने वाले मजदूर के रूप में आया था। अपना नाम उर्दू में वही लिख सकता था। यह भी वर्मा द्वीप की उस लहर के शिखर पर आया था जिसने सन् उन्नीस सौ के करीब सारे परिश्रमी तथा उद्यमी व्यक्तियों को जमीन से उठाकर आसमान पर पहुंचा दिया था। किसी को अच्छा और किसी को बुरा कहना वैसे ही मूर्खता है। कुदरत जो कुछ भी करती है सभी स्थानों एवं समयों में आवश्यक तथा स्वीकार ही किया जाता है। यह बात मानने वाली नहीं है कि कुदरत जानबूझ कर बुराइयों, तथा बुराइयों वाले व्यक्तियों को उत्पन्न करती है। कुदरत को जहाँ प्रकाश की आवश्यकता होती है, प्रकाश पैदा करती है, जहां अंधेरे की आवश्यकता होती है, अंधेरा कर देती है। मसीती खाँ दुकानदारी तथा साहूकारे से उस दुनिया का बादशाह बन गया जिसमें हिम्मत तथा दृढ़ता की उतनी ही आवश्यकता है जितनी दूसरे कामों में रंगून में धान के दौर में खरीदी जा सकने वाली वस्तुओं की भी आवश्यकता पड़ती थी। साथ ही भंग, चरस, अफीम की भी आवश्यकता बन गई। सरकार ने जो लकीर (सीमारेखा) खींच कर कह दिया कि इस ओर अफीम की कोई कीमत नहीं, पर यदि लकीर से इधर आ जाए तो तोलें एवं माशों के भाव बिकेगी? सरकार ने कहा कि जुआ खेलना मना है, पर यदि खेलना खिलाना हो तो लाइसैन्स लेकर खेलो। सरकार के इन कानूनों को तोड़ने वाला भी तो चाहिए। यदि सारी प्रजा सरकारी आदेशों का पालन करने लग जाए तो सरकार की आवश्यकता ही न पड़े। सरकार को माई बाप कौन कहे। मसीती खां ने अपना अड्डा रंगून में जमा लिया और कहा 'आओ, जिसने मजे से अफीम खानी है या पीनी है मेरे पास आ जाओ। जिसने जुआ खेलना है, मेरे पास आ जाओ। 'मसीती खां ने कई बार इस काम में अपने प्राण संकट में डाले, अफसरों तथा पुलिस वालों से टक्कर ली, शत्रुता पैदा की। आखिर चाहे मसीती खां अनपढ़ था, उसे वकीलों की तरह कानून को तोड़ना मरोड़ना एवं सीधे सादे ठेकेदारों एवं पुलिस का मुंह भरने का तरीका आ गया? आज वह रंगून की पातालपुरी का सरदार बन गया है तथा उसका कामकाज उसी प्रकार चलता है जिस प्रकार अन्य व्यापारियों का। रंगून के मध्य भाग में तीन चार गलियां है जहां इसका राज्य है। आधी दुकानों का स्वाभित्व इसका है। बाकियों ने इसका प्रभुत्व स्वीकार कर लिया है। इसने कुछ वेतन भोगी कर्मचारी रखे हुए हैं। बाकी दुगने अतिरिक्त साथ मिल गये है। इस इलाके में कानून मशीदी खां का चलता है, दिन हो या रात। कोई दुकानदार या व्यापारी मशीदी खां के कानून को पलटना चाहे तो इस इलाके में टिक नहीं सकता।

मशीदी खां को स्वयं जेल जाने की आवश्यकता नहीं रही। इसके स्थान पर जाने वाले बहुतेरे हैं। आवश्यकता पड़ने पर मरने मारने वाले बहुतेरे हैं। पुलिस के सिपाही से लेकर सुपरिटैंडैंट तक मसीती के वेतन भोगी हैं यदि कोई विरला ऐसा हुआ जो सरकार का अधिक ही नमक हलाल हो तो वह एक दो बार हड्डियां तुड़वा कर कहीं और जा निकलता है। इन गलियों में दिन रात जुआ चलता है तथा अफीम, चरस आदि की बिक्री होती है। अफीम शान राज्यों में से आती है जहां इसकी कृषि पर कोई पाबन्दी नहीं। यही काम था जिसके लिए मशीदी खां के व्यक्ति, अयूब तथा उसके साथी गए थे। शान राज्यों में यह काम व्यापार बन गया है, अफीम बनानी, इकट्ठी करनी तथा रंगून वालों को सस्ते भाव बेच देनी। छह सात बार काम सफल हो गया। एकाध बार पकड़े गये तो कुछ खर्च कर करा के बरी हो गए। आम तौर पर मशीदी खां के गुण्डे फरंटीयर के मुसलमान होते थे। इन का काम कई प्रकार का था। मशीदी खां के इलाके में इनका राज्य था। जुआ खिलवाना तथा चरस बेचना, घरों की रक्षा तथा चौकीदारे से लेकर लड़ाई दंगा, पुलिस का प्रतिरोध तथा आवश्यकता पड़ने पर हत्या करने तथा कालेपानी जाने तक तैयार रहना, जिसकी आवश्यकता कम ही पड़ती थी (इनके) काम थे। मशीदी खां के आदमियों में एक मामसा नामक बम्बई का गुण्डा था। वह इस काम में इतना निपुण हो गया कि मशीदी खां के भी कान कुतरने लगा तथा अन्ततः बराबर का होकर अपना अलग काम चलाने लगा। इससे रंगून के गुण्डों की दो पार्टियाँ बन गई, एक मशीदी खां की तथा दूसरी मामसा की। एक दो बार इन दो पार्टियों की रंगून के बाज़ारों में जमकर लड़ाइयां हुईं तथा दोनों ओर के व्यक्ति हताहत भी हुए पर अन्ततः मुकद्दमे चले तथा थोड़ी बहुत कारावास की सज़ा भुगत कर बात समाप्त हो गई। यह मसीती था, जिसे मिलने के लिए मैंने सारा दिन खर्च किया। मेरी मुलाकात इस प्रकार करवाई गई जिस प्रकार किसी महाराजा को मिलाया जाता है, बहुत देर प्रतीक्षा करवा के तथा उलट फेर करके।

मशीदी खां को जब पता चला कि मैं वह व्यक्ति हूं जो स्टेशन पर से पुलिस के घेरे में से भाग कर निकल आया था तो वह बड़ा खुश हुआ तथा कहने लगा कि मै उसके पास रहूं। प्रतीत होता है कि मशीदी खां को मनचले तथा साहसी व्यक्तियों की कद्र थी। मेरे उसके पास ठहरने का तो प्रश्न ही नहीं था, पर मैं इनकार भी नहीं करना चाहता था। मशीदी खां ने बताया कि जो तीसरा आदमी पकड़ा गया है, उनका आदमी नहीं है, पर उसने तीनों को छुडाने के लिये वकील कर दिया है तथा यदि आवश्यकता हुई तो मजिस्ट्रेट को भी कुछ चढावा दे दिया जायेगा। मेरा रहने का प्रवन्ध मशीदी खां ने, एक छोटे (तंग) से स्थान पर कर दिया। मेरा काम यह था कि रंगून के सिख पुलिस सिपाहियों से, उनके थानों में जाकर मिलता-

जुलता रहूं तथा जो सूचना मिले मशीदी खां के आदमियों को बताता रहूं । न मुझे उसके आदमियों ने अधिक समीप ही आने दिया और न मैंने प्रयास ही किया । जब मुकद्दमें की तारीख आई तो सभी की जमानत हो गई तथा शर्मा जी भी आ गए । इस जंजाल में फंस जाने के कारण हमारा रंगून में ठहरना आवश्यक हो गया । यदि मुकद्दमा बीच में ही छोड़कर जाते तो जमानती को दो हजार रुपये जमानत के देने पड़ते । कड़ुवा घूंट भर हम रंगून में रुक गये । मैं मशीदी खां की गली में और शर्मा रंगून से दो मील बाहर एक सिख ठेकेदार के बगीचे में जहां खुली जगह थी और शर्मा जी को बड़ी मौज थी ।

दिसम्बर के महीने सभी बर्मी ठाले हो जाते है । धान काट कर बेच बाच लेते हैं तथा दो तीन महीने मौज मेला मनाते हैं । बहुत सुन्दर ऋतु थी । रात के समय थोड़ी थोड़ी सर्दी होती थी । कमरों के अन्दर एक कम्बल ओढने की सर्दी होती थी । इस ऋतु में रंगून का दिन और रात मेले की तरह था । जैसे किसी ने भूखे से पूछा था कि दो और दो कितने होते हैं ? उसने उत्तर दिया था-चार रोटिया- इसी प्रकार यदि बर्मियों से कोई पूछे कि जीवन क्या होता है ? तो वह आवश्यक जबाब देगा-'मौज मेला । किसी ओर चले जाओ, काम भी हो रहा है पर साथ ही आनन्द मेला भी । रंगून की नदी न केवल सैर तथा मन भावने का स्थान है, शिक्षा तथा प्रकृति के अध्ययन का भी स्थान है । किसी समय चले जाओ यहां जीवन का प्रवाह पानी के प्रवाह के समान गतिशील हैं । नदी के किनारों पर दूर तक कीचड़ है तथा नदी की धारा गहराई में बहती है । जहाज़ ऐसे प्रतीत होते हैं जेसे पृथ्वी पर खड़े हों । पानी बड़ी तीव्रता से समुद्र की ओर जा रहा होता है तथा कोई कोई नौका वाला ही इसकी विपरीत दिशा में चलाने की हिम्मत करता है । हमारे खड़े खड़े ही समुद्र में से एक छोटी सी हिल्लोर आई, पानी की तीव्रता कम हो गई तथा पुल जिस पर हम खड़े थे थोड़ा सा हिल कर ऊपर को उठने लगा । आधे घण्टे में काफी अन्तर पड़ गया । पानी उलट कर ऊपर को बहने लगा तथा नदी का फैलाव भरा भरा प्रतीत होने लग पड़ा । जहाज जो मध्य मेंखड़े थे मुंह फेर कर दूसरी ओर को हो गये तथा नदी नौकाओं से भर गई । नौका वाले सारे चटगांव के मुसल- मान नौका को 'होडी' कहते हैं । इनका अग्रभाग तीखा तथा पिछला भाग चपटा तथा नीचा होता है । यह खड़े होकर चप्पुओं से (नौकाएं) चलाते है । किनारों की नौकाएं भी तैरने लगी तथा नदी पानी के साथ पूरी तरह भर गई । पानी ऊपर की ओर तेजी से बहने लगा जैसे कोई कहे कि इसने पहाड़ों पर चढ़ जाना है । पानी के चढ़ाव के साथ नदी बड़ी तथा चौड़ी प्रतीत होने लगी । जहां पहले दो मोटर बोट एक साथ जा सकती थीं, वहां अब चार जा सकती थीं । थोड़ी देर और रुकें तो पानी

फिर धीरे बहने लग पड़ता है तथा धीरे धीरे एक स्थान पर खड़ा सा प्रतीत होता है। यह केवल पांच सात मिनट के लिये होता है अब दो चार बार पलक झंपकने जितने समय में फिर नीचे को बहने लगता है। ऐरावती नदी का यह दृश्य, जिसमें हर समय उतार चढ़ाव बना रहता है, बड़ा आनन्द दायक लगता है। किनारे बैठकर देखते रहो, तमाशा समाप्त ही नहीं होता।

नदी के तट पर धान से चावल बनाने वाली कई मिलें (शैलर) हैं। थोड़ी पूंजी वालों ने छोटी तथा बड़ी पूंजी वालों ने बड़ी (मिलें) लगाई हुई हैं। होडी (नौका) चढ़ कर जाओ तथा मिल में उसके पुल पर जा उतरो। मालवाही नौकाएं, धान की लदी हुई, खाली होने की प्रतीक्षा में हैं। पानी, कीचड़ तथा इंजनों के धुएं की मिली-जुली सी गन्ध आ रही है। मिल पानी के मध्य स्तम्भों पर खड़ी है। मज़दूर टोकरियां लेकर एक दूसरे के पीछे नौका में धान ऊपर मिल में ढोते दिखेंगे। धान मिल के शिखर पर पहुंचाए जाते हैं तथा वहां से नीचे को उतरते समय, जो कुछ करना है, किया जाता है। इंजन तथा चक्कियों के चलने से सारी मिल में शोर है। पहले धानों को तोड़ दिया जाता है, आगे चलकर छिलका अलग तथा चावल अलग। आगे चल कर चावलों को, जो लाल से दागों वाले होते हैं, रगड़ से पालिश किया जाता है। धान तोड़ने में कुछ चावल भी टूट जाते हैं। यह घटिया दलिया बने (चावलों के) कण या तो गरीब खाते हैं या दूध देने वाले पशुओं को चारे के रूप में खिलाए जाते हैं। नवम्बर, दिसम्बर तथा जनवरी के महीने धान की मिलों के लिए बड़ी व्यस्तता के महीने हैं। इन मिलों को चलाने का खर्च अधिक नहीं होता क्योंकि धानों का छिलका ही ईंधन का काम दे देता है। पर एक बड़ा नुक्स इस काम में यह है कि यह काम सारा वर्ष नहीं चल सकता। इस कठिनाई को दूर करने के लिए कई मालिक अतिरिक्त पूंजी लगाकर धान खरीदकर रख लेते हैं तथा ठाले मौसम में कुछ न कुछ किए जाते हैं तथा मिल का खर्च पूरा कर लेते हैं। नदी के तट पर (लकड़ी चीरने के) आराखाने भी बहुत हैं बल्कि बड़े बड़े आराखाने तो नदी के बिना मंहगे रहते हैं। जंगल की गोलियां नदी में आती हैं तथा आसानी से इन्हें पानी के सहारे इधर उधर से ले जाया जा सकता है। चीरी हुई लकड़ी आराखाने से ही सीधे जहाजों में लादी जा सकती है।

रंगून की एक अन्य प्रकार की सैरगाह (पर्यटनस्थल) वह छोटी सी झील है, जिसे 'रायल लेक' कहते हैं। यह झील बड़े 'फिआ' (मन्दिर) के पास ही है तथा 'फिआ' का सुनहरी शिखर हरे वृक्षों में से ऊपर समीप ही दिखाई देता है। झील तो छोटी ही है परन्तु लम्बी एवं टेढ़ी मेढ़ी होने के कारण लम्बी सैर का अवसर प्रदान

करती है। (इसका) पानी स्वच्छ एवं निर्मल है। किनारों पर कमेटी की ओर से घास पौधों तथा फूलों का प्रबन्ध है। कुछ नौकाएं भी हैं। झील के बीच ऊंचे नीचे स्थान दूर से बनाती हरे फ़र्श के समान हैं। सामान्य लोग यदि दूर न जाना हो तो यही भ्रमण के लिए या पिकनिक के लिए आ जाते हैं। दिसम्बर का सारा महीना रंगून में विविध प्रकार की वार्षिक प्रतियोगिताओं, घोड़ों की प्रदर्शनियों, क्रिकेट के मैच तथा स्वस्थ बच्चों की प्रतियोगिता एवं प्रदर्शनी के लिए होता है। बड़े 'फिआ' के मार्ग में रंगून का बड़ा मैदान है, जहां घुड़दौड़ें हुआ करती थीं। घुड़ दौड़ वाले दिन यहां मेला लग जाता था। चीनियों एवं बर्मियों दोनों को शर्तें लगाने का बड़ा शौक है। चीनियों के तो खून में जुआ है। जुआरियों के बारे में जो पंजाबी कहावत है, 'जुआरिया आवे (जित) मंजे चार (खाटें चार) ते (तथा) जुआरिये इक्क (एक), जुआरिया आवे हार, मंजा (खाट) इक्क ते जुआरिये चार' चीनियों पर भी बड़ी लागू होती है। घुड़दौड़ के दिनों में यह बात साधारण सुनने में आएगी कि अमुक चीनी हार आया है, दुकान बेच रहा है। वह हिस्सा 'चाइना टाऊन' कहलाता है। जिन दिनों की बात मैं कर रहा हूं यहां बड़े-बड़े लोग आते थे तथा किसी किसी दिन गवर्नर भी आया करता था।

एक टुण्डा (कटी भुजावाला) पारसी घोड़ों का बड़ा शौकीन था। उसका तो व्यवसाय ही घोड़े और घुड़दौड़ बन गया था। घुड़ दौड़ के शौकीनों में, प्रतियोगिता में एक सिक्ख पशु-चिकित्सक बड़ा प्रसिद्ध था। घोड़ों का इलाज करने में वह सारे बर्मा में प्रसिद्ध था। सेना के घोड़ों का चिकित्सक था पर एक स्थान जहां घोड़े पाले जाते हैं उसके अधिकार में था। घोड़ों की देखभाल करके तथा घुड़ दौड़ में घोड़ों का ठीक अन्दाज़ा लगाने में बड़ा निपुण था, जिसके फलस्वरूप उसकी पहुंच बर्मा के लाट साहिब तक थी।

रंगून का रात्रि-बाजार देखने योग्य था। दिन में लोग दुकानों में सौदा बेचते थे। जब रात उतर आती थी, पैदल पटरी पर, सड़क के किनारे बांस गाड़ कर बिजली की बत्तियां जलाकर दुकान लगा लेते थे। पक्की दुकानों तथा चल-दुकानों के मध्य में ग्राहकों के चलने फिरने के लिए पर्याप्त जगह थी। यह रात्रि-बाज़ार रंगून की एक बड़ी सड़क, डलहौजी रोड पर ही लगा करता था। जो वस्तुएं दिन में बेची जाती थीं वह रात के समय बिजली के प्रकाश में और ही रंग जमा देती थीं। बाजार में दस बजे तक बड़ी गहमा गहमी रहती थी तथा बहुत से लोग तो रौनक देखने के लिए ही जाया करते थे।

इस मौसम में बर्मी त्यौहार भी अनेक होते हैं। एक दो बड़े नृत्य, रंगून कारपोरेशन की ओर से, लोगों के लिये कराये जाते थे। इस एक नृत्य पर ही काफी खर्च हो जाया करता था। बर्मियों के लिये नृत्य और तमाशे भोजन की तरह सारा परिवार इकट्ठे बैठकर देखते हैं। कई बार बर्मी 'पुंगी' भी देखते हैं। आचरण के साथ इसका कोई सम्बन्ध नहीं। जिस नृत्य की बात मैं करता हूं वह रंगून कारपोरेशन की ओर से था तथा यह 'सूली फिआ' के पास जो बड़ी सड़क हैं, उस पर हुआ था। यहां सड़क भी बड़ी साफ सुथरी है। 'फिआ' के पास ही नृत्य के लिए एक चबूतरा बनाया गया तथा नृत्य मण्डली का सामान सूर्यास्त के साथ ही पहुंचने लग पड़ा। बिजली की व्यवस्था तो सभी ओर थी। बर्मी लोग जब नृत्य या 'पुओ' पर आते हैं तो बैठने के लिये चटाईयां एवं कालीन साथ लेकर आते हैं। नृत्य के साथ वाद्यवृन्द में दस बारह वाद्य होते हैं। ढोल या तबले सरगम की सुरों जितने अलग अलग ही होते हैं जिन्हें एक व्यक्ति बजाता है। शहनाई तथा छैणे सभी बड़े साज होते हैं। ललित या कोमल वाद्य सितार, वायलिन आदि किस्म का कोई वाद्य नहीं होता। नर्तकी, प्रसिद्ध एलिन सन थी, जिसकी मण्डली में दो तीन लड़कियां तथा इतने ही भांड पुरुष थे। नौ बजे के लगभग सारी सड़क, पैदल रास्ते तथा समीपवर्ती खाली स्थान सभी भर गये थे। बर्मी लोग चाहे जलवायु के प्रभाव स्वरूप शरीर एवं आचरण के पुष्ट नहीं होते फिर भी सामान्य आचरण एवं परस्पर व्यवहार में यह शुद्ध ही होते हैं। कभी कोई बर्मी शराब पीकर नृत्य के कार्यक्रम में आता नहीं देखा, न यह परस्पर भद्दे मज़ाक या स्त्रियों से छेड़छाड़ ही करते हैं। बिन कहे चुप्पी और शान्ति धारण किये रहते हैं। नृत्य के मध्य में, जब नृत्य थमता है तभी यह खाते पीते हैं और वह भी चाय, पान या सिगरेट पीते हैं (चुरट) आदि से अधिक कुछ नहीं।

नृत्य के साथ साथ अपने यहां के नकलियों (भाण्डों) के तरह बहुत सी मनोरंजन की हल्की फुल्की बातें भी होती हैं, जिससे हास्य उत्पन्न हो। जब नृत्य समाप्त होता है सभी अपने अपने घर चले जाते हैं। उस दिन की उपस्थिति का, मेरा अनुमान पांच छह हज़ार का था पर क्या मजाल कि कोई शोर हो या कोई व्यक्ति कोई अभद्र हरकत करता हो। आधी रात बीत चुकी थी जब नृत्य खत्म हुआ तथा लोग उठकर बिखरने लगे मैं सहज भाव से नर्तकों को समीप से देखने के लिये मंच की ओर को चल पड़ा। बड़ी नर्तकी एलिन सेन दो तीन व्यक्तियों के साथ अपनी गाड़ी में चली गई। बाकी लड़कियां अभी अपने नृत्य के वस्त्र आदि बदल कर, घरेलू वस्त्र आदि पहन रही थीं कि हमसे दूर दूसरी ओर पुलिस की सीटी बजी तथा कई बार बजी सभी चौंकन्ने हो गये, अभी पता ही नहीं चला था कि क्या बात है कि बिजली की बत्तियां अचानक

बुझ गई मेरी आंखों के सामने की बात है कि आठ दस बर्मी नव युवक, जिन्होंने अच्छे अमीरों के से वस्त्र पहन रखे थे, उन लड़कियों में से एक लड़की की ओर बढे उसे घेर लिया तथा एक ने बांह से पकड़कर उसे घसीटा उसकी आवाज़ नहीं निकलने दी तथा उसे मोटर में डालकर ले गये। मैं कुछ नहीं कर सकता था। मेरी बुद्धि में जो आया वह मैंने किया। सारे व्यक्ति तो उस मोटर में बैठ नहीं सके। बाकी के दो तीन चुपचाप शहर की ओर चल पड़े। मैं यह सोचकर कि एक बेचारी लड़की के साथ बड़ा अन्याय हुआ है पिछले पैदल चलने वाले 'मित्रों' के पीछे हो लिया। बाद में पता चला के यह सब पूर्वनिर्धारित योजना थी। पुलिस की सीटी बजने से सारे पुलिस वाले उस ओर को दौड़े जिधर सीटी बज रही थी। यह हिस्सा जिधर नृत्य वाली लड़कियां थीं पुलिस की दृष्टि से परे हो गया तथा इतने में ही बतियां बुझ गई तथा जो कुछ हुआ उसे केवल नजदीक वाले ही देख सकते थे यह भी पता चला कि लड़की उठाने वालों में लड़की का पहला पति तथा उसके मित्र थे तथा (वह) अच्छे घराने के थे, समाज विरोधी गुण्डे आदि नहीं। मैंने पैदल जाने वालों का पीछा करके एक के घर को ठीक तरह देख लिया तथा उसी समय समीप के थाने में जाकर रिपोट दर्ज करा दी जिसका परिणाम यह निकला कि पुलिस ने सवेरे होने से पहले ही लड़की का पता लगा लिया तथा दस बजे से पहले ही लड़की अपने घर पहुंच गई।

इन्हीं दिनों की बात है कि रंगून की यूनिवर्सिटी स्थापित करने का बीड़ा उठाया गया। सरकार ने यूनिवर्सिटी के लिये रंगून से पांच मील बाहर बड़ी झील को कोइन के किनारे, बड़ी खुली जगह थी, पर भवननिर्माण के लिये रुपया पर्यात नहीं था। युद्ध के कारण रुपये की कमी थी। अंग्रेज गवर्नर ने यूनीवर्सिटी के लिये रुपया इकट्ठा करने का एक अनोखा तथा आसान तरीका ढूंढ लिया। उसको रंगून के भीतरी याकहें कालेपक्ष का पूरा पता था। पहले उसने मशीदी खां तथा मामसां (दोनों) में समझौता सा करवा दिया तथा उन्हें इस बात पर सहमत कर लिया कि कम से कम छह मास वह किसी प्रकार का कोई झगड़ा न करें। एक अमीर चीनी तथा दो चार बर्मियों को बुलवा कर एक बड़े भवन में जो कि शहर के केन्द्र के पास था, बड़े स्तर पर जुआ, अफीम तथा चरस की व्यवस्था करवा दी। बहुत विरले ही लोगों को पता था कि यह जुए, अफीम तथा चरस का अड्डा गर्वनर ने स्वयं कहकर खुलवाया है। एक पक्के मकान की तीन छतें (मंजिलें) थीं। बाहर नाम "चीनी होटल" लिख छोडा था तथा भीतर हर प्रकार का नाम जिसके आम चीनी लोग तथा कुछ बर्मी लोग ग्राहक होते हैं, मिलता था। पुलिस को आदेश था ध्यान रखें पर कहे कुछ नहीं। बर्मा का बड़ा सारा मूंग जी जो कि बाद में बर्मा का पहला बर्मी गवर्नर स्थापित हुआ था इस कार्य का अग्रणी था। बहुत शीघ्र यह बात प्रसिद्ध

हो गई कि सर मूंग जी के चलाये हुए "जुएधर" में पुलिस दखल नहीं देती। पहली मंज़िल सामान्य अफीम और चरस के ग्राहकों के लिये थी। दूसरी तथा तीसरी मंजिल में जुआ, चरस, अफीम आदि के इलावा (बढ़िया) खाना आदि सब कुछ अमीर ग्राहकों के लिये उपलब्ध था। अन्दाजा है कि यहां एक एक दिन में दो ढाई हज़ार रुपये की बिक्री होती थी जिसमें से लगभग पांच सौ रुपया खर्च का निकल जाता था। पुलिस के बड़े अधिकारी अंग्रेज थे या बर्मी जो उसके भेद से परिचित थे यह समझते थे कि यह यूनिवर्सिटी के लिये पुण्य का काम है। इन नशों में एक विशेषता भी है। शराब चाहे चावलों की ही हो गिरे पड़े व्यक्ति को खड़ा कर देती है और खड़े हुए व्यक्ति को चाहे वह कितना ही डरपोक क्यों न हो कुछ समय के लिये निडर तथा वेझिझक बना देती है तथा शराबी जवरदस्ती दूसरों से उलझने लगता है पर 35 नशों में यह गुण है कि व्यक्ति पूरी तरह शान्त तथा साधु की तरह मस्त हो जाता है जिस कारण इस प्रकार के (नशे की) अड्डों में कभी भी दंगा फसाद, होहल्ला आदि होता नहीं देखा गया। कई अमीर तथा युरोपियन भी केवल स्वाद चखने तथा प्रभाव परखने के लिये आ जाते थे।

यहां चीनी होटल की डूयाढी में बिशन सिंह नामक एक सुन्दर सिख, जमादार की तरह, खड़ा रहा करता था। उन दिनों बिशन सिंह लगभग चालीस वर्ष की आयु का था तथा एक बार थोड़ी सी कैद भी काट आया था। सलाई की तरह सीधा, मोतियों जैसे दांत, जब हंसता था तो मानो मोती बिखरते थे। इसका काम आने जाने वालों पर नज़र रखना था। कभी कभी अनजाने में ही कुछ लोग आ जाते थे, उन्हें लौटकर घर जाने में कठिनाई होती थी। बिशन सिंह ऐरे गैरे की तो परवाह नहीं करता था, पर उच्च श्रेणी वाले लोगों की सहायता कर दिया करता था। किसी को अलग कमरे में बिठा देना, किसी के लिए गाड़ी या नौका आदि मंगवा देना, गाड़ी आदि के चालकों को ताकीद कर देना, नम्बर आदि नोट कर लेना (आदि)। बिशन सिंह ने एक चीनी स्त्री, रखी हुई थी जो उसकी तरह उसी की आयु की थी पर थी सुन्दर। यह वहां बिशन सिंह के पास आती जाती रहती थी, क्योंकि ग्राहक अधिकतर चीनी थे, उसे इस बात का भी मान सा था। कभी-कभी बिशन सिंह के इधर-उधर होने पर बिशन सिंह वाला काम यह कर देती थी। एक दिन दो अंग्रेज़ बांहों में बांहें डाले झूमते हुए आए तथा बिशन सिंह को आकर कहने लगे 'हमको रास्ता बताओ।' ऊपर चढ़ गए तथा लगभग एक घण्टे बाद जब उतरे तब बिशन सिंह की चीनी (पत्नी) खड़ी थी। उसने अपनी ओर से मेहमानबाज़ी का फर्ज समझ कर पूछा कि घोड़ा गाड़ी मंगवा दे तो उन्होंने 'हां' कर दी। घोड़ा गाड़ी आयी तथा उन्हें ले गई। दूसरे दिन इन दोनों अंग्रेजों में से छोटी आयु वाला आया

तथा उसने बिशन सिंह की चीनी पत्नी से बातचीत करने की कोशिश की। अन्तत: बिशन सिंह ने इस अंग्रेज बच्चे को एक दिन पकड़ कर (नीचे) गिरा लिया तथा पीटाई की। बाद में पता चला कि यह गोरा गवर्नर के पास आकर ठहरा हुआ एक थोड़ा बहुत अमीर सैलानी था तथा पहले दिन गवर्नर स्वयं इसके साथ आया था। गवर्नर समझदार था। वह समझता था कि साधारण स्थिति में बिशन सिंह ऐसा व्यवहार करने वाला नहीं। पर एक (अन्य) गोरे पुलिस अधिकारी ने बिशन सिंह को एक झूठे मुकद्दमें में फंसा कर दो वर्ष की कैद करवा दी। तब वह पशु-चिकित्सक, जिसकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है बिशन सिंह का सहायक बना तथा जेल में से उसे गवर्नर के विशेषाधिकार के प्रयोग से छुड़वाया। गवर्नर रिटायर होने लगा था, वह घोडों की प्रदर्शनी में पशु-चिकित्सक फुम्मन सिंह को कहने लगा 'फुम्मन सिंह। तुमने मुझे कोई ऐसा घोड़ा नहीं दिलवाया जो कभी कोई दौड़ जीत लेता।' फुम्मनसिह कहने लगा हजूर ! आपके घोड़े को मैं जिताऊंगा. गवर्नर हंस पड़ा। जब दौड़ें हुई, गवर्नर का घोड़ा जिस दौड़ में था, उसमें दो घोड़े अच्छे थे। एक फुम्मन सिंह के अपने स्टड फार्म का दूसरा एक चीनी का। (उसने) अपने घोड़े के सवार को कहा कि यह दौड़ हमने नहीं लेनी क्योंकि इसमें यदि हमारा घोड़ा आगे आ गया तो बड़ी दौड़ में सभी उसी पर दांव लगा देंगे तथा हमें कोई लाभ नहीं होगा। चीनी घोड़े के बर्मी सवार को उसने कहा—'यदि गवर्नर का घोड़ा जितवा दो तो तुम्हें गवर्नर के घोड़े का सवार गनवा दूंगा।' अभिप्राय यह कि इस प्रकार गवर्नर का घोड़ा जीत गया और साथ आठ हजार रुपया मिल गया। इससे गवर्नर खुश हो गया तथा जाते-जाते बिशन सिंह को छोड़ने का विशेष आदेश दे गया।

पंद्रहवां अध्याय

देश

शर्मा जी की (अदालत में) तीसरी पेशी के समय गवाहियां शुरू हुई तथा दो एक गवाह भुगतने के बाद फिर तारीख पड़ गयी। हमने बैठकर सलाह की कि मुकद्दमा तो शायद दो महीने और ले लेगा तथा इससे हम (अपने उद्देश्य में) बहुत पिछड़ जायेंगे। आखिर यह निर्णय लिया कि शर्मा जी को तो हर हालत में, जब तक मुकद्दमें में से निकलते नहीं, रंगून में रहना पड़ेगा मैं क्यों यहां बैठा रहूं ? हमारी यह पहले भी सलाह थी कि रंगून से आगे बड़ी होशियारी से चलना हैं और उसका तरीका यह है कि हममें से एक व्यक्ति पहले कलकत्ता पहुंचकर वहां की खबर भेजे। जब तसल्ली हो जाये कि रास्ता साफ है तब दूसरा व्यक्ति रंगून से रुपया लेकर चले तथा उसे संभालने वाले व्यक्ति कलकत्ता में हों। अब कुदरत ने स्वयं ही यह परिस्थिति बना दी कि शर्मा के पांव रंगून में बंध गए। हम दोनों थामस कुक कम्पनी) वालों के पास गए तथा मैंने शर्मा जी को उनसे मिलवा दिया, शर्मा जी के फोटो पर हस्ताक्षर आदि उन लोगों ने ले लिए तथा मैं रुपए के बंधनों से मुक्त हो कर फूल जैसा हल्का होकर कलकत्ता के जहाज के लिए टिकट लेने चला गया। युद्ध के फलस्वरूप जहाजों का यातायात नियमित तथा पूरा नहीं था। जब समाचार मिलता कि कोई खतरा नहीं तब जहाज़ रंगून से चल पड़ता शर्मा बेचारा बड़ा उदास हो गया तथा चिन्ता भी करने लगा कि कहीं मुकद्दमें में कुछ हो न जाये। वैसे हमें यह पता लग चुका था कि शर्मा जी के विरुद्ध शहादत कमज़ोर ही है, तथा वह भी सन्देह पर आधारित है। शर्मा जी का परिचय मैंने मित्रों से करवा दिया तथा उसे रंगून के जहाजों के पुल पर उदास तथा विवश सा खड़ा देखता हुआ मैं जहाज़ में सवार हो गया तथा बहुत शीघ्र रंगून के बड़े 'फिआ' के अतिरिक्त रंगून का सब कुछ ओझल हो गया। दो महीने से मैं कभी इतना निश्चिन्त होकर नहीं सोया था जितना उस रात को जब रंगून से चलकर जहाज बंगाल सागर के पानी में प्रविष्ट हुआ। मुझे भी अपने मित्र तथा समझदार

साथी से बिछुड़ कर दुःख था, पर रुपये की जिम्मेवारी से मुक्त होकर बड़ा प्रसन्न था। चांदनी रात थी। यात्री अपने नए ठिकानों में विश्राम करने की तैयारी कर रहे थे। हल्की-हल्की सर्दी थी। मौसम शान्त होने के कारण जहाज़ बड़ा टिका हुआ था तथा शीघ्र ही मैं जहाज़ के तख्तों पर लेटकर अपना आप भूल गया। दूसरी सवेर जब प्रकाश हुआ तो चारों ओर काले पानी तथा झाग की लकीरों के अतिरिक्त और कुछ न था। मेरे साथ के यात्री सभी भारतीय थे इक्का-दुक्का सेना के सिपाही, कुछ थोड़े कर्मचारी, अफसर, डाक्टर तथा इंजीनियर आदि (थे)। चन्द्रमा के प्रकाश की जो तीन रातें बंगाल सागर में देखी हैं, वह भूलने में नहीं आती। शान्त समुद्र में भारतीय अपना रागरंग करने लग पड़े। जहाज़ के न डोलने से सभी प्रसन्न थे।

चौथे दिन तीसरे पहर जहाज कलकत्ता के तट पर जा पहुँचा और हम सब उतरने की तैयारी में तथा देश पहुंचने की उत्सुकता में थे। मेरे साथ के बर्मा वाले अपने-अपने कागज़ दिखलाकर निकल गये, मुझे रोक लिया (गया) मेरा पास पोर्ट अमेरिका का था। लोगों की तलाशियां बड़ी देखभाल से हुई तथा हमारा सामान सारा खुला खुला कर देखा गया। जब सभी यात्री भुगत चुके तो मुझे एक भारतीय पुलिस अफसर के सुपुर्द कर दिया गया जो मुझे अपने दफ्तर में ले गया तथा लगा सवाल पूछने। 'कहां से आये हो? किस मार्ग से आये हो? साथी किधर गये? आगे आगे कहां जाना है? ग़दरपार्टी से क्या सम्बन्ध है? आदि आदि। भारत की पुलिस जितना कमीना तथा जूते चाटने वाला दुनिया में कहीं नहीं देखा। यदि कोई राजनैतिक कार्यकर्ता न भी हो उसको उसके मुख से दोषी बनाने तक जाते हैं। दो तीन दिन मुझे इसी तरह कलकत्ता में रखा, मेरी फोटो उतारी, हाथों के निशान लिये तथा जब देखा कि इसके विरुद्ध कोई बात नहीं बनती तो मुझे छोड़ दिया। मुझे पता चला कि आगे पंजाब में इससे कहीं अधिक पूछताछ होती है तथा कोई सौभाग्यशाली अमरिकन ही पुलिस के हाथ से बचता है। अधिकतर तो किसी न किसी ढंग से फंसा ही लेते हैं?

मैं अमेरिका में गदरपार्टी में शामिल नहीं हुआ था, अपने काम की ओर ध्यान रखता था फिर भी मेरे मन में भी अंग्रेजों को निकालने तथा देश को आजाद करवाने का उतना ही जोश था जितना दूसरों में। कलकत्ता से मैंने जालन्धर का टिकट लिया पर मुझे उन्होंने लुधियाना में ही उतार लिया जहां और भी कई अमेरिका से आये (हुए) घिरे हुए बैठे थे। तीन चार दिन यहां से मुझसे पूछताछ की गई। भाव यह कि गांव पहुंचने तक मैं पंजाब पुलिस के हाथों इतना दुखी हो गया था कि दिल करता था कि दो चार पुलिस वालों को मारकर मर जाऊं ताकि इन्हें यह तो पता

चले कि सामान्य लोगों को बिना बात तंग करने का क्या परिणाम होता है। जब मैं गांव पहुंचा तो लोगों में जागृति लाने तथा अंग्रेजों के विरुद्ध उन्हें उभारने का, मेरा सारा उत्साह, क्रोध में बदल गया। मैंने देखा कि अच्छे भले पढ़े लिखे आदमी लोगों को फौज में भर्ती करवाने के लिये भाग दौड़ कर रहे हैं। कोई कहता था कि मैंने इतने आदमी भर्ती करवाये हैं तथा कोई कहता था कि इतना चन्दा इकट्ठा करके दिया है। हम सोचते थे कि देश अंग्रेजों के विरुद्ध उठने को तैयार होगा पर यहां आकर देखा कि लोग अंग्रेजों को बनाये रखने के दोनों हाथों से जुट हुए थे। यह ठीक है कि लोगों के दिलों में नफरत थी पर मुह से कोई कुछ नहीं कहता था कुछ करने की तो बात ही क्या। अमरिका से आये हुए हम लोग इन नम्बरदारों, जैलदारों तथा सफेदपोशों को बड़ा समझाते थे। वह हमारी सारी बातें सुन लेते थे तथा कह देते थे कि 'आप जो कुछ भी कर सकते हैं करें, हम भी आपके साथ ही हैं। अब इस ओर लगे हुए हैं, जब वैसे हालात होंगे तब आपके साथ शामिल हो जायगें। मैंने देखा कि मुझ में और घरवालों में आया हुआ अन्तर अधिक बढ़ गया है। वह सोचते थे कि मैं दस बीस हजार रुपया लेकर आया होऊंगा। जब पता लगा कि जो रुपया पहले आ गया था वही मेरे पास था, अतिरिक्त कुछ नहीं, तो वह ठंडे तथा विमुख से हो गये। मैं कहता था देश भक्तों का साथ दो। वह कहते थे अमुक इतना रुपया लेकर आया, अमुक इतना। घर में रहने का वैसे भी प्रश्न ही नहीं था, पर घर वालों के साथ सहानुभूति भी न हो सकी। मन में कटुता जाग उठी दो एक दिन घर वालों की खरी खोटी बातें सुन सना के मैं अपने हमजोली मित्रों के साथ चल पड़ा। देश में एक अजीब मुर्दापन सा छाया हुआ था। हम गांव में लुकछिप कर फिरते थे पर हमारी सारी खबरें हमारे भाइयों के माध्यम से ही पुलिस वालों के पास पहुंच जाती थीं। हमें पता चला कि हमारे कई अमेरिकन साथी यहां पहुंचने पर पुलिस की निगाह में चढ़ गये हैं तथा पुलिस उनका पीछा कर रही है। पुलिस का सिपाही एक होता था, पर साथ, सफेद कपड़ों में, हमारे भाई मुफ्त के सिपाही कई होते थे। यदि हमारे गांव के भाई पुलिस के सिपाहियों की सहायता न करते, केवल उपेक्षा ही कर देते तब भी बड़ा काम हो जाना था। परन्तु लोगों की यह स्थिति थी कि पुलिस के सिपाहियों की सहायता के लिये एक दूसरे से होड़ लगी थी। इतना ही नहीं बल्कि एक दूसरे के प्रति शत्रुता भी इसी तरीके से प्रकट करते थे कि कौन बढ़कर देश द्रोह करता है। आखिर हमने देखा कि जब तक इस प्रकार के देश द्रोहियों का सुधार या 'उद्धार' नहीं होता तब तक कोई कार्य होना असंभव है। अंग्रेजों के विरुद्ध हमारा सारा क्रोध फीका सा पड़ गया, इन जैलदारों तथा सफेद पोशों के

विरुद्ध हो गया। हमने अपना काम यही समझा कि इस श्रेणी के मोटे मोटे दो चार स्तम्भ नीचे गिरायें, तभी लोग इस ओर से हटेंगे।

हमारा तरीका गांवों में प्रचार का था। फौजियां से मित्रता गांठ ली, जहां तक हो सके हथियार लेना, पर हम देख रहे थे कि हमें इस काम में बहुत थोड़ी सफलता मिल रही थी। धीरे-धीरे एक एक करके हममें से सारे ही पकड़े जा रहे थे। न फौजों में ही कोई बिगाड पैदा हो रहा था और न सामान्य जनता में। बस लोगों का इतना ही काम था कि युद्ध के समाचार पढ़ कर खुश हो लेना। देश भक्तों को भी प्रोत्साहन के शब्द कह देना पर स्वयं कुछ न करना। पुलिस के सामने दुबक कर चुप्पी धारण कर लेना बल्कि (हमारे) विरुद्ध बातें कहना। हममें से लगभग आधे निरुत्साहित हो गये तथा पछताने लगे कि यहां किस लिये आना था। बाकियों में से अधिक ग्रामीण पकड़ लिये गये तथा हमारा कोई काम संपन्न न हुआ उन दिनों की मात्र स्मृतियां सी रह गई हैं।

एक धन्ना सिंह नामक देश-भक्त था। ईश्वर उसे स्वर्ग में निवास दे। जब उसे पुलिस ने पकड़ा उसके पास बम था, उसने यह बम अपनी छाती पर मार कर चला दिया। वह स्वयं भी चिथड़े-चिथड़े हो गया तथा साथ ही पुलिस का थानेदार भी। एक अन्य देश-भक्ति जो सौभाग्य से अभी जीवित है तथा असेम्बली का सदस्य भी है, पुलिस ने घेर लिया। देर से पुलिस इसके पीछे फिर रही थी। पुलिस के घेरे को तोड़ कर यह बहादुर भाग निकला, पर पुलिस की गोली इस की टांग में लगी। खून बहती टांग को घसीटता हुआ यह चार मील दौड़ गया पर पुलिस की पकड़ में नहीं आया। अन्तत: पकड़ा गया तो लम्बी कैद काटकर आ गया। मैं तथा मेरा साथी दोनों लाहौर में छठे रसाले (घोड़ा पुलिस) के सिक्खों को भडकाने के लिए भेजे गये। हम लाहौर स्टेशन पर उतरे। मेरा साथी रागी बनकर सितार में बन्दूकें छिपाये जा रहा था। स्टेशन से निकलते ही उसे पुलिस ने पकड़ लिया तथा तलाशी लेने पर सितार में से बन्दूक निकाली। मैं दौड़ गया। मेरे साथ के सभी लोग एक एक करके सारे पकड़े जा रहे थे। मेरा भी मन करता था कि यह खेल सफल तो होना नहीं, मैं भी कहीं किसी गिनती में आ जाऊं। मेरे साथी को पकड़कर पुलिस मेरे पीछे पड़ गई। मैं अनारकली में तांगे में बैठा जा रहा था कि तांगा रोक लिया। तीन चार बिना वर्दी पुलिस वाले मुझ पर टूट पड़े मैंने पिस्तौल से उनको तो धर लिया पर दूसरों ने मुझे गिरा लिया और मैं भी पकड़ा गया।

कौन जानता था कि लम्बी कैद काटकर हम बाहर जायेंगे। हमारा ख्याल था कि अब हमने कब लौटना है हमारे साथ के कई फौजी फांसी चढ़ गये, कई काले

पानियों में जाकर समाप्त हो गये। उन दिनों मौत बड़ी सस्ती प्रतीत होती थी। पीपल के पत्तों की तरह देशभक्त झड़ रहे थे। कोई किसी तरह, कोई किसी तरह। देशभक्तों की कहानियां लिखने वाला आदमी कोई पैदा नहीं हुआ पंजाबियों की कुर्बानियों को लोगों ने याद करने की कमी के कारण पूरी तरह से नष्ट कर दिया है। अब मैं अपना अन्तिम कारनामा बताकर समाप्त करता हूं। संभव है किसी सदस्य को देश भक्तों की स्मृति से कुछ झिझोंड़ सी मिले तथा वह सारी कहानी सिलसिलेवार लिखने का प्रबन्ध करे।

अन्ततः हम पन्द्रह सोलह आदमी हज़ारीबाग की जेल पहुंचाये गये। मुझसे तो सारे ही बड़े थे, जिनमें चार पांच बुजुर्ग थे। हज़ारीबाग भी अच्छी ठण्डी जगह हैं। हम राजनैतिक कैदियों को अलग एक खण्डहर दिया हुआ था। खाने पीने की दृष्टि से हमें कोई शिकायत नहीं थी, परन्तु हमारा मन यह नहीं मानता था कि हम फिरंगी की कैद में बैठे रहे। हम स्वयं को युद्ध में जुटा हुआ मानते थे। अतः जब भी कभी हमें इकट्ठा होने का अवसर मिलता था हम हज़ारीबाग की जेल से भाग निकलने की योजनायें बनाया करते थे। बाहर बैठे लोगों के लिए जिन्होंने कभी जेल नहीं भुगती तथा जेल के अधिकारियों से जिनका काफी वास्ता नहीं पड़ा, इस बात का अनुमान भी करना असंभव है कि किस प्रकार जेल के वार्डरों को परखा और देखा जाता है कि कौन ठीक है कौन डरपोक तथा कौन निकम्मा एवं आलसी। न तो हम घरवालों को मिल सकते थे, न कोई हमारा हालचाल जानने वाला था और न ही हमारे बारे में कुछ कहने कहलाने वाला। हमारे बन्द कमरे जेल के एक कोने में थे। जेल का यह खण्ड बाकी जेल से दरवाजों एवं दीवारों द्वारा अलग किया जा सकता था। इस खण्ड के साथ ही जेल की पच्चीस फुट ऊंची दीवार थी, जिसके ऊपर स्थान-स्थान पर पहरेदारों के बुर्ज थे। हम से वे कोई काम नहीं करवाते थे। इसलिये नहीं कि हम काम करने योग्य नहीं थे अपितु इस लिये कि कहीं हम दूसरे कैदियों को अपने विचारों से प्रभावित न कर दें। वैसे ठाले रहने से कोई न कोई काम करना आसान बात है। इससे दिल लगा रहता है तथा दिन रात कल्पनाओं की चिन्तायें नहीं सताती। हममें एक देश भक्त मूला सिंह था, शरीर का बड़ा हृष्टपुष्ट शक्तिशाली तथा वैसे भी गर्म स्वभाव का। एक की क्या चर्चा करें सारे ही यहां प्राणों की बाज़ी लगाकर आये थे तथा प्राणों का बलिदान करने को तैयार बैठे थे। जेल तोड़कर भागना कोई सरल खेल नहीं होता, इसमें प्राणों का भी खतरा होता है, कैद और बढ़ा दिये जाने का भी तथा बाहर जाकर लुक छिप कर न समाप्त होने वाले लम्बे दिन बिताने का संकट भी। हमें दिन का प्रकाश रहते ही बन्द करके ताले लगा कर पहरा लग जाया करता था। सूर्यास्त के बाद एक हैड वार्डर पुनः चक्कर लगाया

करता था तथा तालों को चैक किया करता था पक्के कमरे थे, लोहे की सलाखें तथा कमरों के आगे बरामदा। हमने केवल एक वार्डर के साथ सांठ-गांठ की जो कि फैज़ाबाद की ओर का अच्छा साहसी पूरबिया था। उसने हमें एक लोहा काटने वाली आरी का टुकड़ा ला दिया। हमारी योजना यह थी कि जिस दिन यह सारा काम करना हो, लोहे की कटी हुई सलाखों को तोड़कर तालियों वाले वार्डर को पकड़कर तालियां छीनकर सारे ताले खोल दिये जायें तथा फिर एक व्यक्ति जेल की दीवार पर चढ़कर रस्सा लटका दे तथा बाकी व्यक्तियों को खींच खींच कर ऊपर चढ़ाया जाये तथा वे दूसरी ओर छलांगे लगाए जायें। बड़ा सवाल यह था कि दीवार पर कैसे चढ़ा जायें। न सीढ़ी थी तथा न रस्सा ही अन्दर आ सकता था तथा यदि लाया भी जाता तो छिपा नहीं रह सकता था। आरी के टुकड़े द्वारा पौन इंच मोटी सलाख नहीं काटी जा सकती थी। थोड़ा थोड़ा रोज़ काटते थे तथा तैयारियां किये जा रहे थे। तालियों वाले वार्डर को प्रतिदिन ध्यान से देखते (परखते) थे कि वह किस प्रकार आता है, तालियां कहां रखता है, तथा हाथों में किस प्रकार पकड़ता है तथा कितना शक्तिशाली है। सलाखों का एक सिरा काटे को दो तीन सप्ताह बीत चुके थे। यह भी आशंका थी कि कहीं यह रहस्य खुल न जाये। हिचकिचाहट यह थी कि यदि भाग निकलने की योजना सफल भी हो जाये तो बाहर जाकर कैसे सुरक्षित रहेगें कैसे छिपेंगे तथा छिपछिप कर क्या काम हो सकेगा. प्रत्येक स्थान पर हर समय प्रत्येक पंक्ति में कुछ व्यक्ति नकारात्मक स्वभाव वाले भी होते हैं। इन नकारात्मक व्यक्तियों में कुछ ऐसे विचारक भी होते हैं जिनका असली मन्तव्य किसी कार्य को सफल बनाना ही होता है। वास्तव में वह सामान्य व्यक्तियों की अपेक्षा सफलता के अधिक इच्छुक होते हैं पर पिछले व्यक्ति उन लोगों को छोटे दिल के तथा मक्कार आदि कहकर बदनाम करते रहते हैं। इसी तरह हममें भी दो एक ऐसे देश भक्त थे जो कहते थे कि यदि हम भी (यहां से) भागकर निकल भी जायें, पकड़े न जायें तब भी पुलिस हमारा पीछा करती रहेगी तथा हम छिपते भी रहेंगे और डरते भी। ऐसी स्थिति में हम क्या काम कर सकेंगे या तो कोई ऐसा मोर्चा हो, जिस मोर्चे को, जेल से निकलते ही रात भर में ही जाकर तोड़ गिरायें तथा आगे का रास्ता खुला हो जाये। ऐसी कोई बात नहीं थी। आखर देश तो चुप है, गहरी नींद सोया पड़ा है, उल्टे जल्दी जल्दी अधिकाधिक (फौज में) भर्ती द्वारा तथा चन्दा इकट्ठा करके अंग्रेजों की सहायता कर रहा है। ऐसी स्थिति में हम दस बारह व्यक्ति बाहर जाकर भी क्या कर सकेंगे। (दूसरी ओर) दूसरे पक्ष वाले जोश में आकर यह कहते थे कि एक बार यहां से निकलो, संभव है ऐसा कोई राह निकल आये या कोई ऐसी स्थिति पैदा हो जाये कि देश बिगड़ जाये। इस समय नेतृत्व करके कुछ कर दिखायेंगे। इस प्रकार सोचते सोचते महीना बीत

गया । आखिर एक दिन पक्का निश्चित हो गया तथा हम अपने भाग्य की परीक्षा के लिये, तैयार हो गये। किसी एक ने भी इनकार नहीं किया। प्रत्येक व्यक्ति अपनी अपनी भूमिका निभाने के लिये तैयार था फिर चाहे कुछ भी हो पहले खा पीकर गप्पें हांक छोड़ते थे, सो जाते थे, निश्चिन्त थे । अब ज्यों-ज्यों निश्चित दिन समीप आ रहा था हमारे चेहरों पर तनाव उभर रहा था, माथे पर सिनवटें उभरती आ रही थीं, । मन भरते जा रहे थे तथा हाथों पैरों की नाड़ियां तन्तुओं की तरह कसती जा रही थीं तैयारी के रूप में कभी छिपे-छिपे व्यायाम (डण्ड बैठकें) भी करने लग पड़े। हमारे फैज़ाबादी मित्र को सब पता था, उसने बताया कि अगले दिन इतवार है तथा आज की रात ही छुट्टी पर जाने वाले छुट्टी चले जायेंगे। जेल में कर्मचारियों की संख्या कम होगी तथा साव-धानी भी कम ही होगी। रस्से का प्रबन्ध न हो सका। शाम के छह बजे का घड़ियाल बज रहा था जब तालियों वाला वार्डर हमारे खण्ड में आया तथा ताले चैक करता हुआ हमारे कमरे के आगे से गुज़रा। उसके साथ उसके पीछे पीछे एक अन्य सिपाही था। इन दोनों के अगले कमरे की ओर जाने की देर थी कि काटी हुई सलाख को हम दो व्यक्तियों ने खींच कर टेढ़ा कर दिया तथा बाहर निकल कर तालियों वाले तथा उसके साथी को पकड़ कर दबोच लिया, उनके गले दबा दिये तथा तालियां कब्जे में कर लीं। हम अपने कमरे में दो ही थे। मैं उनकी गर्दनों को काबू में करके उनके ऊपर लेट गया तथा दूसरे साथी ने जितनी जल्दी हो सका सारे कमरे खोल दिये तथा हम जल्दी-जल्दी दीवार के साथ खड़े होकर एक दूसरे के ऊपर चढ़ने लग पड़े। पच्चीस फुट दीवार को फांदने के लिए पांच छह शक्तिशाली आदमियों की आवश्यकता होती हैं तथा आदमी भी डण्डे जैसे। हज़ारी बाग के कमज़ोर जलवायु के कारण हमारे शरीर पहले ही आधे रह गये थे। पर खैर! हमारा आदमी शिखर पर जा पहुंचा तथा उसके ऊपर पहुंचते ही दीवार वाले पहरेदार सावधान हो गये। तुरंत सीटियों पर सीटियां बजने लगीं। सारी जेल में नये सिरे से प्रकाश हो गया। आदमी दौड़ने लगे, एक दूसरे को पुकारा जाने लगा। अब हमारे लिये दो काम हो गये, एक दीवार पर चढ़ना दूसरे जेल के भीतर के सिपाहियों को संभालना बाकायदा लड़ाई शुरू हो गई, हम निहत्थे थे, उनके पास डण्डे थे, हमारे आदमी कुल सत्रह थे, वह जितने भी उस खण्ड में भीतरी दीवार फांद कर या दरवाज़ा तोड़ कर आ सके। पर इतनी बात थी कि खतरे की घंटी बजने पर भी पांच सात मिनट हमारे पास आने की किसी की हिम्मत न हुई। हिन्दी प्रदेश वाले बातों में बड़े चटपटे होते हैं पर दिल के हल्के। उन्होंने देखा कि हम सब कमरों से बाहर अहाते में आ गये थे तथा ऊंचे स्वर में ललकारें मार रहे थे। भय के कारण सहज ही हमारे समीप आने का उन्होंने प्रयास नहीं किया तथा इतने में हमारे आदमी बाहर

छलांगे लगाने लगे। जब तीन चार वार्डर हमारे अहाते में आ पहुंचे, हमने उनके डण्डे छीन लिये तथा उनका सामना करने के लिये तैयार हो गये। फिर तो अफरातफरी सी पड़ गई तथा पिटाई से डरते हुए भैय्ये बाहर ही हम तुम करते रहे तथा इतने में हमारे आदमियों ने पगडियों, कमीज़ों आदि का प्रयोग करके तेरह आदमी पार उतार दिये। दो आदमी दीवार से लगे हुए बोझ सहते सहते बेहोश से होकर गिर गये। एक मैं तथा एक अन्य देशभक्त मुकाबिला करने वाले (मिलाकर) हम चार आदमी अपने भाग्य को वहां हज़ारी बाग जेल में टप्प करके बैठ गये। हम चारों आदमियों को उन्होंने पीट पीट कर मरे हुओं जैसा कर दिया, पर हम इस बात से प्रसन्न थे कि इतने व्यक्ति सफलतापूर्वक बाहर जा सके।

अब आगे भागे हुए साथियों की थोड़ी सी कहानी बताना आवश्यक है। अधिक अच्छा तो यह है कि पाठक स्वयं पूछताछ करके, हज़ारी बाग जेल के (भागे हुओं में से) बचे हुए किसी देशभक्त से, उसके अपने मुख से, उस दिन की जेल तोड़ने की कहानी को अपने कानों सुने परन्तु यदि न हो सके तो यह तो मैं लिख रहा हूं इसे दस बीस गुणा बढ़ाकर अपने मन में स्वयं ही समझ ले। पच्चीस फुट छलांग लगानी किसी (बहुत) समर्थ का ही काम होता है और यदि कोई लगा भी दे तो पैर का आहत न हो असंभव होता है। जितने आदमी निकले, निकलते ही उन्होंने छलांगे लगा दीं। नीचे पड़े ईंटों से पत्थरों तथा कांच के टुकडों से जखमी हो गये, दीवार से घिसटने आदि से चोटें अलग लगीं। रात का समय होने के कारण ज्यों ज्यों करके यह जंगल में प्रात: होने तक तीन-तीन चार-चार मील दूर निकल गये। इलाका जंगली तथा पहाड़ी सा है। रात के समय पंजाबी भगौड़ों का पीछा किसने करना था, दिन में लोग निकले तथा दो तीन उन आदमियों को पकड़ लाये जो बहुत अधिक घायल तथा पैरों से लगभग अशक्त हो गये थे। सात आठ आदमी ही, असल में सही सलामत ठीक ठाक पुलिस के पंजे में निकले। इनके सम्बन्ध में यह सुना है -मैं भी तो सुनी बात ही कर हूं चाहे उनके अपने मुख से ही सुनी हो -कि इलाके में सब ओर सनसनी फैल गई। युद्ध के दिन थे, इन्हें बनारस पहुंचने तक बेहद कष्ट हुए। आगे आगे ये थे और पीछे पीछे पुलिस वहां बनारस पहुंचकर इन सब ने मुंह सिर मुंडा कर साधुओं का वेश धारण कर लिया तथा कुछ समय और बीत गया पर हिन्दी भाषियों के प्रदेश में पंजाबी कैसे छिपा रह सकता है, न भाषा हिन्दुस्तानी, न रहने का तरीका और न खान पान। अन्ततः एक के अतिरिक्त सारे ही पकड़ लिये गये। मेरी अपनी व्यथा कुछ अधिक कहने योग्य नहीं। जेलों का वास, प्रशासकों के सामने (किसी को) क्या पेश चलती है। सारी जेल (कैद) काटकर जब मैं सन् 1924-25 में बाहर आया हूं मेरी जवानी बीत चुकी थी, पहले का सा उत्साह

नहीं रहा था, साथी सब बिखर चुके थे, कोई इस पार तथा कोई उस पार तथा अंग्रेज राजी खुशी अब भी प्रशासन चला रहे थे।

मेरे प्रारम्भ से साथी शर्मा की व्यथा (और कथा) इस प्रकार हैं। मैंने शर्मा को सारी स्थिति लिख भेजी तथा वह सकुशल सारा रुपया लेकर गन्तव्य तक पहुंच गया तथा मुक्त हो गया पर जिस प्रकार उर्दू के कवि गालिब ने कहा है 'छुटती नहीं है मुंह से यह काफिर लगी हुई' जिस ने एक बार आज़ाद अमेरिका में जाकर आज़ाद भारत के स्वप्न देखे हों वह घर कैसे बैठा रह सकता है। शर्मा बेचारा हमारे बाद दुआबा में एक स्थान पर बम बनाने के सिलसिले में घायल होकर अपनी यात्रा समाप्त कर गया। बड़ा अच्छा, मधुर, मितभाषी, मित्रों का मित्र, 'हमां या ां दोज़ख हमां यारां वहिश्त' सज्जन व्यक्ति था, ईश्वर उसे स्वर्ग प्रदान करे।


भाषा विभाग, पंजाब